UGC APPROVED JOURNAL
(UGC CARE LISTED JOURNAL, SN.-63)

ISSN 0973-1490

वर्ष-22.2 त्रैमासिक अंक : अक्टूबर-दिसम्बर, 2024

चिन्तन-सृजन

www.asthabharati.org

आस्था भारती, दिल्ली

UGC CARE LISTED JOURNAL, SN.-63

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 22.2 अंक : अक्टूबर-दिसम्बर, 2024

संस्थापक सम्पादक

स्व. बी.बी. कुमार

▼

सम्पादक

डॉ. शिवनारायण

▼

परामर्शी मंडल

श्री पी.सी. हलधर
अध्यक्ष, आस्था भारती, दिल्ली

प्रो. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बेंगलूर विश्वविद्यालय

प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन
वरिष्ठ प्रोफेसर, हिन्दी, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. देवशंकर नवीन
प्रोफेसर, हिन्दी, जे.एन.यू., दिल्ली

प्रो. चिट्टि अन्नपूर्णा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय

आस्था भारती
दिल्ली–110096

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपये
विदेशों में	$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20. 00 रुपये
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपये
विदेशों में	$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	20,000.00 रुपये
अन्दर कवर	15,000.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ	10,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ	7,000.00 रुपये

आस्था भारती
रजिस्टर्ड कार्यालय :
27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय :
मकान नं. 167, सेक्टर 15-ए
नोएडा-201301
ई मेल : asthabharati1@gmail.com
वेब साइट : asthabharati.org

आस्था भारती, दिल्ली के लिए के.एम.एस. राव, कार्यकारी सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, ई-33, सेक्टर-ए 5/6, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201102 (उ.प्र.) भारत द्वारा मुद्रित।

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं।

विषय–क्रम

संपादकीय परिप्रेक्ष्य

प्रतिरोध के औजार 5
डॉ. शिवनारायण

साहित्य–चिंतन

1. मुक्तिबोध का तीसरा पक्ष 11
पंकज चौधरी
2. 'मैला आँचल' में सामाजार्थिक जीवन की पड़ताल 16
चंदन कुमार
3. निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिक भावबोध 22
हिमांशु सा
4. सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति–प्रेम और सौंदर्य के कवि 26
सूर्य नारायण पांडेय
5. 'क्याप' में अभिव्यक्त प्रेम और विद्रोह 31
डॉ. शिखा
6. बिहार की समकालीन हिन्दी गजलों में प्रेम अभिव्यंजना 37
प्रीति सुमन
7. बिहार की समकालीन महिला गजलकारों की मूल संवेदना 43
अविनाश भारती

अस्मिता चिंतन

8. 'पिछले पन्नों की औरतें' में स्त्री–विमर्श 48
नयन मादुले राजमाने
9. उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में नारी जीवन 52
राजश्री
10. शिवानी के उपन्यासों में शहरी–ग्रामीण स्त्री पात्रों के जीवनमूल्य... 58
सलमान
11. स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति और शिक्षा 63
अरुण कुमार
12. रामधारी सिंह दिनकर के विचारों में स्त्री का स्थान 72
सुजाता कुमारी

13. भारतीय परिवेश में नारी समाज और उसकी वस्तुस्थिति 76
अंजु कुमारी

पौराणिक चिंतन

14. पौराणिक वाड्मय में तीर्थराज प्रयाग 81
डॉ. सिद्धार्थ/संतोष पांडेय
15. संतकाव्य में मानवीय मूल्य की अवधारणा 88
गीता कुमारी
16. झारखंड के भद्रकाली मंदिर में धार्मिक क्रियाकलाप का... 93
लखेन्द्र प्रजापति
17. पौराणिक साहित्य में शैव सम्प्रदाय का उद्भव एवं विकास 100
डॉ. मनीषा सिंह/सुनीता देवी

विविधा चिंतन

18. पर्यावरणीय असंतुलन 105
डॉ. अंगद यादव
19. हिन्दी नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन 110
चाँदनी प्रकाश
20. हिमाचली लोकगीत लामण का स्वरूप और विश्लेषण 115
निर्मल सिंह/डॉ. आशुतोष कुमार
21. अलगावबोध : अवधारणा, स्वरूप और चुनौतियाँ 124
दीक्षा मेहरा
22. साहित्यिक पत्रिकाओं का वर्तमान 131
संगीता कुमारी
23. माता–पिता के असफल दाम्पत्य संबंध से अभिशप्त बालमन 136
निधि चन्द्र
24. जनजातीय समुदाय पर 'विद्यालयों के विलय' का प्रभाव 141
डॉ. अभय सागर मिंज/दीक्षा सिंह/विमल कश्यप
25. महिलाओं के विकास हेतु विभिन्न सरकारी योजनाओं के मार्ग में... 147
अशोक कुमार वर्मा/डॉ. शैलेन्द्र सिंह
26. भारत में वृद्धों के सामने संभावित समस्याएँ और उनके समाधान 152
प्रतीक कुमार/डॉ. शैलेन्द्र सिंह
27. भीमराव अंबेडकर और भारतीय संविधान 156
राजेश कुमार/डॉ. शैलेन्द्र सिंह

■

प्रतिरोध के औजार

डॉ० शिवनारायण

कहना मुश्किल है कि लोकतंत्र में प्रतिरोध के जो औजार राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने जन सामान्य को दिए, उनका प्रयोग आज उसी रूप में हो रहा या नहीं, जिन रूपों में वे चाहते–करते थे! बापू जीवन में सत्य का प्रयोग करते रहते थे और आत्मशोधन से प्रतिरोध के औजारों पर सान चढ़ाते थे। इसीलिए उनका हर औजार लक्ष्य–भेदन में अचूक होता। वे कहते थे, पापी से नहीं, पाप से घृणा करो। मनुष्य तो अच्छे–बुरे कर्मों का निमित्त मात्र होता है। इसलिए वे हृदय परिवर्तन की बात करते थे। हृदय परिवर्तन के दो मुख्य औजार हैं, सत्य और अहिंसा। ये दोनों आत्मा की शुद्धता के भी यंत्र हैं। सत्य आत्मप्रकाश है और अहिंसा करुणा। जो अपनी आत्मा के प्रकाश से संचालित होगा और जीव मात्र के प्रति करुणा का भाव रखेगा, वही सत्य और अहिंसा के मूल को साध पाएगा। सत्य का आग्रह आत्मबल के संवर्द्धन के लिए होता है।

मनुष्य देव नहीं है। वह पशु भी नहीं है। देवत्व और पशुत्व के मेल से जो तत्त्व बनता है, वही मनुष्य है। इसलिए मनुष्य में देवत्व और पशुत्व दोनों ही गुण होते हैं, लेकिन एक समय में कोई एक गुण ही उस पर हावी रहता है। मनुष्य जब देव होता है तो पशुत्व उसके अंदर ही कहीं दुबका पड़ा होता है या फिर जब वह पशु होता है तो देवत्व का भाव भी उसमें कहीं गहरे अंतर्लीन रहता है। परिस्थितियों के आग्रह से कोई गुण उसमें उभरकर सक्रिय होता है या फिर निष्क्रिय हो जाता है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का मेनका की मोहक मुस्कान पर स्खलित हो जाना या डाकू रत्नाकर का आदिकवि वाल्मीकि में रूपांतर यही प्रमाणित करता है कि मनुष्य में देवत्व और पशुत्व के गुणों का उदय–अस्त हालात पर निर्भर करते हैं। बुरा–से–बुरा आदमी भी भला हो सकता है और भला–से–भला आदमी भी बुरा बन सकता है। आत्मप्रकाश के तेज से जीव मात्र के प्रति करुणा का भाव जो अपने में उत्पन्न कर लेता है, उसमें देवत्व के गुण आ जाते हैं और जो इस क्षमता का विकास नहीं कर पाता, वह पशुत्व जीवन जीने को अभिशप्त रहता है। हृदय परिवर्तन की यह प्रक्रिया चलती रहती है। शासक कितना ही बर्बर

हो या फिर कोई कानून कितना ही अमानवीय क्यों न हो, उसके प्रतिकार के जो औजार महात्मा गाँधी ने विकसित किए, लोकतंत्र में आज भी वे कारगर हैं। हाँ, उसके उपयोग की शुद्धता को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। प्रतिरोध प्रहारक भी होता है और आत्मसंहारक भी। कमजोर व्यक्ति किसी का प्रतिरोध करने के लिए उस पर प्रहार करता है, जबकि बलवान आत्मसंहार की प्रक्रिया से गुजरकर प्रतिरोध दर्ज करता है। जो बलवान नहीं होगा, वह सत्याग्रह नहीं कर सकता है। यह कमजोर प्राणियों का अस्त्र नहीं है।

'हिंद स्वराज' में महात्मा गाँधी ने लिखा है कि 'जो देश के भले के लिए सत्याग्रही होना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, गरीबी अपनानी चाहिए, सत्य का पालन तो करना ही चाहिए और हर हाल में अभय बनना चाहिए। ब्रह्मचर्य एक महान व्रत है, जिसके बिना मन मजबूत नहीं होता। ब्रह्मचर्य का पालन न करने से मनुष्य वीर्यवान नहीं रहता, नामर्द और कमजोर हो जाता है। जिसका मन विषय में भटकता है, वह शेर क्या मारेगा?' जाहिर है कि सत्याग्रह प्रतिरोध का आत्मसंहारक प्रतिरूप है, जिसे कोई निर्भय अमृतपुत्र ही साध सकता है। यह कठोर व्रत है, जिसमें सत्य का प्रयोग आवश्यक है। बकौल महात्मा गाँधी 'जो सत्य का सेवन नहीं करता, वह सत्य का बल, सत्य की ताकत कैसे दिखा सकेगा?' दिखावे के लिए प्रतिरोध के रूप में सत्याग्रह का मार्ग अपनाना घातक होता है–'सत्याग्रह या आत्मबल को अँग्रेजी में पैसिव रेजिन्टेन्स कहा जाता है। जिन लोगों ने अपने अधिकार पाने के लिए खुद दुःख सहन किया है, उनके दुःख सहने के ढंग के लिए यह शब्द बरता गया है। उसका ध्येय लड़ाई के ध्येय से उल्टा है। जब मुझे कोई काम पसंद न आए और वह काम मैं न करूँ तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबल का उपयोग करता हूँ। मिसाल के तौर पर, मुझ पर लागू होने वाला कोई कानून सरकार ने पास किया। वह कानून मुझे पसंद नहीं है। अब अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद्द करवाता हूँ तो कहा जाएगा कि मैंने शरीर–बल का उपयोग किया। अगर मैं उस कानून को मंजूर ही न करूँ और उस कारण से होने वाली सजा भुगत लूँ, तो कहा जाएगा कि मैंने आत्मबल या सत्याग्रह से काम लिया। सत्याग्रह में मैं अपना ही बलिदान देता हूँ। यह तो सब कोई कहेंगे कि दूसरों का भोग–बलिदान लेने से अपना भोग–बलिदान देना ज्यादा अच्छा है। इसके सिवा, सत्याग्रह से लड़ते हुए अगर लड़ाई गलत ठहरी तो सिर्फ लड़ाई छेड़ने वाला ही दुःख भोगता है। यानी अपनी भूल की सजा वह स्वयं भोगता है। ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं, जिनमें लोग गलती से शामिल हुए थे। कोई भी आदमी दावे से यह नहीं कह सकता कि फलाँ काम खराब ही है। अगर ऐसा ही है तो फिर उसे वह काम नहीं करना चाहिए और उसके लिए दुःख भोगना, कष्ट सहन करना चाहिए। यही सत्याग्रह की कुंजी है।'

तो, सत्याग्रह की कुंजी दूसरों को सबक सिखाना नहीं, आत्मानुशासन और संयम का कठोर व्रत है। सभी इस व्रत का पालन नहीं कर सकते। शासक बुरा है और वह आम जनता का कल्याण नहीं करता तो उसका प्रतिरोध प्रहारक नहीं, आत्मसंहारक तरीकों से होगा, यही सत्याग्रह निदेशित करता है। आत्मसंहार हृदय–परिवर्तन के सिद्धांत की एक प्रक्रिया है। आज अधिकांश लोग इस अस्त्र की प्रासंगिकता को नकार देंगे। गाँधी जी के जमाने में भी ऐसे लोगों की जमात बहुत बड़ी थी, जो सत्याग्रह को हास्यास्पद मानते थे। वे आत्मबल का मखौल उड़ाते और शरीर–बल से फल प्राप्ति की बात करते थे। समय साक्षी है कि गाँधी जी ने सत्याग्रह का सफल परीक्षण किया और सत्याग्रहियों की एक लंबी फौज खड़ी कर दी थी, जिन्होंने ब्रिटिश हुकूमत की दासता से भारत को मुक्ति दिलाई। विश्व के लोकतंत्र में सत्याग्रह प्रतिरोध का अनोखा अस्त्र था, जिसका बल–प्रभाव विश्व के खूँखार संप्रभुओं ने भी माना। भारतीय स्वतंत्रता के बाद महात्मा गाँधी का नाम तो खूब चला, लेकिन उनके अस्त्र निस्तेज होते चले गए। गाँधी जी के विचार, उनके दर्शन सबके सब बेमानी होते से लगे। हालाँकि उनके विचारों, दर्शन आदि के प्रचार–प्रसार के लिए देश में सैकड़ों संस्थाएँ काम कर रही हैं, पर सबके सब हाशिये में पड़ी हैं। समय, समाज, सरकार किसी ने उसकी प्रासंगिकता को मूर्त करने की ईमानदार कोशिश नहीं की। इस बीच आजादी की दूसरी लड़ाई भी एक वृद्ध सेनानी के नेतृत्व में लड़ी गई, जिसने संपूर्ण क्रांति के जरिये देश की तकदीर बदलनी चाही। उस आंदोलन में भी सत्याग्रह का उपयोग किया गया और नारा लगाया गया 'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा।' हालाँकि उस आंदोलन में बर्बर सत्ता के प्रतिरोध में हिंसा की अनेक घटनाएँ हुईं और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, महँगाई, भ्रष्टाचार के प्रतिरोध में जो राष्ट्रव्यापी आंदोलन हुए, उसमें राज्यों से लेकर केंद्र तक की सरकारें बदल गईं। परिवर्तन की उस आँधी में आंदोलनकारियों की सरकारें बनीं। अनेक राज्यों में तो छात्रों–नौजवानों तक की सरकारें बन गईं।

पर, हुआ क्या? आंदोलन में क्योंकि प्रतिरोध के अस्त्र सही नहीं थे, इसलिए उसका परिणाम भी रचनात्मक नहीं रहा। जिस वृद्ध सेनानी के नेतृत्व में वह पूरा आंदोलन हुआ, राष्ट्र ने उन्हें 'लोकनायक' का सम्मान दिया। देश में उनकी मूर्तियाँ गाँधी जी की तरह लगने लगीं, पर उनके विचार–दर्शन को कामों में नहीं उतारा गया। 'संपूर्ण क्रांति' का नारा सत्ता परिर्वतन भर में सिमट कर रह गया। व्यवस्था में कहीं कोई परिवर्तन नहीं आया। कभी 'सप्तक्रांति' का नारा भी इस देश में लगा था, जिसमें कोटि–कोटि सामान्य जन की तकदीर बदलने का मंत्र था। पर वह भी काल के गर्त में कहीं दब गया। व्यवस्था परिवर्तन से संबंधित एक–से–एक विचार और दर्शन आते रहे, पर सबके सब हाशिये में चले गए।

जितने भी आंदोलन हुए, सबमें प्रतिरोध का तरीका प्रहारक रहा। अनैतिक प्रतिरोध से नैतिक फल की आशा ही बेमानी है। पवित्र साध्य के लिए साधनों की पवित्रता पर भी ध्यान देना होगा, यह गाँधी जी बराबर निदेशित करते थे। काल–प्रवाह में उनके अनुशासन, दर्शन, विचार सबको ओझल कर दिया गया, सिवाय उनके नाम स्मरण के! महात्मा गाँधी पाश्चात्य सभ्यता के कटु आलोचक थे और औपनिवेशिक साम्राज्यवाद, औद्योगिक पूँजीवाद तथा तर्कवादी उपभोक्तावाद की सतत बखिया उधेड़ते थे। भारत में औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की वजह नैतिक दुर्बलता मानते हुए कहते थे, 'अँग्रेजों ने भारत को कब्जे में नहीं लिया, वरन् हमने उसे तोहफे में दिया। वे यहाँ अपनी ताकत की वजह से नहीं हैं वरन् हमलोगों ने उनकी जड़ को सिंचित किया है और लगातार सिंचित कर रहे हैं... ।' (The English have not take India, we have given it to them. They are not in India because of their strength, but because we keep them…) जाहिर है कि गाँधी जी के लिए स्वतंत्रता राजनीतिक दृष्टि से अधिक आध्यात्मिक दृष्टि से कहीं महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए आंतरिक बल, नैतिक मूल्य और सांस्कृतिक चेतना के विकास से राष्ट्र के समग्र संवर्द्धन की वकालत करते थे। दुर्भाग्यवश ऐसा हो नहीं पाया। भारत के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बननी शुरू हुई तो उसे पाश्चात्य औद्योगिक विकास की नीतियों से निदेशित किया गया और देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे राष्ट्रवादी नेताओं के उन सुझावों को निरस्त कर दिया गया कि भारत कृषि प्रधान देश है, इसलिए इसके विकास की योजनाएँ कृषि एवं कुटीर उद्योग आधारित होनी चाहिए। दुष्परिणामस्वरूप भारत का भौतिक विकास तो हुआ, किंतु यहाँ के कुटीर उद्योग नष्ट होते चले गए और सारे कारीगर श्रमिक वर्ग में तब्दील हो गए। देखते ही देखते भारत में 'इंडिया' नाम से एक नए देश का उदय हो गया। 'इंडिया' के नागरिक मालामाल होते चले गए, जबकि भारत के जन कंगाल होकर रह गए। भारतीय लोकतंत्र में लोक तंत्र का ग्रास बनता चला गया। प्रतिरोध के औजार भोथर रहने की वजह से आंदोलनों में उनका उपयोग निष्फल रहा!

बीती सदी के अंतिम दशक में विकसित मुल्कों का पूँजी बाजार मंदी की आँधी में थरथराने लगा तो विश्व में नई आर्थिक नीति का दौर आरंभ हुआ, जो आर्थिक उदारीकरण के नाम से जाना गया। विकासशील देशों में विकसित देशों का बाजार खुलने–खिलने लगा। भारत में देखते–देखते हजारों बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ छा गईं, जिसकी चकाचौंध में लोगों को भौतिक समृद्धि का जीवन पाना आसान–सा लगने लगा। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्फोट से पूरी दुनिया एक विश्वग्राम (ग्लोबल विलेज) में तब्दील हो गई। पूँजी बाजार ने मूल्य, संस्कृति, परंपरा, नैतिकता आदि को ध्वस्त कर मनुष्य को उपभोक्ता–संसाधन में बदल

डाला। भाषा–संस्कृति आदि स्थानीयता का दर्प दरक गया। पूँजी बाजार को अपने साम्राज्य विस्तार के लिए जिन–जिन सहूलियतों की जरूरत थी, उसे पाने के लिए अन्य तमाम वर्जनाओं को रौंद डाला गया। मीडिया बाजार का क्रीतदास हो गया। विश्व पूँजी बाजार द्वारा एक ऐसे संवेदनशून्य और नैतिकताविहीन विश्वग्राम की रचना की जा रही है, जहाँ बुद्धि–चेतना का उपयोग वर्जित होगा। आर्थिक उदारीकरण में धनार्जन के तरीकों पर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत में चुनाव प्रणाली इतनी महँगी होती चली गई कि कोई सामान्य व्यक्ति तप, त्याग और सेवा के बल पर चुनाव नहीं लड़ सकता। राजनीति का पहले अपराधीकरण हुआ, फिर पूँजीकरण। चुनाव में पूँजी बाजार राजनीतिक दलों को लाखों करोड़ की राशि चंदा के नाम पर देता है और चुनाव के बाद जिस किसी राजनीतिक दल की सरकार बनती है, उससे कई गुणा अधिक राशि वसूल करता है। जाहिर है कि इससे देश में महँगाई, भ्रष्टाचार आदि बेतहाशा बढ़ेगी और पूँजी बाजार के नियंत्रण में कल्याणकारी सरकारें भी सुस्त रहेंगी। सत्ता में कोई भी राजनीतिक दल काबिज रहे, वह जनता की मुश्किलें आसान नहीं कर सकता। आज राजनीतिक सत्ता पूँजी बाजार की चेरी हो गई है। कहना चाहिए कि भारत आज अघोषित आर्थिक युद्ध के दौर से गुजर रहा है, जिसमें उसे किसी विदेशी सत्ता से नहीं, 'इंडिया' से ही लड़ना पड़ रहा है। यह तो 'इंडिया' के पूँजी साम्राज्य विस्तार का ही दुष्परिणाम है कि भारत के लाखों करोड़ रुपये विदेशी बैंकों में फल–फूल रहे हैं और यहाँ कोटि–कोटि जनता बी.पी.एल. कार्ड पर सिसक रही है! भारत में राजनीतिक दल अपना विश्वास खोता जा रहा है। महँगाई, भ्रष्टाचार आदि किसी भी मुद्दे पर वह राष्ट्रव्यापी आंदोलन छेड़े, जनता उससे नहीं जुड़तीय जबकि राजनीति से बाहर का कोई भी व्यक्ति इन्हीं मुद्दों पर सड़क पर उतरता है तो लाखों जनता उसके पीछे हो जाती है। भारत आज एक ऐसे निर्णायक मोड़ पर खड़ा है, जहाँ उसे 'इंडिया' और पूँजी बाजार के प्रतिरोध का मार्ग खोजते हुए अपने को खुशहाल बनाना है।

पूँजी बाजार ने भाषा को उसके मूल अर्थ से निष्प्रभावी कर उसमें इतने चटखारे भर दिए हैं कि उससे अर्थसंगत काम लेना मुश्किल हो गया है। भारत में संकट के क्षणों में यदि हमें गाँधी याद आते हैं तो 'गाँधीगिरी' जैसे शब्दों का ईजाद कर बाजार उसे इतना चटखारेदार बना देता है कि उसके नामस्मरण का प्रभाव ही निष्फल हो जाता है। गाँधी जी के सत्याग्रह, अनशन, धरना आदि अस्त्रों के उपयोग तक में भी वहीं 'गाँधीगिरी' का प्रभाव काम करने लगता है। कोई योगी अनशन करता है तो वह भोगी बना दिया जाता है या कोई अण्णा सत्याग्रह कर जनबल तैयार करना चाहता है, तो वह सत्ताग्रही मान लिया जाता है। आज पूँजी बाजार अपने प्रतिरोध के सभी ठिकानों पर चौकस दृष्टि रख रहा है। यह

भी साफ नहीं है कि जो लोग महात्मा गाँधी के औजारों से सत्ता का प्रतिरोध कर रहे हैं, उनका प्रतिरोध प्रहारक है या कि आत्मसंहारक! यदि वह प्रहारक है तो पूँजी बाजार आसानी से उसे चट कर जाएगा! प्रतिरोध आत्मसंहारक है, ऐसा कोई संकेत किसी आंदोलन से मिल नहीं पा रहा। फिर सत्ता या पूँजी बाजार को उससे कैसा भय! भारत की जनता हर उस आंदोलन और उसके नेतृत्व को टुक–टुक देख रही है कि कौन उसके जीवन की त्रासदियों को खत्म कर सकता है कि वह उनसे जा लिपटे!

देखा जाए तो आज लोकतंत्र को वास्तविक खतरा पूँजी साम्राज्यवादियों से है, जो राजनीति और सत्ता को नियंत्रित कर पूँजी का खेल खेल रहा है। इस खेल का प्रतिकार प्रतिरोध के गाँधीवादी औजारों से किया जा सकता है, यदि उन पर आत्मशोधन और संकल्प बल से सान चढ़ाए जाएँ। ग्लोबल गाँव के देवताओं ने भ्रष्टाचार को शिष्टाचार बनाकर उसे जन–जन की आकांक्षा से जोड़ दिया है। मार्ग कोई हो, हर कोई धनार्जन की होड़ में आज शामिल है। ऐसे में कोई लोकपाल कैसे पूरे देश से भ्रष्टाचार को खत्म कर सकता है? भारत में ही 'इंडिया' बनाकर सुख–समृद्धि में जीने वाले लोग आम जनता को 'लोकपाल' का झुनझुना दिखाकर बहलाने की कोशिश करें कि इसी से तुम्हारे कष्टों का हरण होगा और तुम्हारे जीवन में भी शांति–खुशहाली आएगी, बर्बर मजाक के सिवाय कुछ नहीं है! अघोषित आर्थिक युद्ध के इस संक्रमणकाल में हमें आज शिद्दत से महात्मा गाँधी याद आते हैं! प्रतिरोध के उनके तमाम औजार याद आते हैं। उन औजारों पर सान चढ़ाकर उनका उपयोग वही कर सकता है, जो पहले खुद अपने भीतर के भ्रष्टाचार से लड़कर उस पर विजय हासिल करे! हमने खुद पर विजय हासिल कर लिया तो पूँजी साम्राज्यवादियों और भ्रष्ट व्यवस्था पर भी विजय हासिल कर ही लेंगे, क्योंकि वहाँ गाँधी जी के दिए प्रतिरोध के औजार हमारे साथ होंगे, जो हर विघ्न पर अचूक प्रहार करता है! नागरिक वीर्यवान अमृतपुत्र हों तो भारत जयी अवश्य होगा!!

■

मुक्तिबोध का तीसरा पक्ष

पंकज चौधरी'❖

साहित्य, संस्कृति, कला–विज्ञान और जीवन में क्षणों की बातें होती रहती हैं। उनके महत्वर और भंगुरता पर भी खूब बातें हुई हैं। लेकिन मेरा खयाल है कि गजानन माधव मुक्तिबोध पहले ऐसे कवि–चिंतक हैं जिन्होंने व्यवस्थित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के जरिए कला के तीन क्षणों की खोज करते हुए उनकी अहमियत पर प्रकाश डाला है। उनकी यह खोज बहुत ही अनौपचारिक और संवाद के माध्यम से पूर्ण होती है या इसे हम इस तरह भी कह सकते हैं कि एक कहानी की शक्ल में यह संवाद उनकी खोज की समस्या का समाधान करने में काफी कारगर सिद्ध होता है। मुक्तिबोध की किसी खोज को पुर्णाहूति तक पहुंचाने की उनकी यह अपनी शैली या अंदाज है। मुक्तिबोध अपनी खोज के सिलसिले में संवाद करते हैं। यह संवाद किसी और से नहीं बल्कि वह स्वयं से करते हैं क्योंकि केशव के रूप और गुण का जो परिचय मिलता है, उससे मुक्तिबोध का परिचय ही मेल खाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि अपनी बात को आसानी से समझाने के लिए लेखक केशव नाम का एक चरित्र गढ़ता है और कला के तीन क्षणों की खोज आरंभ करता है।

कला के तीन क्षणों की खोज कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि इसके पीछे बीसवीं शताब्दी की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक–सांस्कृतिक परिस्थितियां काम कर रही होती हैं। दूसरा विश्व युद्ध समाप्त हो चुका होता है। भारत की आजादी से लोगों का मोहभंग हो चुका होता है। सीपीआई विभाजन की ओर बढ़ चुकी होती है। गांधी की शव परीक्षा शुरू हो चुकी होती है। लोहिया के नेतृत्व में गैर–कांग्रेसवाद अपने उफान पर होता है। नेहरु के आधुनिक भारत के स्वप्न पर सवाल लगने शुरू हो चुके होते हैं और आम्बेडकर की अहमियत और प्रभाव अपना रंग लगाना शुरू कर चुका होता है।

साहित्य में छायावाद, प्रगतिशील आंदोलन, प्रयोगवाद, नई कविता अपने अस्तित्व में आ चुके होते हैं। धर्म और नए–नए विचारों के आगमन भी उनके जीवन में परोक्ष रूप से हस्तक्षेप करना शुरू कर चुके होते हैं। सारा कुछ गड्ड–मड्ड हो चुका होता है। लगभग अराजकता की स्थिति में लोग उभ–चुभ कर रहे होते

❖ संपर्क : 348/4, दूसरी मंजिल, गोविंदपुरी, कालकाजी, नई दिल्ली– 110019
मो.– 9910744984, 9971432440

हैं। ऐसे भयावह समय को अभिव्यक्त करने के लिए गजानन माधव मुक्तिबोध को कला के ऐसे उपकरणों की तलाश थी जो सत्य का संधान कर सके और जड़ जमा चुके विचारों का उपचार कर सके। मुक्तिबोध इसी प्रक्रिया में कला के तीन क्षणों की खोज करते हैं जिसमें सबसे महत्वपूर्ण 'तीसरा क्षण' है। इसी तीसरे क्षण में फैण्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया शुरू होती है और वह जब पूर्ण होती है तो कलाकार को यह महसूस होता है कि जो उसे कहना था, वह पूर्ण रूप से नहीं कह सका और ऐसा बहुत कुछ कह गया जो शुरू में उसे मालूम नहीं था कि कह जाएगा।

कला के इस तीसरे क्षण का सबसे क्लासिक और श्रेष्ठ उदाहरण स्वयं मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' है, जिसके बारे में कवि को भी अंदाजा नहीं था कि व्यवस्था की विद्रूपता और सड़ांध में स्वयं सहित वे सब भी शामिल हैं जिन्हें असंदिग्ध समझा जाता है। मुक्तिबोध की यह थियरी कुछ देर के लिए विचारधारा का निषेध करती प्रतीत होती है जिसमें पहले से ही यह तय होता है कि निष्कर्ष क्या देना है और रचना को कहां पर जाकर खत्म होना है।

वैसे तो कला के तीनों क्षण एक्सपेरिमेंट हैं लेकिन उसका तीसरा क्षण सबसे बड़ा एक्सपेरिमेंट है, जिसमें शुरू में हमें बहुत कुछ पता नहीं होता लेकिन जैसे–जैसे प्रयोग आगे की ओर बढ़ता जाता है, हमें अज्ञात, अनकही, अनचिन्हीं बातों का पता चलता जाता है। सबसे जरूरी बात यह कि प्रयोग कहीं और कभी खत्म नहीं होता। भले ही रचना लम्बी होते हुए भी अधूरी रह जाए। इस प्रयोग में जैसा कि मुक्तिबोध कहते हैं कि कलाकार का समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह भी परोक्ष और अचेतन तरीके से प्रवाहित होता रहता है। इस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि विश्वर की महत्वहपूर्ण, श्रेष्ठ और महान रचनाओं पर मुक्तिबोध का यह 'तीसरा क्षण' लागू होता है।

कला क्षणों की बात करते हुए मुक्तिबोध का कहना है कि कुछ भी व्यक्तिक तब नहीं रहता जब हमारे जीवन के उत्कृष्ट तीव्र अनुभव क्षण हमसे पृथक होकर दूसरे क्षण में फैण्टेसी का रूप धारण करते हैं और तीसरे क्षण में शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कला के तीन क्षणों की प्रक्रिया से गुजरते ही हम वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक हो पाते हैं। मुक्तिबोध की व्यक्तिकता का निर्वैयक्तिकता में कंवर्ट होना टीएस इलियट के 'निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत' की याद दिलाती है, जिसमें कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् उससे पलायन है। मतलब उसे व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुतख होना है। मुक्तिबोध का यह आत्म जैसे ही फैण्टेसी में तब्दील होता है वैसे ही उसके व्यक्तिक से निर्वैयक्तिक या स्वउ से सार्वजनिक होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कला के तीन क्षणों की खोज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता किसी का व्यक्तिक से निर्वैयक्तिक होना है। यानी यह जो कुछ भी है सिर्फ मेरा नहीं है बल्कि सबका है। कबीर के शब्दों में–

"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपता, क्याज लागे है मोर।।"

मुक्तिबोध के कला के तीन क्षण या उसका सबसे महत्वछपूर्ण भाग तीसरा क्षण कोई सायास उपक्रम नहीं है। यह उनके आत्मसंघर्ष, आत्म द्वंद्व और आत्माकलोचन की खोज है। इस खोज की खराद पर यदि साहित्य, समाज, राजनीति की कोई प्रवृत्ति या वाद थोड़ी देर के लिए चढ़ जाए या उसका खंडन–मंडन हो जाए, तो यह भी अनायास है। इसमें मुक्तिबोध का कोई पूर्वाग्रह नहीं। उनका कोई लाभ–हानि नहीं। कला का तीसरा क्षण छायावाद से लेकर नई कविता तक उस हरेक वाद को प्रश्नांतकित करता है जो अतिशय कल्पतनाशीलता, व्यीक्तिवाद, अलौकिकता, रहस्यात्मकता, आत्मोपरकता से भरा हुआ है या उसके सार्वभौमिक होने का नाटक करता है। कला का यह तीसरा क्षण हमेशा सामूहिकता और सार्वभौमिकता की प्रतिष्ठो करता है। इसने उस प्रवृत्ति का विरोध किया है, जिसमें आत्मिपरक कविताओं की व्या ख्याक कर उसे समय की कविता बताने की चेष्टा की गई। मुक्तिबोध कहते हैं– ''मुझे गहरा संदेह है कि आजकल की सौन्दार्य–परिभाषा (यदि उसे व्या'ख्याक कहें तो) केवल कविता, और वह भी आत्मपरक कविता की विशेषताओं के आधार पर बनाई जा रही है। सौन्दार्य–संबंधी इन व्याख्याओं का प्रकट या अप्रत्यक्ष उद्देश्य आज की काव्या–दृष्टि का डिफेन्स है। किन्तु ये व्याख्याएं कुछ इस प्रकार से, इस ठाठ से और शान से बनाई जाती हैं, मानो वे सार्वभौम सत्य् की सार्वकालिक स्पन्दनाएं हों। इस पोज और पॉस्च की जरूरत नहीं। यह अवैज्ञानिक दृष्टि है। अगर साहित्यिक सौन्दर्य–संबंधी मीमांसा करनी है तो आपको अपनी दृष्टि केवल आत्मपरक कविता–वह भी आजकल की कविता–तक ही सीमित नहीं करनी चाहिए। और ऐसी ही व्याख्या करनी है तो वह पोज और पॉस्चिर त्याग देना चाहिए। मुझे इस पोज से चिढ़ है।''[1]

मेरा खयाल है कि मुक्तिबोध स्पष्ट और आसान हैं। उनकी कला और साहित्य संबंधी धारणाओं और विचारों में कोई झोल नहीं है। उन्हें एक षड्यंत्र के तहत जटिल, कठिन, रहस्यवादी, तिलस्मी, अव्यक्त और अस्तित्ववादी बनाकर पेश करने की कोशिश हुई। मुक्तिबोध सबसे आसान, सहज और उनके सबसे करीब हैं जिनकी सांसों को आराम नहीं है–

''कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं–

'सफल जीवन बिताने में हुए असमर्थ तुम!/तरक्की के गोल–गोल/घुमावदार चक्करदार/ऊपर बढ़ते हुए जीने पर चढ़ने की/चढ़ते ही जाने की/उन्नति के बारे में/तुम्हारी ही जहरीली/उपेक्षा के कारण, निरर्थक तुम, व्यर्थ तुम!!'

कटी–कमर भीतों के पास खड़े ढेरों और/ढूहों में खड़े हुए खंभों के खंडहर में/बियाबान फैली है पूनों की चांदनी,/आंगन के पुराने–धुराने एक पेड़ पर।/अजीब–सी होती है, चारों ओर/वीरान–वीरान महक सुनसानों की/पूनों की चांदनी की धूलि की धुंध में।/वैसे ही लगता है, महसूस यह होता है/'उन्नति' के क्षेत्रों में, 'प्रतिष्ठा' के क्षेत्रों में/मानव की छाती की, आत्मा की, प्राणी की/सोंधी गंध/कहीं नहीं, कहीं नहीं/पूनों की चांदनी यह सही नहीं, सही नहीं/केवल मनुष्यहीन वीरान क्षेत्रों में/निर्जन प्रसारों पर/सिर्फ एक आंख से/'सफलता' की आंख से/दुनिया को निहारती फैली है/पूनों की चांदनी।/सूखे

हुए कुओं पर झुके हुए झाड़ों में/बैठे हुए घुग्घुओं व चमगादड़ों के हित/जंगल के सियारों और/घनी–घनी छायाओं में छिपे हुए/भूतों और प्रेतों तथा/पिचाशों और बेतालों के लिए–/मनुष्य के लिए नहीं–फैली यह/सफलता की, भद्रता की,/कीर्ति यश रेशम की पूनों की चांदनी।''[2]

हैरत तो तब होती है जब रामविलास शर्मा जैसे आलोचक मुक्तिबोध के रूप को बिगाड़ने की कोशिश करते हैं और उन्हें निरे अस्तित्ववादी, रहस्य वादी, व्यक्तिवादी और काफ्का के प्रदेश में विचरण करने वाला ठहराते हैं। रामविलास जी यहीं तक नहीं रुकते। उन्होंने मुक्तिबोध को सर्वहारा का विरोधी भी बताया और कहा कि दरअसल मुक्तिबोध की असली पीड़ा यह है कि उनका कवि या व्यक्ति सर्वहारा वर्ग में कैसे फिट बैठेगा? जबकि मुक्तिबोध के समस्त विचारों का सारांश यह है– ''व्यक्ति को मुक्ति अकेले में नहीं मिल सकती। यदि वह हासिल होगी तो सामूहिक और सभी को हासिल होगी।''ऐसे में उन पर अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी या रहस्यवादी होने का आरोप लगाना सर्वथा मिथ्या है। अब सवाल यह पैदा होता है कि आखिर रामविलास शर्मा मुक्तिबोध के प्रति इतने कठोर क्यों हैं? इसका जवाब पहले मुक्तिबोध के शब्दों में ढूंढना होगा– ''क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।''[3] मुक्तिबोध के कथन का भाष्य नंद किशोर नवल करते हुए कहते हैं– ''आज मार्क्सवाद के प्रसंग में ये बातें पुरानी लग सकती हैं लेकिन ज्ञातव्य– है कि मुक्तिबोध का मार्क्सवाद डॉ. रामविलास शर्मा का मार्क्सवाद नहीं है, जो उसका स्तालिनवादी संस्करण था और इस कारण जिसमें सब तरह से पूर्णता थी। स्वभावतः उसमें न विकास की कोई गुंजाइश थी, न ही उसे उसकी आवश्यकता ही थी।''[4]

कला का तीसरा क्षण यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़ा है। यहां आदर्श, रोमान और रामराज्य की कोई गुंजाइश नहीं है। यहां अतीत उतना ही ग्राह्य और स्वीकार्य है जितना कि वह बहुजन हिताय बहुजन सुखाय है। यहां भावुकता का निषेध है और बौद्धिकता का अंगीकार है। यह अकारण नहीं है कि 'तीसरा क्षण' निबंध में गांधी और गांधीवाद की स्पष्ट और कड़े शब्दों में भर्त्सना की गई है– ''गांधीवाद ने भावुक कर्म की प्रवृत्ति पर कुछ इस ढंग से जोर दिया है कि प्रश्न बौद्धिक प्रवृत्ति दबा दी गई है। असल में यह गांधीवादी प्रवृत्ति प्रश्न, विश्लेषण और निष्कर्ष की बौद्धिक क्रियाओं का अनादर है। यह बात उसने मुझे तब कही थी जब सन् 30–31 का सत्याग्रह खत्म हो चुका था और विधान सभाओं में घुसने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही थी।''[5]

मुक्तिबोध अपने समय में चल रहे आंदोलनों और गतिविधियों से खुद को अपडेट रखते थे। उनकी 'एक साहित्यिक की डायरी' का पहला ही निबंध है 'तीसरा क्षण',जिससे पता चलता है कि 14–15 साल की उम्र से ही वे अत्यं त जागरुक,जिज्ञासु, खोजी और देश–दुनिया में घट रही घटनाओं पर उन्होंरने तर्क–वितर्क करना शुरू कर दिया था। मुक्तिबोध के उपर्युक्त कथन को हमें सत्याग्रह आंदोलन के साथ–साथ लंदन में 1930–32 के दरमियान चले तीन गोलमेज कॉन्फ्रेंसों के आयोजन से भी जोड़कर देखना चाहिए। मुक्तिबोध उस

वक्त 14–15 साल के थे और गांधी से अपने को कनेक्शन नहीं कर पाते थे। गौरतलब है कि दलितों के अधिकारों को लेकर आम्बेडकर और गांधी के बीच दूसरे गोलमेज कॉन्फ्रेंस में तीखी नोक–झोंक हुई थी, जिसने मुक्तिबोध को अवश्यज झकझोरा होगा।

आम्बेडकर दलित समाज की पैदाइश होने के कारण उसकी वास्तविकता और जरूरत से अवगत थे, जबकि गांधी दलित समाज को दूर से जानते थे। दलितों को मिलने वाले पृथक निर्वाचन (सेपरेट इलेक्टोरल) के सवाल पर गांधी की हठधर्मिता और आमरण अनशन ने आम्बेडकर को उस समय पशोपेश में डाल दिया, जब उनकी पत्नीम श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने उनसे अपने सुहाग की भीख मांग डाली। इस तरह से दलितों के सशक्तीकरण के रास्ते को गांधी और आम्बेडकर के बीच पूना पैक्ट करवाकर रोक दिया गया। यहां यह बताना जरूरी है कि आम्बे डकर की सेपरेट इलेक्टोरल की मांग यदि तत्कारल मान ली गई होती, तो दलितों की समस्योएं कब का खत्म हो चुकी होतीं। लेकिन गांधी की हठधर्मिता और अदूरदर्शिता ने इतिहास के निर्माण को अवरुद्ध कर दिया। सेपरेट इलेक्टोरल की जगह पर ज्वाइंट इलेक्टोरल की पद्धति ने दलितों में चमचा युग (कांशीराम) यानी चमचा लीडरशीप शुरू किया, जिनमें सांसद, विधायक बनते ही अपने समाज से मुंह मोड़ लेने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है क्योंकि द्विजों की पसंद के ये उम्मीदवार होते हैं।

अबयह जो मुक्तिबोध के 'अंतःकरण के आयतन का संक्षिप्तीकरण' है, क्यां इसका संबंध आम्बेडकर के उस कथन से है जिसमें उन्होंसने कहा है– ''बुद्धिजीवी दुष्ट भी हो सकते हैं।'' मेरा मानना है कि इनमें समानता है क्योंकि दोनों के कथन कमोबेश बुद्धिजीवी वर्ग को ही संबोधित हैं। आम्बेडकर का सीधा–सीधा तो मुक्तिबोध का परोक्ष रूप से। आम्बेडकर अपने समय के अकेले ऐसे योद्धा थे जो दलित–बहुजनसवालों को बड़े स्तेर पर एड्रेस कर रहे थे। जबकि यह काम और भी लोग कर सकते थे। आम्बेडकर बुद्धिजीवियों के लिए 'दुष्ट' शब्द का प्रयोग इसलिए भी कर रहे थे क्योंकि उन्हें आशंका थी कि वंचितों–पीड़ितों के अधिकारों के लिए संविधान में उन्होंने जो प्रावधान किए हैं, अगर उन्हें लागू करने वाले दलित हितैषी, शुभेच्छु नहीं हुए तो वे प्रावधान धरे के धरे रह जाएंगे। देश की आजादी से लेकर अभी तक दलितों के अधिकारों का किस तरह हस्र किया गया है, उसको यहां बताने की जरूरत नहीं है।

मुक्तिबोध के 'अंतःकरण के आयतन का संक्षिप्तीकरण' जैसे पदों का प्रयोग उनके लिए है जो अतिशय कल्पना की उड़ान भरते हुए व्यक्तिवाद, अलौकिकता, अमूर्तता, आत्मेवाद और कट्टरता आदि को साहित्य में स्थापित करने की जुगत भिड़ाते रहते हैं। उनके 'अंतःकरण का आयतन संक्षिप्त है जिनके सरोकार में देश के करोड़ों गुलाम, अपमानित, प्रताड़ित, भूखी जनता और स्वतंत्रता आंदोलन जैसा महान मुक्तिकामी आंदोलन शामिल नहीं था। मुक्तिबोध के 'अंतःकरण के

(शेष पृष्ठ 21 पर)

'मैला आँचल' में

सामाजार्थिक जीवन की पड़ताल

चंदन कुमार *

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले के औराही हिंगना ग्राम में हुआ था।1954 ई. में इनका पहला आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ। अपने पहले उपन्यास से ही इन्हे हिंदी के कथाकार के रूप में अभूतपूर्व प्रतिष्ठा मिली। मैला आँचल हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास है। नेपाल की सीमा से सटे उत्तर–पूर्वी बिहार के एक पिछड़े ग्रामीण अंचल को पृष्ठभूमि बनाकर इसमें वहाँ के जीवन का, जिससे वह स्वयं भी घनिष्ट रूप से जुड़े हुए थे, अत्यन्त जीवन्त, मार्मिक और मुखर चित्रण किया है। इस उपन्यास की कथा–वस्तु बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज की ग्रामीण जिंदगी है। यह स्वतंत्र होते एवं उसके तुरंत बाद के भारत के सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक परिदृश्य का ग्रामीण संस्करण है। रेणु के ही शब्दों में– "इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है कुरूपता भी" मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया। "कथा की सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ पता नहीं अच्छा किया या बुरा!"[1] इस उपन्यास में गरीबी, रोग, भुखमरी, जहालत तथा धर्म की आड़ में हो रहे व्यभिचार, शोषण, बाह्याडंबरों, अंधविश्वासों आदि का चित्रण है।

शिल्प की दृष्टि से इसमें फिल्म की तरह घटनाएं एक के बाद एक घटकर विलीन हो जाती है एवं दूसरी प्रारंभ हो जाती है। इसमें घटनाप्रधानता है जिस वजह से इसमें कोई केन्द्रीय चरित्र या कथा नहीं है। इस उपन्यास में नाटकीयता और किस्सागोई शैली का भी प्रयोग किया गया है। इस उपन्यास को हिंदी में आंचलिक उपन्यासों के प्रवर्तन का श्रेय भी प्राप्त है। रेणु साहित्यकार के साथ–साथ स्वतंत्रता सेनानी भी थे जिनका जेव पीव आन्दोलन से गहराई से जुड़ाव था। "26 जून, 1975 को आपातकाल की घोषणा हुई। सारे नेताओं को बंदी बनाया गया। रेणु भूमिगत हो गए। उनका कहीं पता नहीं चला। वे अपने मौसी के घर नेपाल चले गए थे।"[2] जीवन के अंतिम वर्षो में वे अल्सर से ग्रसित हो गए जो काफी कष्टकारी था और जानलेवा साबित हुआ। "25 मार्च, 1977 को अल्सर का ऑपरेशन हुआ पर वे होश में नहीं आए, 11 अप्रैल, रात साढ़े नौ बजे

* संपर्क : शोधार्थी, (हिंदी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), ग्राम–बनकाटवा, पोस्ट–मंगलपुर गुदरिया, थाना– नौतन, पश्चिम चंपारण–845459 (बिहार), मो.–8368595687

उनका निधन हो गया। रेणु जीवन भर भ्रष्टाचार, शोषण और तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष करते रहे राजनीति उनका व्यवसाय नहीं धर्म था।"[3] उन्होंने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी।

मैला आँचल हिंदी का प्रतिनिधि आंचलिक उपन्यास है। इस कारण इसके कथ्य में प्रायः वे सारी विशेषताएं मिलती हैं जो किसी भी आंचलिक उपन्यास में पाई जाती है। आंचलिक उपन्यास में जो परिवेश लिया जाता है, वह समय और स्थान में सीमित होता है किंतु उस सीमित समय और स्थान में जीवन के जितने पक्ष हो सकते हैं, उन पक्षों के जितने आयाम हो सकते हैं, वे सब पूरे विस्तार के साथ मैला आँचल में उपस्थित हैं। जीवन के इन्हीं पक्षों में से सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की पड़ताल हम इस शोधालेख में करेंगे।

जाति व्यवस्था– जाति व्यवस्था भारत के किसी भी सामान्य गाँव के सामाजिक जीवन की धुरी के रूप में काम करती है। मेरीगंज का पूरा समाज जाति के ही आधार पर वर्गीकृत है और जातीय किस्म के झगड़े होना वहाँ सामान्य सी बात है। जातियों के बीच का शक्ति संतुलन भी गाँव के सामाजिक संरचना निर्धारित करता है। रेणु, उपन्यास के आरंभ में ही इस संरचना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– "अब गाँव में तीन प्रमुख दल हैं, कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्मण लोग अभी भी तृतीय शक्ति हैं। गाँव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्ही तीनों दलों में बँटे हुए है।"[4] ये जातियाँ न केवल शक्ति संतुलन का आधार है बल्कि इसमें एक दूसरे के प्रति गहरी घृणा भी विद्यमान है। यद्यपि उपन्यासकार ने जातीय घृणा के प्रसंगों को ज्यादा तवज्जो नहीं दी है तथापि कुछ प्रसंगों में घृणा की यह भावना स्पष्ट रूप से दिखती है। ऐसे ही एक प्रसंग में जोतखी जी की राय हैं– "यादव लोग बार–बार लाठी–भाला दिखाते हैं, राजपूतों के लिए यह डूब मरने की बात है। ...अकेले यादवों की बात रहती तो कोई बात नहीं थी, इसमें कायस्थ समाया हुआ है। मरा हुआ कायस्थ भी बिसाता है।"[5]

नारी का स्थान– मैला आँचल में नारी की सामाजिक स्थिति पर विशेषरूप से रचनाकार ने ध्यान नहीं दिया है, फिर भी कई प्रसंगों में चलते–चलते ऐसी टिप्पणियाँ की है जो नारी की परतंत्र व निम्न स्थिति को व्यक्त करती हैं। किसी भी घर में यदि आर्थिक अभाव हो तो पुत्र और पुत्री में से पुत्र पर ही धन खर्च करने को ही ठीक समझा जाता है। उपन्यास में एक जगह ऐसा है जहाँ एक रोगग्रस्त युवती के पिता इस अंतर को इन शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हैं– "हुजूर, लड़की की जात बिना दवा–दारू के ही आराम हो जाती है!" ...लड़की की जाति बिना दवा–दारू के ही आराम हो जाती है! लेकिन बेचारे बूढ़े बाप का इसमें कोई दोष नहीं। सभ्य कहलाने वाले समाज में भी लड़कियाँ बला की पैदाइश समझी जाती है।"[6] सामाजिक मान्यताएँ ऐसी हैं कि नारी को प्रायः विश्वसनीय नहीं माना जाता। किसी भी तरीके से नारी पर नियंत्रण बनाए रखना ही परंपरागत सामाजिक संरचना की आवश्यकता है। एक स्थान पर शास्त्र का उद्धरण देते हुए कहा गया है– "सास्तर में कहा गया है– "जोरू जमीन जोर का, नहीं तो किसी और का।"[7]

रेणु ने एक और प्रसंग की चर्चा विशेष रूप से की है जो नारीवादी चिन्तकों के उस दावे को और मजबुत किया है जिसमे कहा गया है कि किसी अराजक स्थिती में अत्यचार की सबसे बड़ी शिकार महिलायें ही होती हैं। समाज मे दो वर्गो या दो अलग–अलग समाजो में जब भी सीधा संघर्ष होता है, उसमे सबसे अधिक नुकसान दोनों पक्षों की, विशेष रुप से पराजित पक्ष की महिलाओं को उठाना पड़ता है, क्योंकि विजय की मानसिकता नारी पर शरीरिक विजय से भी जूड़ी हुई होती है। रेणु ने गाँव वालों तथा संथालों के संघर्ष में ऐसे ही प्रसंग का वर्णन किया है। इस प्रसंग मे समाजिक लड़ाई तो जो है सो कि हीय गाँववालों के लिए महत्वपूर्ण यह है कि सांथलिनों का सामूहिक बलात्कार होना चाहिए। इस प्रसंग को रेणु ने बेहद प्रतीकात्मक शब्दो से इस प्रकार व्यक्त किया है– "....आजादी है, जो जी में आवे करो! बूढ़ी, जवान, बच्ची जो मिले! आजादी है। पाट का खेत है। कोई परवाह नहीं है।....फाँसी हो या कालापानी, छोड़ो मत।"[8] इस प्रकार उपन्यासकार ने कई अलग–अलग संदर्भो में दिखाया है की समाज में जिस प्रकार जाति संरचना शोषण और दमन पर अधारित है, वैसे ही नारी पुरुष के सम्बंध भी।

धार्मिक विकृतियाँ– मेरिगंज का एक विशेष पक्ष उसका धार्मिक जीवन है जिसका सम्बंध वहाँ के मठ से है। प्राचीन व मध्यकाल में धर्म को प्रायः निवृत्तिमूलक बनाने पर बल दिया गया जिससे धर्म से जुड़े व्यक्ति हमेशा कुंठित जीवन व्यतीत करते रहे हैं। मैला आँचल में इसी समस्या को खास कोण से दिखाया गया है। महंत साहेब धर्म के प्रतिनिधि हैं अतः माया से मुक्त रहना उनके लिए आवश्यक है। यदि वे विवाह करते तो सुविधा भरी महंती हाथ से निकलती अतरू वे विवाह नहीं कर भौतिक सुविधाओं के बावजूद कुंठित जीवन जीने को अभिशप्त हैं। इसका समाधान यह निकालते हैं कि मठ के पुराने सेवक की बेटी लक्ष्मी को कानूनी लड़ाई के बाद अपने मठ पर ले आते हैं। यह रास्ता महंत साहब के जीवन में भले ही प्रसन्नता लाने वाला हो पर अबोध बालिका का जीवन इससे बर्बाद हो रहा है। यादव की टोली का किसनू कहता है– महंथ जब लछमी को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी। "...कहाँ वह बच्ची, कहाँ यह पचास बरस का बूड्ढा गिद्ध! रोज रात में लछ्मी रोती थी– ऐसा रोना कि सुनकर पत्थर भी पिघल जाए।"[9]

इस प्रकार की विकृति के बावजूद दोष लछ्मी का ही है कि उसने माया बनकर महंत साहेब के धर्म को भ्रष्ट कर दिया। इस प्रसंग पर रेणु ने व्यंग्य की भाषा में लिखा है– "चढ़ती जवानी में, सतगुरु साहेब की दया से माया को जीत कर ब्रह्मचारी रहे। बुढ़ौती में तो आदमी की इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, माया के प्रबल घात को नहीं संभाल सकती हैं। ३यह तो महंथसाहेब का दोख नहीं। उसका भाग ही खराब है। यदि वह नहीं होती तो महंथ साहेब सतगुरु के रास्ते से नहीं डिगते। यह ध्रुव सत्त है। दोख तो लछमी का है। एक ब्रह्मचारी का धरम भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे है।"[10] यौन भ्रष्टाचार के साथ–साथ मठ के जीवन में सत्ता संघर्ष पर भी रेणु ने विशेष ध्यान दिया है। जो व्यक्ति वास्तविक रूप से

महंथ बनने वाला था, वह अफीम और गांजे की तस्करी के आरोप में जेल में बंद है। नागा बाबा धर्म के नाम पर जैसी भाषा का इस्तेमाल करता है, वह निहायत ही हल्की है जो धर्म के इस व्यवहारिक पक्ष पर कालिख पोतने के लिए पर्याप्त है।

अंधविश्वासों की मानसिकता– रेणु ने मेरीगंज में सामाजिक रूप से प्रचलित अंधविश्वासों पर भी टिप्पणी की है। यह स्वाभाविक सी बात है कि जिस क्षेत्र का आर्थिक विकास कम हुआ होगा, आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ होगा, वहां सामाजिक जीवन में अंधविश्वासों की प्रमुख भूमिका होगी। उपन्यासकार ने बार–बार दिखाया है कि अंधविश्वासों के कारण विकास कैसे रुक जाता है। डॉ. प्रशांत गाँव को बचाना चाहता है किंतु गांव के ही जोतखी काका के अंधविश्वासों के कारण लोग उसका सक्रिय विरोध करते हैं। "डाक्टर ने ढोल दिलवाकर लोगों को सुई लेने की खबर दी, लेकिन कोई नहीं आया। कुआँ में दवा डालने के समय लोगों ने दल बांधकर विरोध किया– "चालाकी रहने दो! डाक्टर कूपों में दवा डालकर सारे गाँव में हैजा फैलाना चाहता है। खूब समझते हैं।"[11] अंधविश्वासों के खतरनाक परिणाम क्या होता है, यह रेणु ने कमली और पार्वती की मां के माध्यम से दिखाया है। कमली को इसलिए बीमारी हो गई है कि तीन बार उसका रिश्ता टूट गया है तथा लोग उसे अपशकुनी मानने लगे हैं। यदि सारा समाज किसी व्यक्ति को अपशकुनी मानने लगे तो वह व्यक्ति मनोरोगी हो ही जाएगा। यही स्थिति कमली की है। पार्वती की मां का जीवन ही अंधविश्वासों ने ले लिया है। रेणु ने विशेष रूप से बताया है कि पार्वती की माँ स्नेह, करुणा, वात्सल्य के भाव की प्रतिमूर्ति है किंतु समाज उसे डायन घोषित कर उसकी हत्या कर देता है।

आर्थिक जीवन– उपन्यास में यद्यपि मेरीगंज का संपूर्ण जीवन अंकित हुआ है किंतु जिस समस्या को उपन्यासकार ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना, वह आर्थिक ही है। रेणु समाजवाद से जुड़े रहे हैं तथा समाजवादी विचारों के अनुकूल आर्थिक जीवन को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं। यह रचना आरंभ में भौगोलिक व सांस्कृतिक वर्णन अधिक करती है पर धीरे–धीरे मेरीगंज की समस्याओं तक पहुंचती है और वहाँ महसूस होता है कि जब तक गरीबी व जहालत खत्म ना हों, तब तक ये अंचल मैला ही रहेगा। डॉ. प्रशांत के चरित्र के माध्यम से रेणु ने यह समस्या विशेष रूप से स्पष्ट की है डॉ प्रशांत गाँव इसलिए आया है कि उसे ज्यादा से ज्यादा रोगियों से पैसा वसूल कर अमीर बनना चिकित्सक धर्म के खिलाफ लगता है। उसकी इच्छा काला–आजार के निदान के लिए रामबाण औषधि खोजना है। पर, एक बिंदु पर वह महसूस करता है कि जिस आदमी के लिए जीवन का अर्थ भूख और बेबसी है, उसके लिए यह दवाई किसी काम की नहीं है। उसके लिए बेहतर यही है कि वह भूख और बेबसी के स्थान पर मलेरिया से बेहोश होकर शांतिपूर्ण मृत्यु प्राप्त कर सके। वह सोचता है– "मान लिया कि उसने कालाआजार की एक रामबाण औषधि का अनुसंधान कर लियाय अमृत की एक छोटी शीशी उसे हाथ लग गई। किंतु इसके बाद ...और यहाँ का आदमी जीकर करेगा क्या? ऐसी

जिन्दगी? पशु से सीधे हैं ये इंसान। पशु से ज्यादा खूंखार हैं। ३पेट! यही इनकी सबसे बड़ी कमजोरी है मौजूदा सामाजिक न्याय विधान ने उन्हें अपने सैकड़ों बाजुओं में जकड़कर ऐसा लाचार कर रखा है कि वे चूँ तक नहीं कर सकते।"[12] डॉक्टर प्रशांत अपने सारे वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मूल समस्या आर्थिक है और एक आर्थिक रूप से पिछड़े समाज में स्वास्थ्य की कोई संभावना नहीं है। "डॉक्टर ने रोग की जड़ पकड़ ली है.... । गरीबी और जहालत– इस रोग के दो कीटाणु हैं। एनोफिलीज से भी ज्यादा खतरनाक, सैंडफ्लाई से भी ज्यादा जहरीले... ।"[13]

मेरीगंज की आर्थिक समस्याएँ कुछ और पक्षों से भी संबंधित हैं। उपन्यासकार ने न केवल गरीबी को मूल समस्या के रूप में पहचाना है बल्कि यह भी बताया है कि गरीबी के 'कारण' कौन से हैं? यह गरीबी उत्पादकता की कमी से नहीं अपितु वितरण की विषमताओं से पैदा हुई है। जिसको निम्न उद्धरणों में देखा जा सकता है– "खम्हार! साल भर की कमाई का लेखा जोखा तो खम्हार में ही होता है। दो महीने की कटनी, एक महीना मड़नी, फिर साल भर की खटनी। दबनी–मड़नी करके जमा करो, सालभर के खाए हुए कर्जे का हिसाब करके चुकाओ। बाकी यदि रह जाए तो फिर सादा कागज पर अंगूठे की टीप लगाओ. ...फिर कर्ज खाओ। खम्हार का चक्र चलता रहता है।"[14]

रेणु ने आर्थिक समस्या को बेहद खूबसूरत नजरिये से प्रस्तुत किया है। विद्वानो के बीच हमेशा यह विवाद का विषय रहा है कि सुंदरता 'वस्तुनिष्ठ' होता है या 'आत्मनिष्ठ' कुछ विद्वान इसे वस्तुगत मानते हैं उनका कहना है की सुंदरता परिस्थितियों से उत्पन्न होती है। हम अगर अपने आस–पास और अनुभव को देखें तो यह सच ही लगता है। डॉक्टर प्रशांत भी महसूस करता है कि सुंदरता सचमुच अनुकूल परिस्थितियों से पैदा होती है। मेरीगंज में भी सुंदरता हो सकती थी पर स्थितियाँ ऐसी है कि सुंदरता विकसित होने से पहले ही झुलस जाती है। वह सोचता है–

"उसने देखा है....गरीबी, गंदगी और जहालत से भरी हुई दुनियाँ में भी सुंदरता जन्म लेती है। किशोर–किशोरियों व युवतियों के चेहरे पर एक विशेषता देखी है उसने! कमला नदी के गढ़ो में खिले हुए कमल के फूलों की तरह जिंदगी के भोर में वे बड़े लुभावने, बड़े मनोहर और सुंदर दिखाई पड़ते हैं, किंतु ज्यों ही सूरज की गर्मी तेज हुई, वे कुम्हला जाते हैं।"15

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है की रेणु ने मैला आँचल में उस अंचल विशेष के जन जीवन का चित्रण इतनी स्वाभाविकता से किया है कि कहीं से भी वह उपर से थोपी हुई चीज नहीं लगती। प्रचलित लोक–संस्कृति, लोक–कथा, लोक–गीत, लोक–नृत्य, पर्व–त्यौहार, आदि का भी चित्रण अत्यंत सूक्षमता तथा बारीकी के साथ किया गया है जो उस अंचल विशेष की संस्कृति को उजागर ही नहीं करता, बल्कि अपने अंचल विशेष की महत्ता को बढाता है।16

संदर्भ–सूची

1. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु' राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृति 2010, प्रथम संस्करण की भूमिका से / **2.** रचनाकार रेणु, डॉव पुष्पा जतकर, वाणी प्रकाशन, आवृति 2009, पृष्ठ संख्या– 19 / **3.** उपन्यासकार रेणु तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन– डॉव उमा गगरानी, पृष्ठ संख्या– 17 / **4.** मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु' राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृति 2010, पृष्ठ संख्या– 15 / **5.** वहीं, पृष्ठ संख्या–24 / **6.** वहीं, पृष्ठ संख्या–140 / **7.** वहीं, पृष्ठ संख्या–169 / **8.** वहीं, पृष्ठ संख्या–192 / **9.** वहीं, पृष्ठ संख्या–25 / **10.** वहीं, पृष्ठ संख्या– 46 / **11.** वहीं, पृष्ठ संख्या– 141 / **12.** वहीं, पृष्ठ संख्या– 210 / **13.** वहीं, पृष्ठ संख्या– 176 / **14.** वहीं, पृष्ठ संख्या– 74 / **15.** वहीं, पृष्ठ संख्या– 144 / **16.** रचनाकार रेणु, डॉ. पुष्पा जतकर, वाणी प्रकाशन, आवृति 2009, पृष्ठ संख्या–134

■

(पृष्ठ 15 का शेष)

आयतन का संक्षिप्तीकरण' जैसे पद उनके लिए भी फिट और सटीक बैठते हैं जो आज भी कविताओं में 'जाति' और 'वर्ण' जैसे शब्दों को पढ़कर–सुनकर उसी तरह भड़क उठते हैं जिस तरह लाल कपड़े को देखकर सांड़। भारत की 85 प्रतिशत दलित–बहुजन की समस्या ओं को आखिर वही लोग तो कविताओं में एंट्री देने के खिलाफ होंगे जिनके अंतःकरण का आयतन संक्षिप्त होगा!

इस तरह हम देखते हैं कि गजानन माधव मुक्तिबोध के कला के तीन क्षण सभ्यसता समीक्षा करते प्रतीत होते हैं। ऐसे ही अवसरों पर उनकी ज्ञानात्मसक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान की भी जांच हो जाती है। मुक्तिबोध के कला के तीन क्षण दरअसल वे निकष हैं जिनके जरिए हम आधुनिक साहित्यल का मूल्यांकन, निर्माण और पहचान कर सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. मुक्तिबोध, गजानन माधव, एक साहित्यिक की डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ–17
2. मुक्तिबोध, गजानन माधव, प्रतिनिधि कविताएं, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ–111–113
3. नवल, नंदकिशोर, मुक्तिबोध की कविताएं : बिम्बं प्रतिबिम्ब, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ –15
4. नवल, नंदकिशोर, मुक्तिबोध की कविताएं : बिम्बं प्रतिबिम्ब, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठं–15
5. मुक्तिबोध, गजानन माधव, एक साहित्यिक की डायरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ–9–10

■

निर्मल वर्मा की
कहानियों में आधुनिक भावबोध

हिमांशु सा*

नई कहानी आंदोलन दौर के प्रमुख रचनाकारों में निर्मल वर्मा का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने हिंदी गद्य की विभिन्न विधाओं को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अपने लेखन कर्म के माध्यम से कहानी, उपन्यास, निबंध, डायरी, यात्रा संस्मरण आदि विधाओं को समृद्ध किया। साठ के दशक तक आते– आते कहानी विधा अपनी विकास की चरम बिन्दु पर था, परंतु साठ के दशक में कहानी विधा को एक नई दिशा मिली और उसका नाम नई कहानी आंदोलन पड़ा । हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारंभ 1850 ई. से माना जाता है, लेकिन 1850 ई. से 1950 ई. के मध्य जो 100 वर्ष का समय है, साहित्य के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन होते चले गए, जिसमें आधुनिकता की स्वरूप बदलता गया। चाहे वह भाषा के संदर्भ में हो या सामाजिक, राजनैतिक संदर्भ में। कहने का तात्पर्य यह है की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की सामाजिक, मानसिक परिस्थितियों में जो बदलाव आई, उसका सजीव चित्रण नई कहानी आंदोलन के दौर में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उस समय के रचनाकारों में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, अमरकांत, हरिशंकर परसाई, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर आदि का योगदान महत्वपूर्ण है ।

केवल कहानी ही नहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कविता के क्षेत्र में भी अनेक सारे परिवर्तन दिखाई दिए। शिल्प और शैली की दृष्टि से सन् 1950 ई. के बाद हिंदी साहित्य विधाओं में प्रमुख बदलाव देखने को मिलते हैं। और इसी युग में जो आधुनिक भाव बोध दिखाई पड़ता है, उसी के संदर्भ में अनेक मतभेद रहे हैं। आधुनिकता की अभिव्यक्ति रचनाकारों के मनोभाव पर आश्रित है। यही कारण हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी कहानी आंदोलन के अनेक नाम आगे जाकर दिखाई पड़ते हैं। आधुनिकता के कई रूप हमें दिखाई पड़ते हैं, जिनमें मनोविज्ञान, आधुनिक जीवन शैली, विज्ञान परक चिंतन, औद्योगीकरण, पाश्चात्य प्रभाव आदि। निर्मल वर्मा की कहानियों में इन्हीं सब रूपों की झलक दिखाई पड़ता है। पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित निर्मल वर्मा अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद जैसे विचारों को अपनी कहानी में अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है ।

* संपर्क : शोधार्थी, (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), गाँव –कालिझरन, पोस्ट–आटगाँ, जिला–बलाँगिर, ओडिशा–767002, मो.–7682896391

रामधारी सिंह दिनकर अपने पुस्तक 'आधुनिक भावबोध' में लिखते हैं, साधारणतः जिसे आधुनिक बोध कहा जाता है वह कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। मूल्य शायद वह है ही नहीं। मूल्य के विघटन से उत्पन्न वह एक दृष्टि है । जिसमें घबराहट, निराशा, शंका , त्रास और अनुरक्षा के भाव हैं। आधुनिक बोध की सारी व्याप्तियां ऐसी नहीं हैं,जो आंख मूंदकर स्वीकार कर ली जाए।"[1] चूंकि निर्मल वर्मा की कहानियों में मनोविश्लेषणवाद देखने को मिलते हैं , जिसमें आधुनिक समाज की यथार्थ स्थिति को दर्शाता गया है। वर्मा जी की अधिकांश कहानियों में आधुनिक मनुष्य की पीड़ा, संत्रास, अकेलापन, मृत्यु भय, गहरी संवेदना, गंभीर चिंतन, सूक्ष्म मनोविश्लेषण, मानव अस्तित्व की खोज आदि बिषय देखने को मिलते हैं। निर्मल वर्मा की कहानी हमारे भीतर खुलती हैं, उनकी कहानियों को पढ़ने पर ऐसा लगता है, कि मानो हम अपने आप से बात कर रहे हों। मनोविश्लेषण और एक बुजुर्ग पिता की पीड़ा को उनकी 'बीच बहस में' नामक कहानी में देखी जा सकती है । बुजुर्ग पिता का कथन कुछ इस प्रकार है "तुम्हारी मां कहां है, मेरा मतलब है वह इस वक्त कहां होगी? सुनो, वह इस तरह मुझे छोड़कर नहीं जा सकती, आखिर हम मुद्दत से साथ रहे हैं, तुम, तुम एक लड़का हो, तुम कुछ नहीं थे, जब हम थे, वह भी कुछ नहीं है, हालांकि की एक जमाने में तुम नहीं थे, वह सब कुछ थी।"[2] उपर्युक्त कथन में पति–पत्नी की आपसी प्रेम और एक से एक का बिछड़ने पर जो दुख है उसको दर्शाया गया है। मृत्यु के उपरांत उत्पन्न पीड़ा को अभिव्यक्त करने में निर्मल वर्मा सिद्धहस्त हैं। उनकी सबसे चर्चित कहानी 'परिंदे' इसका सबसे बड़ उदाहरण है। इस कहानी की नायिका लतिका है ,जो गिरीश नेगी से प्रेम करती थी। परंतु असमय नायक की मृत्यु के कारण नायिका अपने प्रेमी को भूल नहीं पा रही है, और उससे आगे बढ़कर अपनी जीवन की शुरुआत वह कर नहीं पा रही है। इस कहानी के पात्र डॉक्टर मुखर्जी कहते हैं "मरने वाले के संग खुद थोड़े ही मरा जाता है।"[3] इसमें कहानी में डॉक्टर मुखर्जी के पत्नी का भी निधन हो चुकी होती है, परंतु उनका कहना है "कि अगर उनकी उम्र अभी होती तो वह दूसरी शादी जरूर करते।"[4] वर्मा जी की इस कहानी को नूतन शिल्प और भाषा शैली के कारण हिंदी में नई कहानी आंदोलन की प्रथम कहानी होने का गौरव प्राप्त है। परिंदे कहानी के बारे में नामवर सिंह ने लिखा है– फकत सात कहानियों का संग्रह 'परिंदे' निर्मल वर्मा की ही पहले कृति नहीं है, बल्कि जिसे हम नई कहानी कहना चाहते हैं, उसकी भी पहली कृति है।"[5]

निर्मल वर्मा की चर्चा उनकी नई भाषा शैली के कारण भी की जाती है। 'डेढ़ इंच ऊपर' कहानी में एक कथन इस प्रकार है – "आदमी बात कर सकता है और चुप रह सकता है, एक ही वक्त में, इसे बहुत कम लोग समझते हैं।"[6] दूसरा कथन – आपने अक्सर देखा होगा कि जिसे हम सुख कहते हैं वह खास लम्हें की चीज है, यूं अपने में बहुत ठोस है, लेकिन उस लम्हे की गुजर जाने के बाद वह बहुत फीका और कुछ – कुछ हैंगओवर सा धुंधला लगता है।"[7] उपर्युक्त कथनों से निर्मल वर्मा की नई भाषा शैली को समझा जा सकता है। अशोक

वाजपेई जी ने लिखा है दृ"जैसे निर्मल वर्मा ने हिंदी को एक नई कथा भाषा दी है उसी तरह से हिंदी की नई चिंतन भाषा के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।"[8]

निर्मल वर्मा के ऊपर पाश्चात्य विचारधाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है जिसमें आधुनिक मनुष्य के जीवन शैली, पीड़ा, संत्रास, निराशा, अकेलापन, संघर्ष, आत्म विश्लेषण, ईश्वर के प्रति संदेह, स्वतंत्रता आदि जीवन मूल्यों को देखा जा सकता है। आधुनिक युग में मनुष्य अकेलापन का शिकार हो गया है।' डेढ़ इंच ऊपर' कहानी में लेखक का कथन है "आधुनिक मनुष्य शराब पीकर गम भुलाना चाहता है।"[9] आधुनिक समाज में मनुष्य स्वतंत्रता को अधिक महत्व देता है, लेकिन इस स्वतंत्रता के कारण वह अकेलेपन का शिकार भी हो जाता है। 'डेढ़ इंच ऊपर' कहानी के कथन है – "चुनने की खुली छूट से बड़ी पीड़ा कोई दूसरा नहीं।" इसी कहानी में और एक कथन है– " आप मजबूरी में बड़ी से बड़ी यातना सह सकते हैं, लेकिन अगर आपको मालूम हो कि आप किसी भी क्षण उस यातना से छुटकारा पा सकते हैं, चाहे उसके लिए आपको अपनी पत्नी, अपने पिता, अपने भाई के साथ ही विश्वासघात क्यों न करना पड़े। तब आप यातना की एक सीमा के बाद वह रास्ता नहीं चुन लेंगे, इसके बारे में कुछ भी कहना असंभव है।"[10] जहां चयन की सुविधा होती है वहां मन बार–बार मचलता है और आदमी को स्थिर रहने नहीं देता। निर्मल वर्मा की कहानियों में यही तो खासियत है कि यथार्थ चीजों को मनोविश्लेषणात्मक तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। उनकी कहानियों को जितने गंभीरता से पढ़ा जाए उतनी ही गहरी बातें निकल कर सामने आती हैं।

मृत्यु बोध और संत्रास उनकी अधिकांश कहानियों में देखने को मिलता है। डेढ़ इंच ऊपर कहानी का एक कथन है – "क्या यह अजीब बात नहीं है कि जब हम कभी मौत या दुर्घटना की बात सुनते हैं या सुबह अखबार में पढ़ते हैं, तो हमें यह विचार कभी नहीं आता कि यह चीज हम पर हो सकती हैं या हो सकती थी, नहीं हमें लगता है कि यह दूसरों के लिए है।"[11] इसी कहानी का एक दूसरा कथन है दृ "आपको शायद हंसी आएगी लेकिन मुझे लगता है जब आप खुद अपने परिचित को मरते न देख ले, एक धुंधली सी आशा बनी रहती है कि वह अभी जीवित हैं।"[12]

आधुनिक युग की जटिल मनरूस्थिति से गुजरने वाले पाठकों को अधिक प्रभावित करने के लिए निर्मल वर्मा ने अपनी रचना के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी प्रविधियों का आश्रय लिया है। इसी के साथ वर्मा की अधिकांश रचनाओं में विदेशी प्रभाव दृष्टि गोचर होते हैं। निर्मल वर्मा की कहानी में अतीत की स्मृति बहुत बार दोहराई जाती हैं। मृत्यु भय है और पीड़ा उनकी कहानियों का एक प्रमुख विषय है। मृत्यु भय का एक अस्तित्व निर्मल की कहानियों का प्रमुख विशेषता है। अकेलापन के कहानीकार उनको यूं ही नहीं कहा जाता। एकांत जीवन निर्मल की कहानियों का प्राण है। अकेलापन और अजनबीयत दोनों आसपास के शब्द हैं। 'माया दर्पण' कहानी में पारिवारिक तनाव, पीड़ा और

अकेलापन है। परिवार में रहते हुए भी अजनबीयत का एहसास पीड़ा को जन्म देती है। इस कहानी को पढ़कर रिश्ते खोखले मालूम पड़ते हैं। तनाव के कारण अकेलेपन में नींद भी ठीक से नहीं आती। मायादर्पण कहानी का एक कथन है– "इतने दिनों से अगर कोई एक इच्छा होती है, तो यही कि जब इच्छा करें, तभी उसी क्षण नींद आ जाए।"[13] निर्मल वर्मा की रचनाओं में व्यक्ति जीवन की परिस्थितियों और उसमें जन्म लेने वाली कुन्ठायें जीवन को अर्थहीन बनाने के साथ–साथ अस्तित्व की समस्याओं को ही उभार देती हैं, इन्हीं स्थितियों में संघर्ष पैदा होता है।

निष्कर्ष – नई कहानी आंदोलन दौर में समाज में उत्पन्न नवीन समस्याओं को प्रस्तुत करने में निर्मल वर्मा जी सफल हुए हैं। मनोविश्लेषण और अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित निर्मल वर्मा आधुनिकता की विभिन्न आयामों को चित्रित किए हैं। संत्रास, कुन्ठा, अकेलापन, अन्तरू–बाह्य मानव की समस्याओं को अपनी कहानी के माध्यम से वाणी प्रदान की है। उनकी कलम हिंदी की समस्त गद्य विधाओं में चली है। साठोत्तरी हिंदी लेखन में निर्मल वर्मा जी एक सफल हस्ताक्षर हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. आधुनिक भावबोध –रामधारी सिंह दिनकर
2. (कहानी)बीच बहस में – निर्मल वर्मा
3. (कहानी संग्रह) परिंदे – निर्मल वर्मा पृष्ठ सं.– 113
4. परिंदे (कहानी) निर्मल वर्मा
5. कहानी नहीं कहानी नंबर से लोग भारती प्रकाशन इलाहाबाद कहानी नहीं 1997 पृष्ठ संख्या 52
6. डेढ़ इंच ऊपर (निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी, संचयन– गगन गिल) पृष्ठ संख्या –73
7. डेढ़ इंच ऊपर (निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी, संचयन– गगन गिल) पृष्ठ सं.– 77
8. निर्मल वर्मा दृ अशोक बाजपेई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन– 1990, पृ सं – 8
9. डेढ़ इंच ऊपर(निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी, संचयन– गगन गिल) पृष्ठ सं.77
10. डेढ़ इंच ऊपर (निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी, संचयन– गगन गिल), पृष्ठ सं – 82
11. डेढ़ इंच ऊपर (निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी, संचयन– गगन गिल), निर्मल वर्मा। पृष्ठ सं दृ 78
12. डेढ़ इंच ऊपर (निर्मल वर्मा की लोकप्रिय कहानी, संचयन– गगन गिल) पृष्ठ सं – 76
13. माया दर्पण (जलती झाड़ी –कहानी संग्रह) निर्मल वर्मा, पृष्ठ सं –38

■

सुमित्रानन्दन पंत

प्रकृति–प्रेम और सौंदर्य के कवि

सूर्य नारायण पाण्डेय*

प्रकृति के आंचल में पले बढ़े प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत समूचे हिन्दी साहित्य के अनमोल रत्न है। इनका जन्म 20 मई 1900 ई को उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिला के कौसानी गांव में हुआ था। जिनका प्रकृति प्रेम वात्सल्य से ही अपने समूचे आवेग के साथ इनकी रचनाओं में दिखता है।

'मां से बढ़कर रही धात्रि तू बचपन में मेरे हित।
धात्री कथा रूपक भर तूने किया जनक वन पोषण।
मात्र हीन बालक के सिर पर वरद हस्त धन गोपन।'

पंत के रचना संसार में प्रकृति के नाना रूपों की झिलमिल किरणें चारों तरफ झलकती रहती हैं क्योंकि आजीवन इनका नाता प्रकृति से एक सहचरी की तरह लगा रहा । उसी से ओत–प्रोत इनके विचार भी प्रकृति के विभिन्न रूपों में कविताओं में समाहित हुए दिखते हैं। इनके जन्म के समय माँ का निधन इनको प्रकृति के शरण में छोड़ने का प्रकृति का रहस्य था, जो इन्हे और प्रकृतिमय बनाती है। इनका बचपन का नाम गोसाईदत्त था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। ये एक प्रखर आलोचक, निडर सम्पादक, कुशल नाटककार, सरल निबंधकार तथा प्रौढ़ उपन्यासकार के साथ–साथ दार्शनिकता से भरे एक सहज और सजग कवि थे। सात वर्ष की आयु से ही अपने रचना से लोगों के दिलों पर राज करने वाले पंत को छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों में से एक माना जाता है। इनकी रचनाओं में एक तरफ प्रकृति के विविध रूप तो दूसरी तरफ रहस्यवाद और वेदना की अनुभूति भी है। इसके साथ–साथ राष्ट्रप्रेम व विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण भी है। इसके बारे में 'आधुनिक कवि' के पर्यालोचन में लिखा है– ''कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि के कुर्मांचन प्रदेश को है।''

यही नहीं, 'रश्मिबंध के परिदर्शन में भी इसके बारे में कहा है कि– 'मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्म भूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है जिसकी गोद में पल कर मैं बड़ा हुआ हूँ।'[1]

पंत की कविताओं में भी प्रेम व सौंदर्य के विविध रूप भरे पड़े हैं। प्रेम

❖ संपर्क : शोधार्थी (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), पता – कोटसा, दुर्गावती, कैमूर–821105, मो.–9918630091

का सौंदर्य से प्रगाढ़ संबंध है क्योंकि बिना सौंदर्यानुभूति के प्रेम की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रेम और सौंदर्य दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह सौंदर्य जीवन में उनके स्थलों पर मिलता है। और जहां सौंदर्य प्राप्त होता है प्रेम होने लगता है। इसी में एक है प्रकृति प्रेम, जहां हम प्रकृति से सौंदर्य लेते हैं। प्राकृतिक के उस रूप से हम प्रेम करने लगते हैं यह सब सौंदर्य बोध के कारण ही सम्भव है। यह अनुभूति प्रकृति के विभिन्न रूप कली, पुष्प, नदी, निर्झर, मधूप, तितली और चाँदनी ऐसे कई उपादानों से पंत की रचना भरी पड़ी है और कहा जा सकता है कि कलाकार या कवि ही है कि पक्षियों के कलरव से लेकर निर्झर वन तक सब में सौंदर्य के दर्शन करता है।

यह सौंदर्य विभोर उसके अमर प्रेम की छाया।/दिव्य प्रेम देहि, सुंदरता उसकी सतरंग काया।/प्रेम सत्य, शिव सार प्रेम में नित्य आनंद समाया।/दृढ़ प्रतीति उसने अपनी चिर पद पीठ बनाया।[2]

यह पंक्ति प्रमाणित करती है कि पंत का काव्य प्रेम और सौंदर्य अनुभूति से भरा पड़ा है। पंत मूलतः प्रकृति प्रेम और सौंदर्य के कवि है। इनका मानना है। कि – वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।/उमड़कर आंखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।[3]

पंत की रचना ग्रंथि में भी हम प्रेम का दर्शन कर पाते हैं जिसमें संयोग और वियोग दोनों का सजीव चित्रण हुआ है। प्रेम और सौंदर्य के कवि पंत ने जोरदार शब्दों में कहा है कि– 'पल्लव काल तक मेरा कवि आत्ममुग्ध नहीं हुआ था। उसके बाद ही वह अपने बाहर–भीतर के जीवन प्रवाह के प्रति सचेत हो सका और अपने बाहर के सामाजिक जीवन की सीमाओं से क्षुब्ध होकर उसने युगांत, युगवाणी और ग्राम्या में पुरानी दुनिया की अंदरूनी रीति परंपराओं तथा वैज्ञानिक युग से पहले की संकीर्ण आर्थिक राजनीतिक प्रणालियों तथा सामाजिक परिस्थितियों में पथराई हुई बाह्य जीवन की चेतना पर निर्मम आघात किए और अपने युग की संभावनाओं से नई दृष्टि प्राप्त कर नवीन परिस्थितियों के विकसित सत्य को वाणी देने का प्रयत्न किया।'[4]

यह कथन प्रमाणित करता है कि इनकी काव्य चेतना में देश और मानव दोनों ने ही पर्याप्त स्थान ग्रहण किया है। इनकी रचना में राष्ट्र के अनेक अवसरों पर व्यापक रूप धारण किये हुए दिखते हैं जब ये अपनी प्यारी मातृभूति को सर्व सुख संपन्न बनाने के लिए कह उठते हैं।

जग की उर्वरा आंगन में बरसों ज्योतिर्मय जीवन।/बरसों लघु लघु तरू पर हे चीर अव्यय चीर नूतन।/बारसों कुसुमों में मधु बन प्राणों में अमर प्रणय धन।[5]

'प्रकृति से तात्पर्य ही मनुष्येतर जगत से होता है जिसमें नदी, पर्वत, वन, कछार, चंद्र, ज्योत्स्ना, प्रातः कालीन एवं सान्ध्य गगन की रंग बिरंगी छटायें सम्मिलित हैं प्रकृति का अर्थ है स्वभाविक अतः प्रकृति के अंतर्गत वही वस्तुएं आती है। जो स्वयं ही नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती है।'[6]

'प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है आदिकाल से प्रथम पुरूष ने जब अपने नेत्र खोले होंगे तो उसकी सर्वप्रथम प्रकृति का ही साहचर्य प्राप्त हुआ होगा वैज्ञानिकों का विकासवाद भी स्वीकार करता है कि मानव ने प्रकृति के विशाल होड़ में ही जन्म धारण किया और उसके साहचर्य में चेतना को क्रमशः विकसित किया। वृक्षों ने फलदान द्वारा निर्मल निर्झरों ने शीतल जल द्वारा मानव की सहज प्रवृत्तियों का भी समाधन किया। फलतः मानव का प्रकृति के प्रति स्वाभाविक रूप से चीर साहचर्य स्थापित हो गया।'[7]

पंत ने भी प्रकृति के अनेक रूप ग्रहण करके काव्य का विषय बनाया। यथा आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, रहस्य मानवीकरण, प्रस्तुत अप्रस्तुत, उपदेशक, दार्शनिक तत्व चिंतन आदि विभिन्न रूपयों में चित्रण किया है। वस्तुतः यह छायावादी कवि थे और प्रकृति चित्रण इनका मुख्य विषय रहा। इनकी छायावादी रचनाओं के साथ–साथ प्रतिवादी रचनाओं में प्रकृति के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते है। इनकी सम्पूर्ण कविताओं पर प्रकृति का भरपूर प्रभाव दिखता है। मेरे कहने का मनलब यह कदपि नहीं है कि केवल प्रकृति का प्रभाव है क्योंकि वह खुद स्वीकार किए हुए हैं कि प्रकृति और पूर्वर्ती कवियों का प्रभाव उनकी लेखनी में है लेकिन जब पंत की रचना अपना स्वरूप खोलती है तो सर्वप्रथम प्रकृति नाना रूपों में झिलमिल किरणों की तरह झांकती नजर आती है क्योंकि आजीवन इनका नाता प्रकृति से एक सहचरी की तरह लगा रहा उसी से ओतप्रोत इनके विचार भी प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी कविताओं में समाहित करते हैं। यह प्रकृति के प्रति अपने दृष्टिकोण को इंगित करते हुए कहते हैं। कि– 'साधारणतः प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है पर उसका उग्र रूप भी मैंने परिवर्तन में चित्रित किया है।'

'इनकी रचना के सुंदर रूप का दीदार कुछ इस तरह होता है–
छोड़ द्रुमो की मृदृ छाया। तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरी बाल जाल में कैसे उझा दु लोचन।।'[8]

इन्होंने प्रकृति के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उसके सौंदर्य का स्वतंत्र चित्रण किया हैं। डॉ. राम गोविन्द शर्मा के अनुसार– 'प्रकृति और सौंदर्य के प्रति पंत का दृष्टिकोण विशुद्ध कलाकार का रहा है। प्रकृति ने ही पंत के काव्य को वह सुन्दरता प्रदान किया है जो अन्य कवियों से उन्हें पृथक कर देता है।'[9]

इन्होंने जब प्रकृति का चित्रण आलंबन के रूप में किया है जिसको पल्लव की आनंद, बसंत श्री, छाया, नक्षत्रा, निर्झरी। गुंजन की एक तारा, चांदनी, अप्सरा। युगवाणी की पतझड़, हरीतिमा, पलाश। ग्राम्या में ग्राम श्री। स्वर्ण किरण में हिमाद्री, समुंद्र। स्वर्णधूली में अग्निदेव आदि सैकड़ों रचना में प्रकृति के आलंबन स्वरूप को हम देख सकते हैं उदाहरण के लिए युगवाणी की ओस बिंदु शीर्षक की लघु कविता को देखा जा सकता है– 'ओस बिंदु, लघु ओस बिंदु।/नीले नीले हरे लाल/चंचल ताराओं के जल जल/फैलाते शीतल सजल ज्वाल।[10]

जब हम पंत की कविता प्रकृति चित्रण की उद्दीपन रूप को देखते हैं तब हमारा मन मचल उठता है। युगांतर की संध्या भी अपनी रूप राशि से हमें

आकर्षित करती है जब पूछ बैठते हैं– 'लाज से अरूण सुकपोल।/मदिरा आधारों की सूरा अमोल।/बने पावस धन स्वर्ण हिंडोल।/कहो, एकाकिनी कौन?/मधुर मंथर तुम कौन?[11]

इनके यहां प्रकृति के विभिन्न रूप मानवीय भाव से भरे पड़े हैं रचनाएं गाती रोती मचलती सजीव चेतना के रूप में दृष्टव्य होती है कुछ जगहों पर कविताओं में प्रकृति को मां के रूप में कल्पना करते हैं अधिकांश प्रकृति को इन्होंने नारी के रूप में चित्रित किया है पल्लव की बसंत श्री गुंजन की नौका विहार चांदनी आदि कविताएं भरी पड़ी है। 'सुन्ध चुनकर सखी सारे फूल।/सहज बिन्ध बंध सुख–दुख मूल।/सरस रचती हो ऐसा राग।/धुले बन जाती है मधु मूल।।'[12]

इसके साथ ही पल्लव की छाया नक्षत्र मधु करी गुंजन की अप्सार, एक तारा, युगांत की संध्या, छाया, तितली आदि अनेक कविताएं प्रकृति के जीवंत रूप को व्यक्त करती हैं इनके यहां प्रकृति हर रूप में जीवंत और मनमोहक कर देने वाली सहज ह्रदय बालिका की तरह नजर आती है।

पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रकृति की बहुत सुंदर चित्रण इनकी रचनाओं में दिखता है। प्रकृति को पृष्ठभूमि में रखकर मानवीय भावनाओं का चित्रण किये हैं यही नहीं प्रकृति को प्रतीक के रूप में भी रखकर जो चित्रण आरम्भ से हिन्दी साहित्य में होता था उसका अनुसरण भी दिखता है जैसे अंधकार का प्रयोग निराशा के लिए, प्रकाश का प्रयोग आशा के लिए आदि।

छायावाद के कवि के बारे में लिखा जाए और रहस्यवाद की झलक न हो यह संभव ही नहीं पंत की कविता में भी प्रकृति का रहस्यात्मक रूप दिखता है युगों–युगों से गंगा का प्रवाह अनवरत रूप से चल रहा है। गंगा की धारा स्थिर है। यह कवि के मन में रहस्य उत्पन्न करता है– 'ऐसा सोने के साँझ प्रात,/ऐसे चाँदी के दिवस रात/ले जाती बहा कहाँ गंगा/जीवन के युग क्षण! किसे ज्ञात।[13]

वर्षा ऋतु में बादल का गर्जन धरती को कपाँ देता है। पानी बरसता है तो ऐसा महसूस होता है बादल धरती पर उतर आया है। वर्षा के बाद पृथ्वी की साँधी गंध बड़ी मनमोहक लगती है। कवि इस गंध के पीछे के रहस्य को जानना चाहता है– 'कोपित करता वक्ष धरा का घन गम्भीर गर्जन स्वर,/भूपर ही आ गया उतर शत धाराओं में अम्बर,/भीनी–भीनी भाप महज ही साँसो में घुलमिलकर/एक और भी मधुर गंध से ह्रदय दे रही ही है भर।[14]

इस प्रकार पंत के काव्य में प्रकृति के विविधि रूपों के दर्शन मिलते हैं। यहाँ तक की दार्शनिक विवेचन में भी प्रकृति का आकर्षण रूप दिखता है। पंत ने काव्य में भाव सौंदर्य की सुंदर सृष्टि की है। प्रगति काव्य में इनकी रचना सत्य में सौंदर्य खोज रही है। इनकी रचना सृष्टि में प्रकृति सौंदर्य के साथ–साथ नारी रूप सौंदर्य खोज रही है। इनकी रचना सृष्टि में प्रकृति सौंदर्य के साथ–साथ नारी रूप सौंदर्य का भी अंकन किया है। इनका मानना है कि सौंदर्य यथार्थ से दूर है परन्तु उससे प्राप्त आनन्दानुभूति यथार्थ के निकट है–

मैं स्वप्न का प्रेमी, मुझको/करता न सत्य जग को मोहित।[15]

स्वप्न जग का आधार सौंदर्य है जो कवि को मोहित करता है–

मन के भीतर का मन गाता/स्वर्ग धरा में नहीं समाता/स्वप्नों का आदेश ज्वार उठ/विश्व सत्य के पुलिन डुबाता।[16]

सुमित्रानंदन पंत का संम्पूर्ण काव्य प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य का महत्वपूर्ण सोपान है। यह प्रारंभिक समय से ही प्रकृति और प्रेम के उपासक रहे हैं। जो विविधता प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य के विषय में पंत के यहां परीलक्षित होती है, वह अन्यत्रा दुर्लभ ही है। आज समूचे हिन्दी साहित्य में प्रकृति और प्रेम के अद्वितीय कवि पंत माने जाते हैं। प्रेम का विभिन्न रूप रचनाओं का विषय रहा है। इनकी प्रेम भावना में व्यापकता, शाश्वतता, सर्वशक्तिमत्ता और पवित्रता आदि सभी गुण विद्यमान हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में अवस्थित प्रेम की पवित्रता के आलोक में सौंदर्य को परखा और ग्रहण किया।

प्रकृति प्रेम और सौंदर्य की भावना की दृष्टि से पंत जी हिन्दी जगत के प्रथम कवि हैं। इन्होंने सुन्दर समाज की कामना करते हुए मानवता के भविष्य के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहा है कि– 'सम्मानित होगा धरती पर मुख/जीवन के गृह प्रांगण शोभन,/जगती की कुत्सित कुरूपता/सुषमित होगी, कुसुमित दिशि क्षण।/विस्मृत होगा जन मन का पथ/शेष जठर का कटु संघर्षण,/संस्कृति के सोपान पर अमर/सतत बढ़ेंगे मनुज के चरण।'[17]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रश्मिबंध– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. चिदम्बरा– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958
3. पल्लव– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
4. चिदम्बरा– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958
5. गुंजन– पंत, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000
6. हिन्दी काव्य का प्रकृति चित्रण– डॉ किरण कुमारी गुप्ता, पृ.सं. 08
7. वही– पृ.सं. 10
8. वीणा– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्ति– डॉ गोविन्द राम शर्मा, पृ.सं. 480
10. ओस बिंदु– युगवाणी, पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
11. युगान्तर– पंत, इंद्र प्रिंटिंग वर्कस, अलमोड़ा
12. मधुकरी– पल्लव, पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
13. गंगा– ग्राम्या, पंत, लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद पृ.सं. 42
14. वही– पृ.सं. 106
15. स्वर्ण किरण– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.सं. 21
16. उत्तरा– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.सं. 110
17. चिदम्बरा– पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958

■

'क्याप' में अभिव्यक्त प्रेम और विद्रोह

डॉ. शिखा*

मनोहर श्याम जोशी ने कई उपन्यास लिखे। उनके प्रत्येक उपन्यास की कथावस्तु दूसरे से परस्पर भिन्न प्रकार व शैली की है। यह उनका साहित्यिक प्रतिमानों के प्रति विद्रोह व लेखक की रचनात्मकता के प्रति प्रेम है, जो उन्हें ऐसा सृजन करने के लिए बाध्य करता है। 'क्याप' का अर्थ है अनगढ़ सा, अजीब सा। इस उपन्यास में जोशी जी ने कई अवांतर कथाएं बुनते हुए प्रेम कथा बुनी है। आधुनिक मनुष्य के लिए प्रेम तत्त्व को पाना व समझना सरल नहीं है। इसलिए मनोहर श्याम जोशी ने उपन्यास की कथा का प्रारंभ ढिणमिणाण भैरव हत्या कांड से किया है जिसे मनोहर श्याम जोशी का मीडिया मैन पाठक की उंगली पकड़कर जिज्ञासा से सुनाता है। जिज्ञासा में पाठक उपन्यास पढ़ता है और पढ़ते–पढ़ते महसूस करता है कि कथा तो क्याप जैसी हुई। लेखक के शब्दों में "धन्यवाद पाठको, सुधीजनो यही तो रोना है कि कथा क्याप सी हुई।"[1]

इतिहास को पुनर्जीवित करना – 'क्याप' के द्वारा लेखक पाठक को इतिहास में लेकर जाता है, जिसे आधुनिक मनुष्य भूल चुका है। लेखक आधुनिक मनुष्य को याद दिलाता है– 'हम क्या थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी' लेकिन आधुनिक मनुष्य इस ओर देखना और जानना नहीं चाहता। स्मृति ह्रास के कारण मनुष्य अपनी सभ्यता, इतिहास, संस्कृति, जंगल, संबंधों से कटता जा रहा है और दुख की बात तो यह है कि मनुष्य को इसका आभास ही नहीं है। उपन्यास में कथाकार की दृष्टि भारत के स्वर्णिम इतिहास और स्वाधीनता संग्राम आंदोलन की ओर जाती है जिसे याद करके कथाकार स्वप्न देखता है कि समतामूलक, समृद्ध, समरस, भारत का निर्माण हो। किन्तु विद्रूपता यह है कि मनुष्य की अदम्य लालसाओं व स्वार्थपूर्ति के कारण यह सार्थक स्वप्न ढिणमिणाण भैरव रहस्य काण्ड की तरह असफल और अदृश्य हो जाता है। फिर भी मनोहर श्याम जोशी उस स्वप्न को साकार करने में लगे हुए हैं।

सभी विचारधाराओं के प्रति विद्रोह – 'क्याप' में मनोहर श्याम जोशी किसी एक विचारधारा को लेकर नहीं चलते। वे उन सभी विचारधाराओं को खंडित करते हुए चलते हैं, जिन्हें स्वयं के महान होने का दंभ है। बाजारवाद के दौर में सब कुछ कृत्रिम है। इतिहास, संस्कृति, मनुष्य का अस्तित्व भी विभाजित है। कोई भी भाव या विचार

❖ संपर्क : सहा. प्रोफेसर, मैत्रेयी कॉलेज, नॉन कॉलेजिएट वुमन एजुकेशन बोर्ड, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मौलिक नहीं है। रवीन्द्र त्रिपाठी के शब्दों में –"एक समय था जब साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता था और आज जब साहित्यकार ही उस दर्पण को तोड़–फोड़ रहा है तो उसमें आलोचक क्या देखे और क्या दिखाए? टूटे दर्पण में तो क्षत–विक्षत छवियाँ ही दिखेंगी न।"[2] बदलते समाज में एक ही दृष्टि व विचार से चला नहीं जा सकता। वे मार्क्सवाद, दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श की आलोचना करते चलते हैं और दिखाते हैं इनके कथनी और करनी में कितनी भिन्नता है।

पढ़ने पर मालूम होता है कि यह राजनीतिक उपन्यास है या दलित विमर्श की संभावनाओं से युक्त है या प्रेम की कहानी है। यह उपन्यास अवांतर कथाओं के संयोजन से संयोजित है जिसमें भिन्न –भिन्न घटनाएँ होने के बाद भी संगति बनी रहती है। मनोहर श्याम जोशी ऐसी घटनाओं का सृजन करते हैं जिसको पढ़ने से कई बार पाठक भटकाव भी महसूस करता है। किंतु जोशी जी का मानना है कि जब समय ही इतना जटिल हो चुका है, परिस्थितियां ही इतनी बदल चुकी हैं, तो अपने मंतव्य को सीधे– सादे तरीके से सरल शब्दों में कहना लेखक के लिए सरल नहीं है। फिर भी मनोहर श्याम जोशी ने अपनी खिलंदड़ी भाषा के रस में भिगोकर अपने विचारों को पाठक तक पहुंचाने का प्रयास किया है।

भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम व पाश्चात्य संस्कृति के प्रति विद्रोह – मनोहर श्याम जोशी भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव रखते हैं उनका यही लगाव ही उन्हें पाश्चात्य संस्कृति की असलियत को देख पाने में सक्षम बनाता है। औपनिवेशीकरण इसका ज्वलंत उदाहरण है। आधुनिक मनुष्य पाश्चात्य संस्कृति के मोह में फँसा हुआ है। मनोहर श्याम जोशी आधुनिक मनुष्य को पाश्चात्य संस्कृति के मोह से बाहर निकालने का प्रयास करते हैं। इसके लिए वह उपनिवेशीकरण की साम्राज्यवादी योजना के फरेब को फस्कियाधार की कहानी के माध्यम से उजागर करते हैं। फस्कियाधार वह स्थान है जहाँ हैरीसन ने दुनिया को आधुनिक बनाने के बहाने प्रकृति का दोहन किया। "सदियों से चला आ रहा बाहरी विजेताओं का वर्चस्व हमारे बुजुर्गों के मस्तिष्क तक से अपने इतिहास और अपनी भाषा की स्मृतियाँ मिटा चुका था। वे विजेताओं की मानसिक औलादें तो निश्चय ही बन चुके थे। देख रहा हूँ कि भूगोल सुनाते–सुनाते मैं इतिहास में फिसल आया हूँ।"[3] उपनिवेशीकरण के लिए किसी भी देश की सांस्कृतिक सत्ता को नष्ट करना आवश्यक है क्योंकि संस्कृति ही है जिससे कोई भी देश समृद्ध होता है। संस्कृति को नष्ट करने से ही किसी भी देश की जड़ों को हिलाया जा सकता है। लेखक के शब्दों में दृ "इन बाहरी विजेताओं ने हमें हीन भावना दी। शूद्रता और क्षुद्रता दोनों का बोध कराया। इसे इनकी कृपा ही कहा जाएगा कि हमारी दीन–हीन दशा अपने पूर्व जन्मों के पापों का परिणाम है।" यहाँ उपनिवेशवादी सत्ता की कुटिलता व व्यापारिक कला का बोध है। जो सामने वाले को मूर्ख घोषित कर पंगु बनाकर उसमें हीनता का भाव बढ़ाती है। और उनके तैयार माल व कच्चे माल को दूसरे देशों में कम दाम पर बेचती है।

पारंपरिक प्रेम से भिन्नता – क्याप' की कथा पारंपरिक प्रेम कथा से भिन्न है। इसमें रीतिकालीन कामवासना व प्लेटोनिक प्रेम नहीं है। अपितु प्रेम में बौद्धिकता, उपभोक्तावादी संस्कृति, लेन–देन का सौदा है। जहाँ मनुष्य की प्रवृत्ति नौकरशाही

व्यवस्था के अनुसार बदल जाती है। आधुनिक मनुष्य प्रेम से अधिक महत्त्व स्वयं की इच्छाओं, आकांक्षाओं, कार्यों को देते हुए अपनी चरम उपभोग की लालसाओं की पूर्ति हेतु प्रतिबद्ध है। 'क्याप' में 'मैं' ऐसा पात्र है जो प्रेम करना तो चाहता है किन्तु प्रेम के बदले समर्पण करना नहीं चाहता। प्रेम के प्रति वह ईमानदार नहीं है। वह स्वयं की इच्छाओं, आकांक्षाओं को महत्त्व देता है। यदि उनमें प्रेम को निभाने की क्षमता होती तो उत्तरा को आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। लेखक के शब्दों में "प्यार होता है तो पहली नजर में पूरी तरह हो जाता है दूसरी नजर में तो आलोचना हो सकती है, पुनर्विचार हो सकता है।" उत्तरा का मानना है कि प्रेम तो सिरफिरे ही कर सकते हैं। और प्रेम करने के लिए क्रांति अनिवार्य है। वह कहती है–" मैं मूर्ख तो बस इतना ही जानती हूँ कि बगैर जोखिम उठाये तो कोई क्रांति होने से रही। इसलिए मैंने जोखिम उठा रखा है।"[4] अंत में जब उत्तरा को महसूस होता है कि 'मैं' और उत्तरा का प्रेम परिणति नहीं पा सकता तो वह आत्महत्या कर लेती है। उत्तरा की आत्महत्या की टीस मैं के मन में ताउम्र रहती है।

मध्यवर्गीय मानसिकता को ध्वस्त करना – 'क्याप' उपन्यास सामाजिक नैतिकता, जाति–पाँति, वर्ग– भेद को तोड़ता है। इन्हीं कारणों से हमारे समाज में प्रेम के लिए अवकाश नहीं है। अगर कोई प्रेमी प्रेमिका प्रेम करते हैं तो किस तरह व्यवस्था द्वारा उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता है। इसका विसंगतिपूर्ण चित्रण 'क्याप' में है। और जब यह कहानी पाठक को सुनाई जाती है तो उसकी पलकें भींग जाती है और पूछने पर कि पलकें क्यों भींग गई है ,उत्तर मिलता है– कुछ नहीं, कुछ भी नहीं। प्रश्न यह उठता है कि कब तक मध्यवर्गीय मानसिकता के चलते प्रेम करने वालों को अपनी जान जोखिम में डालनी पड़ेगी? प्रेम के लिए समाज में स्थान कब बनेगा? वैसे तो हम प्रेम शब्द चिल्लाते रहते हैं, प्रेम को लेकर बड़ी–बड़ी बातें करते हैं, फिर प्रेम करने वालों को स्वीकारते क्यों नहीं हैं? उपन्यास में उत्तरा की बुआ 'मैं' और उत्तरा को अलग करने के हर संभव प्रयास करती है। उसका नतीजा यह होता है उत्तरा अंत में अपनी जान गँवा देती है।

'क्याप' के माध्यम से जोशी जी यह समझाने का प्रयास करते हैं कि बीसवीं सदी की त्रासदी यह है कि प्रेम भाव की समाप्ति अपने चरमोत्कर्ष पर है। प्रेम तत्त्व को बचाने की बजाय आधुनिक मनुष्य छद्म क्रांति करने का प्रयास कर रहा है। यही कारण है कि मानवीय भाव धीरे–धीरे दबते जा रहे हैं और उनका स्थान कृत्रिम अथवा अवांछनीय विचार व वस्तुएँ लेती जा रही हैं। "बीसवीं सदी के तमाम क्रांतिकारी नारों और फतवों की मेरे कानों में न जाने कब से बसी हुई अनुगूंज सहसा गायब हो गई और उसकी जगह लेने लगी कथा सुनी हुई उदास लोक कथाओं की पक्षी योनि में अवतरित नायिकाओं की उदास बोलियां। पास के जंगल की हर चिड़ियाँ यही बोलने लगी – के लै नि भै, के लै नि भै... कुछ भी नहीं हुआ,कुछ भी नहीं हुआ।"[5]

विद्रोही चरित्र का सृजन – उत्तरा 'मैं' से प्रेम करती है। 'मैं' से प्रेम के कारण उत्तरा जातिवादी मानसिकता पर प्रहार करती है। वह एक विद्रोही चरित्र के रूप में हमारे समक्ष आती है। जो प्रेम दीवानगी की हद से करती है और उसके लिए अपना घर,परिवेश,परंपरागत बंधन को तोड़ देती है। जब उसे लगता है कि उसका विवाह किसी और से हो रहा है तब वह आत्महत्या कर लेती है। उत्तरा संघर्ष करते हुए आत्महत्या

करती है। "जोशी जी के कथा सृजन के विद्रोही चरित्र ने उपन्यास के पूरे साहित्यशास्त्र को हिला कर रख दिया है। उपन्यास मूल्यांकन के प्रतिमानों को चुनौती देने वाले मनोहर श्याम जोशी के कथा–प्रयोगों का कोई जवाब नहीं है।"[6]

मैं और उत्तरा के प्रेम की यह कहानी वस्तुतः मनोहर श्याम जोशी द्वारा गढ़ा गया एक गप्प है। परंतु इस उपन्यास की यही खूबी है कि पाठक इस अद्‌भुत गप्प में अपने समय की भयानक सच्चाईयों की झाँकी देख सकता है। आज वैश्विक धरातल पर मनुष्य जिन संकटों से रू–ब–रू हो रहा है, उनके लिए क्याप शब्द बिल्कुल सार्थक लगता है।

भदेस का चित्रण – प्रायः साहित्य में उन भावनाओं को या उन स्थितियों को व्यक्त किया जाता है जिसे आधुनिकतावादी नैतिकता वर्णन योग्य मानती है। किन्तु मनोहर श्याम जोशी ऐसी निषेध वाली भावनाओं को व्यक्त करते हैं जो सौंदर्य बोध की परंपरागत मान्यताओं को खंडित करती हैं। मनोहर श्याम जोशी ने 'क्याप' में प्रेम और गौमूत्र को एक साथ रखा है। इसका कारण यह है कि भारतीय संस्कृति और समाज में इन दोनों को आध्यात्मिक स्तर पर पूज्य माना जाता है किन्तु व्यावहारिक स्तर पर त्याज्य। 'क्याप' का 'मैं' गौमूत्र की शीशी सूंघकर उत्तरा के प्रति प्रेम का एहसास करता है। मनोहर श्याम जोशी बताते हैं कि हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं जहाँ पर सब कुछ चलता है। प्रेम के जकस्टापोज में गोमूत्र भी। यही मनोहर श्याम जोशी परिस्थितियों से लोहा लेते हैं जहाँ मनुष्य परिस्थितियों में बदलाव होने से अपने भावों को भी भूल चुका है। जहाँ प्रेम के भीतर का प्रेम मर गया है। आदमी मरी आत्मा वाला शरीर बन चुका है।

भारतीय समाज में प्रेम को लेकर खुलापन नहीं है इसलिए व्यक्ति छिप–छिप कर प्रेम करता है। यदि प्रेम को लेकर दीवारें नहीं बनाई जाती तो 'मैं' को प्रेम के स्थानापन्न के रूप में गौमूत्र की शीशी का प्रयोग नहीं करना पड़ता। 'मैं' प्रेम के समान गोमूत्र को रखता है क्योंकि यह वही गोमूत्र है जिसका प्रयोग बुबु के द्वारा जातिवादी मानसिकता के कारण किया जाता था। यह गौमूत्र भी मैं को उत्तरा के प्रति प्रेम की तरह पवित्र लगता है। 'मैं' जब उत्तरा को पढ़ाने घर जाता था उस समय की स्थिति का चित्रण करते हुए लेखक कहता है– "ज्यों ही ट्यूशन पढ़ाकर मैं बाहर आता वह अपने पर, उत्तरा पर, फर्श पर, कमरे की हर चीज पर गौंत छिड़कती। मैं यह सोच– सोचकर दुखी होने लगा कि अगर कभी बामण की इस बेटी से गलती से डूम के इस बेटे के लिए प्यार जैसा कोई शब्द निकल गया तो इसकी बूबू शायद इसे गौंत से ही कुल्ला करवाएगी।"[7]

दाम्पत्य संबंधों का खंडन – मनोहर श्याम जोशी कहीं भी दांपत्य संबंधों को नहीं दर्शाते। दांपत्य संबंध उनके किसी भी उपन्यास में हो चाहे वह 'कसप', 'कुरु– कुरु स्वाहा', 'हमजाद', 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी', में दिखाई नहीं देते। वे प्रेम को केवल दांपत्य संबंधों में ही नहीं बांधते उनके अनुसार प्रेम दो व्यक्तियों के बीच होता है। वह भावना का संबंध है। प्रेम में व्यक्ति दो नहीं होते हैं। जिसके साथ मन है उसके साथ शरीर भी। प्रेम के कारण ही उत्तरा अन्यत्र विवाह हो जाने पर आत्महत्या कर लेती है और 'मैं' ताउम्र विवाह नहीं करता। वह स्वयं को हारा हुआ महसूसता है। गोपेश्वर सिंह के शब्दों में "प्रेम एक उदास सी चीज है और बड़ी प्यारी सी चीज है उदासी।"

प्राचीन समय में प्रेम करना सरल था। स्त्री पुरुष के संबंध सामान्य थे। प्रेम और

सेक्स वर्जित नहीं थे किन्तु सभ्यता के विकास के साथ–साथ ये विषय पर्दे के पीछे छिपा दिये गए। परिणामस्वरूप समाज में जटिलता बढ़ती चली गयी। इस जटिलता के कारण ही दाम्पत्य सम्बन्धों की परिभाषा क्याप सी हो गई।

प्रेम और विद्रोह –

मनुष्य प्रेम करना जीवन जीना चाहता है। जीवन जीने के लिए, परंपराओं को तोड़ने के लिए वह कल्पना का सहारा लेता है और सपनों का घर बना लेता है। प्रेम मात्र एक शब्द नहीं है अपितु प्रेम जीवन है। जीवन जीने के लिए संघर्ष अनिवार्य है। मैं के शब्दों मेंदृ" इस झूठी आजादी की जगह सच्ची आजादी कुछ ही बरसों में आ जाने वाली है। और जब आ जाएगी तब हमें एक– दूसरे की अंगुलियां तक छूने के लिए मेजपोश या किताब की आड़ का सहारा नहीं लेना होगा। निर्दय रूढ़ियों की जर्जर दीवारें ढह जाने के बाद हम खुलकर मिल सकेंगे। कुछ भी कर सकेंगे। ऐसा भी मत समझना कि मैं कुछ करके कुछ करने के लिए ही विकल हूं। मैं कुछ नहीं चाहता। मैं बस होना चाहता हूं तुम्हारे साथ। साथ होना चाहने और साथ सोना चाहने में बहुत अंतर है, समझी! और असली साथ होना और सोना तभी होता है जब हम अलग–अलग होते ही नहीं। सीमाएं घुल–मिल जाती है सारी। यह निश्चय करना असंभव हो जाता है कि प्रेमिका कहां खत्म होती है और प्रेमी कहां शुरू होता है।"[8]

भूमंडलीकृत समाज का सच – मनोहर श्याम जोशी भूमंडलीकरण के कारण भोग, हिंसा, सेक्स, पश्चिमी संस्कृति की अंधभक्ति की वास्तविक आकृति हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। साथ ही राजनीति के दोहरे, दोगुले स्वरूप को सामने लाते हैं। यहाँ हर कोई इस चुंगल में फँसा हुआ है और किसी का भी जीवन सुरक्षित नहीं है। उपन्यास में मैं कथावाचक स्वयं को अंधेरे में कविता की भाँति उधेड़ता हुआ प्रश्न पूछता है कि इस नव–पूँजीवादी और नव साम्राज्यवादी संस्कृति में मनुष्य के साथ ऐसी विकराल परिस्थिति क्यों? रस लेते हुए साधारण लहजे में कहने की ताकत मनोहर श्याम जोशी की असली ताकत है, और जो कहा गया है उसमें अर्थ की अनेक ध्वनियाँ हैं। 'क्याप' में आरंभ से ही पाठक स्वयं को प्रश्नों के चक्रव्यूह में घिरा हुआ पाता है। प्रश्नों के भीतर प्रश्न, कहानी के भीतर कहानी और भूमंडलीकृत समाज का चौंकाने वाला सच। 'क्याप' में कथावाचक कहता है– "जीवन के आकुलि–किरातों से घिरा मनोहर श्याम जोशी का मैं। अनुभवों के कहे – अनकहे सत्यों का साक्षी। जो न सुख को सह पाता है न दुख को कह पाता है। दोनों पाटों के बीच पिसता मानव ।"[9]

भूमंडलीकरण के दौर में बौद्धिक विमर्शों द्वारा प्रेम का निरंतर दमन किया जा रहा है। प्रेम अब भावना का न रहकर वासना का विषय बन गया है– "भावना ही भावना करने से वासना पैदा होती है। और वासना से अंधा हुआ व्यक्ति मंजिल की ओर जाते हुए सही मार्ग को देख नहीं पाता है, भटक जाता है। मार खाता है। इसलिए भावुकता से खुद दूर रहो, उत्तरा को भी दूर रखो। इस बात को अच्छी तरह समझो कि तुम्हारे लिए प्राथमिकता क्रम में क्रांति पहले आती है। और प्रेम बाद में। अब जाओ थोड़े दिन के लिए प्रेम–व्रेम भुलाकर सारा ध्यान पढ़ाई पर लगाओ।"[10]

किस्सागोई की पुनः वापसी – मनोहर श्याम जोशी का मानना है कि वे वही

कहानी लिख रहे हैं जो पहले लिखी जा चुकी है। किन्तु उनकी मौलिकता यह है कि वे अत्यंत सपाट तरीके से अपने कथ्य को संप्रेषित नहीं करते। इसके लिए वे किस्सों का सृजन करते हैं। किस्सों के भीतर किस्से गढ़ते हैं और उस यथार्थ को अपनी किस्सागोई के माध्यम से संप्रेषित करते हैं जो अत्यंत भयावह है। "मेरा इशारा तथाकथित 'रहस्यमय ढिणमिणाण भैरव कांड' की 'स्टोरी' की ओर है। अगर आप उन चंद लोगों में से हैं जिन्होंने मास– मीडिया की ओर से सिद्धांततरू मुंह मोड़ लिया है या अगर आप उन लोगों में से हैं जिनके लिए मास–मीडिया की परोसी हुई हर महत्त्वपूर्ण स्टोरी इस अर्थ में बेवफा साबित होती है कि दिमाग में सफा हो जाती है, तो शायद आपके हित में इस कांड की तथाकथित संक्षेप में दोहरा देना अनुचित न होगा।"[11] क्योंकि वे मानते हैं कि हम ऐसे समय में हैं जहाँ पर सच्चाई है ही नहीं। सर्वत्र झूठ, फरेब, अंधकार है। ऐसे में सच की अभिव्यक्ति रहस्यमय तरीके से ही हो सकती है। जब तक इस धरती पर इंसान है, अच्छी या बुरी कैसी भी लीला के लिए किसी भी काल्पनिक भगवान को जिम्मेदार ठहराना बेईमानी है।

निष्कर्षतः इस तरह से हम कह सकते हैं कि किसी भी युग में, काल में, व्यवस्था में, समाज में आदमी आदमी ही होता है। हृदय धड़कना नहीं भूलता। भले ही हम कृत्रिमता के कितने ही आवरण क्यों न चढ़ा ले, तमाम विषमताओं के बीच मनुष्य का अंतिम सत्य प्रेम ही है। प्रेम के बिना साहित्य व कला का सृजन नहीं हो सकता। प्रेम में ही संपूर्ण संसार निवास करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मनोहर श्याम जोशी – क्याप, पृ. 15
2. गप्प का गुलमोहर, मनोहर श्याम जोशी (संपा.) कुसुमलता मलिक, पृ. 19
3. मनोहर श्याम जोशी – क्याप, पृ. 15
4. वही, पृ. 18
5. वही, पृ. 51
6. मनोहर श्याम जोशी – क्याप, फ्लैप
7. निर्मल वर्मा – ढलान से उतरते हुए, पृ. 121
8. मनोहर श्याम जोशी – क्याप, पृ. 19
9. (संपा.) कुसुमलता मलिक – गप्प का गुलमोहर, मनोहर श्याम जोशी, पृ. 42
10. मनोहर श्याम जोशी – क्याप, पृ. 110
11. (संपा.) कुसुमलता मलिक – गप्प का गुलमोहर, मनोहर श्याम जोशी –, पृ. 159

■

बिहार की समकालीन
हिन्दी गजलों में प्रेम अभिव्यंजना

प्रीति सुमन*

जिस प्रकार फूल से उसकी खुशबू और उसके रंग अलग नहीं किये जा सकते उसी प्रकार जीवन से प्रेम और शृंगार को अलग करना असंभव है। बिना प्रेम का जीवन अर्थहीन और नीरस ही समझा जाता है। जीवन के इस रंग को हर भाषा में अलग–अलग विधा के माध्यम से पारिभाषित किया जाता रहा है। गजल की तो उत्पत्ति ही प्रेमी–प्रेमिका के मध्य प्रेमपूर्ण वार्तालाप के रूप में हुई है। हिन्दी गजल भी गजल की पारंपरिक परिभाषा को नजर–अंदाज नहीं कर सकती।

बिहार में हिन्दी गजल प्रगति के रास्ते पर है। उसने साहित्य को जानकीवल्लभ शास्त्री जैसे प्रतिष्ठित गजलकार दिये हैं। इसी क्रम को आज बिहार के अनेक कवि गति प्रदान करने में दृढ़ता से जुटे हुए हैं। यहाँ पड़ताल का केंद्र यह है कि क्या आज के परिप्रेक्ष्य में गजल में प्रेम भाव की उपेक्षा हो रही है? इस आलेख में बिहार के प्रसिद्ध गजलकारों की प्रेम और शृंगार से संबन्धित गजलों और शेरों का विवेचन एवं विश्लेषण कर इस तथ्य के निष्कर्ष तक पहुँचा जाएगा।

आज हिन्दी गजल का मूल अर्थ लिया जाता है सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं, असमानताओं, समस्याओं, विद्रूपताओं का नूतन बिंबों, प्रतिकों के माध्यम से सरस चित्रण। गजल को हिन्दी गजल कहने से तात्पर्य है कि यह हिन्दी साहित्य में किसी अन्य भाषा से आगत विधा है। गजल अरबी से फारसी, फारसी से उर्दू और उर्दू से होती हुई हिन्दी में आयी है। हिन्दी साहित्य स्वभाववश नवीनता को हृदय से आत्मसात करने में निपुण है। इसी कारण हिन्दी ने गजल को अपनी साहित्यिक पृष्ठभूमि में भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए उसे फलने–फूलने के उचित अवसर प्रदान किए हैं।

मनुष्य स्वभाव से भावनाओं का पोषक है और समस्त भावनाओं में प्रेम के प्रति उसमें अति आकर्षण विद्यमान है। आदिकाल से ही हिन्दी साहित्य में प्रेम को

* संपर्क : 202 बी. मोइत्रा अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स,समीप गुप्ता कॉम्प्लेक्स, डी. वी. सी. रोड, गर्दनीबाग, पटना, बिहार– 800001, मोबाइल न.– 6201597291

अतिविशिष्ट स्थान प्रदान किया जाता रहा है और पद्य में तो प्रेम सदैव मुख्य बिन्दु पर स्थापित रहा है। प्रेम का कोई निश्चित विज्ञान तो नहीं फिर भी हृदय की सूक्ष्म व्यवस्था के समीप पहुँचने की अवस्था के लिए प्रेम एक मार्ग के रूप में लिया जाता रहा है। प्रेम जितना गृहस्थ जीवन के लिए आवश्यक रहा उतना ही सन्यस्थ के लिए भी। भक्त कवयित्री मीरा का प्रेम जितना अद्भुत और आह्लादपूर्ण परमपुरुष श्रीकृष्ण के लिए प्रतीत होता है उतना ही कोमल और निर्मल रसखान का अपनी साधारण प्रेमिका सुजान (नर्तकी) के लिए लगता है। फिर भी प्रेम का सबसे विशिष्ट रूप आत्मा से परमात्मा या कहें व्यष्टि से समष्टि में समाहित होने की उत्कट इच्छा के रूप में परिभाषित किया जाता है।प्रेम हृदय का एक विशुद्ध भाव है जो हर युग, हर काल में समकालीन था और रहेगा। हिन्दी पद्य साहित्य का आदिकाल से परीक्षण करने पर हम इस मूल तक पहुँचते हैं कि प्रायः प्रत्येक काव्य या महाकाव्य का तात्विक अभिप्राय मूलतः प्रेम ही रहा है।

गजल की बात करें तो उसकी उत्पत्ति का कारण ही शृंगार रहा, इसलिए उसमें प्रेम का विकास उसकी नैसर्गिक स्थिति है। गजल इसी रूप में उर्दू से हिन्दी में प्रविष्ट हुई और हिन्दी गजल के प्रथम चितेरा अमीर खुसरो ने इसके माध्यम से रूहानी प्रेमाभिव्यक्ति कर इसे अविस्मरणीय बना दिया।उनका एक प्रसिद्ध शेर देखें– "जब यार देखा नैन भर दिल कि गयी चिंता उतर,/ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाये कर।"[1]

इसी क्रम में 'ढाई आखर प्रेम का' जैसे आदर्श के द्योतक भक्तिकाल के महान दार्शनिक कवि कबीरदास ने भी ईश्वर के लिए,'इश्क की रवानगी' गजल के माध्यम से समाज के समक्ष रखते हुए लिखा है– "हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या,/रहे आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या।"[2]

लेखक के अनुसार प्रेम हृदय को निश्छल और निर्मल बनाकर उसे अद्भुत योग्यता से परिपुष्ट करता है। प्रेमी हृदय दुनिया में रहकर भी दुनिया के झमेलों से बाहर रहता है और दुनिया से बाहर होकर भी दुनिया को प्रेम के संदेश बाँटता हुआ दुनिया का आनंद लेता है। प्रेम से भरे हृदय के पास एक मस्ती का प्याला है जिसे पीकर वह आम जीवन की निस्सारता को जानने में सक्षम हो पाता है। इसी विषय पर अपने मंतव्य प्रस्तुत करते हुए बिहार के वरिष्ठ गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा का कथन है "प्रेम वस्तुजगत में अपने मानवीय अर्थ का समावेश करता है और उसका कार्य इस वस्तुजगत को वैसे देखना नहीं है कि जैसा वह वास्तव में है, अपितु जैसा मनुष्य उसे देखना चाहता है, वैसे देखता है।"[3]

बिहार के साहित्यिक धरातल पर लंबे समय से पनपते हिन्दी गजल ने विकास के नाम पर सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों का ही चित्रण मात्र नहीं किया है। हाँ, सामाजिक विषमताओं के चित्रण को हिन्दी गजल का मूल भाव समझ लेने की वजह से प्रेम का चित्रण कुछ कम अवश्य हुआ है। लेकिन बिहार के समकालीन गजलकारों ने प्रेम की अक्षुण्ण गरिमा की वापसी का बिगुल बजाते

हुए फिर से प्रेमिल गजलों, शेरों का सृजन बहुतायत संख्या में करना प्रारम्भ कर दिया है। युवा कवि कुमार आर्यन का एक प्रेमपरक शेर देखें– "शर्ते हजार रख दी मोहब्बत के वास्ते,/अपनाता काश हमको हमारी कमी के साथ।"[4]

प्रस्तुत शेर में कवि ने प्रेम की इन्हीं कठिनाइयों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की है कि प्रेम किसी शर्त का मोहताज नहीं हैं। प्रेम में लेन–देन, हानि–लाभ जैसी बातें निरर्थक साबित होती हैं। लेकिन जब हम इसमें अपने फायदे के लिए शर्तों की गांठ लगाते हैं तब यह सुखद होने के बजाए दुख का कारण बन जाता है। प्रत्येक व्यक्ति मे गुण और अवगुण दोनों ही होते हैं। प्रेम का यही सर्वोत्तम रूप है कि वो दुर्गुणों से परे अपने प्रेमी को देखता है। लेकिन ऐसे प्रेमी का सानिध्य प्राप्त होना अति दुर्लभ है।

प्रेम का सही अर्थ है आनंद। जीवन का आनंद, आजादी का आनंद, दुनिया से परे देखने का आनंद। प्रेम ह्रदय को फैलाता है और उसे खुले आकाश की उन्मुक्तता प्रदान करता है। वह जीवन को आनंद की तरफ मोड़ने में हमारा पथ प्रदर्शन करता है। "प्रेम का हर परिप्रेक्ष्य मे बहुत अधिक महत्व होता है। ऐसा माना जाता है कि इंसान हर समय प्रेम से वशीभूत रहता है। यह प्रेम किसी से हो सकता है– प्रेमिका से, माँ से, भाई–बहन से, पैसा से, वैभव से अथवा तन, आत्मा या परमात्मा से भी। अर्थात प्रेम ही प्रमुख है।"[5] बिहार की वरिष्ठ कवयित्री डॉ. अनीता सिंह अपने शेर में प्रेम में समर्पण की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखती हैं– "हम मुहब्बत मे यूँ रायगाँ हो गए,/इस तरह से मिटे बे–निशां हो गए।"[6]

समर्पण ही प्रेम का निश्छल और निर्मल भाव है जो उसे अन्य सभी भावों से श्रेष्ठ बनाता है। इसी भाव पर अनेकानेक गजलों और शेरों का निर्माण पूर्व में भी देखा जा चुका है लेकिन इस भाव तक पहुँचने तक का रास्ता बहुत कठिन और दुरूह है। यह इहलोक के प्रेम से लेकर पारलौकिक प्रेम तक को इंगित करता है। गालिब साहब का इसी से संबन्धित एक शेर "न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होताध्डुबोया मुझको होने ने न मैं होता तो क्या होता!" में मिटने का यह भाव आत्मिक ज्ञान का चरमोत्कर्ष है। जिसने प्रेम में खुद को झोंकने से मना किया उसे प्रेम अपनी दुनिया से बाहर कर देती है।बिहार के प्रतिष्ठित गजलकार शिवनारायण प्रेम और प्रकृति का सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत करते हुए अपने एक शेर में लिखते हैं– "तुम उसी वक्त ही चले आना,/चाँद जब झील में उतर जाये।"[7]

प्रेम में मिलन, विरह, आलिंगन, दर्शन, समर्पण आदि महत्वपूर्ण उपादान हैं। गजलों में विरह और मिलन दोनों का चित्रण किया जाता रहा है लेकिन विरह का वर्णन अत्यधिक प्रभावोत्पादक होता है।गजलकार प्रेमकिरण प्रेम में मिलने वाले दुख को बहुमूल्य बताते हुए लिखते हैं– "मुहब्बत में मुझसे धनी कौन होगा,/गमों के खजाने मेरे नाम आये।"[8]

कवि इस शेर में यह स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं कि उनके हृदय में अधिक प्रेम के भाव होने के कारण उन्होंने अधिकतर लोगों पर विश्वास किया। अनेक मित्रों से उनके हृदय जुड़े और इस क्रम में उन्हें बार–बार दुख का सामना करना पड़ा। इस टूटे हुए हृदय के पास दुख का इतना आधिक्य हो गया है जिसे उन्होंने अपने हृदय से ऐसे लगा रखा है जैसे कोई राजा अपने खजाने को संभाले रहता है।दिल के इस खेल में हार और जीत दोनों की संभावना हमेशा बनी रहती है। लेकिन इश्क, मुहब्बत वाले इन गमों को भी बड़े आनंद का विषय समझते हैं। प्रेम हमारे हृदय को गमों में भी मुस्कुराने, गुनगुनाने की शक्ति देता है। हमें जीवन को खुशी से जीने के तरीके सिखाता है। प्रेम के इसी निष्काम भावना को अभिव्यक्ति देता डॉ. आरती कुमारी का यह महत्वपूर्ण शेर देखें– "अजब है मुहब्बत का मैदान यारों,/न जीता गया है न हारा गया है।"[9]

दुनिया के सभी रिश्तों में प्रेम, स्नेह का रिश्ता अधिक प्रभावशाली होता है। इसमें हम एक ऐसी डोर से बंधे होते हैं जो दिखाई तो नहीं देती लेकिन हमें बड़ी मजबूती से थामे रहती है। इस रास्तों के पथिक का आचार–विचार आमजन से भिन्न हो जाता है। वे एक दूसरे को गिराकर या झुकाकर जीतने का प्रयास नहीं करते। कवयित्री यही अपने इस शेर के माध्यम से बता रही हैं कि प्रेम के पथिक हार–जीत की उठापटक से बिलकुल अलग होते हैं। यहाँ तो खुद को हारकर प्रिय का हृदय जीतने की परंपरा होती है। यहाँ जीतने से तात्पर्य होता है हृदय जीतना। कवयित्री ज्योति मिश्रा लिखती हैं– "महबूब के कदमों में लुटा जान हैं देते,/कम इश्क का होता कभी तेवर नहीं देखा।"[10]

इश्क की रिवायत दुनिया की रिवायतों से बिलकुल अलग है। वह जहाँ के तख्तों–ताज को भी हँसके ठुकरा देता है और अपने प्रिय के कदमों मे कीमती जान निछावर करने में एक पल भी नहीं सोचता। कवयित्री अपने इस शेर के माध्यम से हमें इश्क के इसी बहुमूल्य रिवाज को बताने की कोशिश कर रही हैं। युग बदल गए लेकिन प्रेम ने अपना स्वभाव नहीं बदला। उसके तेवर में कोई अंतर नहीं आया है। वो आज भी जीवन का सबसे बहुमूल्य शृंगार है। कवयित्री कुमुद साहा का प्रेम में पगा एक शेर देखिये– "मेरा आईना तू बना सनम, जिसे देखकर मैं सँवर गयी,/ये हिना जो है मेरे हाथ में, तेरे इश्क से ही निखर गयी।"[11]

प्रेम जितना उत्कृष्ट, जितना प्रांजल होता है वह उतना ही अधिक दूभर होता है।प्रेम भरे हृदय की तुलना महकते फूल से की जाती है।कवि इस शेर के माध्यम से इसी प्रेम के फूल के खिलने में लगने वाले अधिक समय की चर्चा करते हुए कहते हैं कि मुद्दतमें कोई प्रेम का फूल खिलता है और नफरत के लिए तो एक पल अर्थात एक छोटी सी भूल का होना ही काफी होता है। प्रेम का वर्णन करते समय प्रकृति का आलंबन लेने से शेर की खूबसूरती ही नहीं बढ़ती बल्कि उनमें जीवंतता के दर्शन भी होने लगते हैं। वरिष्ठ कवि नचिकेता का यह शेर

उदाहरणस्वरूप देखिये– "खिलखिलाकर यहाँ हँस पड़ी चाँदनी,/मारकर प्यार की कंकड़ी चाँदनी।"[12]

प्रस्तुत शेर में कवि ने प्रकृति में प्रेम और प्रेम में प्रकृति का सुंदर सामंजस्य दर्शाते हुये एक श्रेष्ठ शेर की रचना करने में सफलता प्राप्त की है। चाँदनी का तात्पर्य यहाँ खिलखिलाती हुई निर्मल और शुभ्र चाँदनी में डूबी प्रकृति से है। प्रकृति के दमकते सौंदर्य से रोम–रोम में प्यार भर रहा है और ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे चाँदनी प्रेम का कंकड़ मारकर छेड़ रही है। हृदय में प्रेम भरती हुई प्रकृति का दृश्यांकन करना ही कवि का मूल ध्येय है लेकिन इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति का हृदय, जड़ हो या चेतन उनसे प्रेम की मौन मनुहार करता है। प्रेम अगोचर और अमूर्त्य है अतः उसकी महक, उसकी खुशबू को महसूस करने की परंपरा प्रेमियों में निहित है। इसी पर आधारित वरिष्ठ आलोचक और कवि अनिरुद्ध सिन्हा का यह शेर द्रष्टव्य है– "तुम्हारे प्यार की खुशबू से भरकर,/तुम्हें हमने नया इक खत लिखा है।"[13]

प्रेम एक भाव है जिसकी खुशबू अदृश्य है और जिसको बाहरी तौरपर सूंघना असंभव है। इसे महसूस करने के लिए हृदय ही एकमात्र सहायक सिद्ध होता है। इस शेर में कवि का कहना है कि नायिका के प्रेम की खुशबू जो नायक के अंतरतम में भर चुकी है उसी एहसास को अपनी लेखनी का मार्गदर्शक बनाकर अपनी नायिका को समर्पित करने हेतु एक नवीन प्रेम–पत्र की रचना कर रहा है। प्रेम का यही सौंदर्य है कि वह बिना देखे, बिना जाने भी अत्यधिक शक्तिशाली और प्रभावी होता है। प्रेम के महत्व को प्रतिपादित करता नसीम अख्तर का एक शेर देखें– "चिरागे मुहब्बत बचाना पड़ेगा,/हर एक सु मुखालिफ हवा चल रही है।"[14]

इस दुनिया में अमन–चौन कायम करने का एक मात्र रास्ता है, वो है प्रेम का। इस महत्वपूर्ण तथ्य को नकारकर न कोई समाज विकसित हो सकता है न कोई साहित्य। कवि का यह शेर सम्पूर्ण कथन का सार तत्व है। प्रेम जीवन का अनिवार्य तत्व है। इस समाज को विकास कि सही परिभाषा देने हेतु यह आवश्यक है कि प्रेम के भाव की सम्पूर्ण शक्ति से रक्षा की जाए क्योंकि नफरत पर विश्वास करने वालों से जीतने का यही एकमात्र अचूक अस्त्र है।

निष्कर्ष : हर युग की अपनी प्राथमिकता होती है और उसका अपना मापदंड होता है। पुरानी प्रवृत्तियाँ समाप्त तो नहीं होती गौण अवश्य हो जाती हैं। तत्कालीन समय तकनीक पर आधारित काल के रूप में जाना जाता है। मीडिया का वर्चस्व, आधुनिकीकरण,औधोगिकीकरण, एकल परिवार आदि अनेक ऐसे कारण हैं जिसकी वजह से अंदर से जीने के बजाय समकालीन समाज बाहरी तड़क–भड़क का अनुगामी हो चुका है। प्रेम अंतर्वर्ती धारा है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। ऐसा नहीं कि बिहार की समकालीन

हिन्दी गजलों में प्रेम भाव नगण्य हो गये हैं। हाँ, उन भावों में न्यूनता जरूर दृष्टिगत होने लगी है। जीवन के उतार–चढ़ाव, बदलाव, एकाकीपन, आधुनिकीकरण की शोर में प्रेम कहीं उपेक्षित अवश्य महसूस करने लगा है। बिहार के कुछ युवा गजलकारों को प्रेम की तरफ लौटते देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दी गजल की भावी स्थिति अधिक सशक्त और सक्षम होगी।

संदर्भ सूची :

1. वर्मा, राजेंद्र, (2022), हिन्दी गजल का शिल्प और सौंदर्य, नयी दिल्ली, श्वेतवर्ण प्रकाशन, पृ. सं.– 18
2. डॉ० भावना, (2022), हिन्दी गजल के बढ़ते आयाम,नयी दिल्ली, श्वेतवर्ण प्रकाशन, पृ. सं.– 119
3. सिन्हा, अनिरुद्ध, (2017), हिन्दी गजल का नया पक्ष, दिल्ली, परिक्रमा प्रकाशन,पृ. सं.– 75
4. सुमन, प्रीति, (2023), काव्यम, नयी दिल्ली, श्वेतवर्णा प्रकाशन, पृ. सं.–83
5. प्रजापति, डॉ. दशरथ, (2022), एक नयी सुबह, (पत्रिका), पृ. सं.–27
6. कुमारी, डॉ. आरती, (2021), बिहार की महिला गजलकर, लखनऊ, उत्तर प्रदेशः लोकोदय प्रकाशन, पृ. सं.– 11
7. सिन्हा, अनिरुद्ध, (2020), हिन्दी गजल प्रकृति और पर्यावरण, गाजियाबाद, समन्वय प्रकाशन, पृ. सं.– 221
8. प्रेमकिरण, (2021), तिलिस्म टूटेगा, जयपुर, बोधि प्रकाशन, पृ. सं.– 128
9. प्रजापति, डॉ. दशरथ, (2022), सीतामढ़ी, एक नयी सुबह, (पत्रिका), पृ. सं. – 116
10. वही, पृ.सं.–102
11. सुमन, प्रीति, (2023), काव्यम, नयी दिल्ली, श्वेतवर्णा प्रकाशन, पृ. सं.–46
12. नचिकेता, (2021), आइना दरकता हुआ, पटना, प्रकृति प्रकाशन, पृ. सं.– 123
13. कंवल, रमेश, (2020), 2020 की नुमाइंदा गजलें, दिल्ली, एनिबूक पब्लिकेशन, पृ. सं.– 87
14. प्रजापति, डॉ. दशरथ, (2022), सीतामढ़ी, एक नयी सुबह, (पत्रिका), पृ. सं–86

■

बिहार की समकालीन

महिला गजलकारों की मूल संवेदना

अविनाश भारती ❖

यह स्पष्ट है कि हिन्दी में गजल आगत विधा है जो अरबी, फारसी और उर्दू से होती हुई हिन्दी तक आई है। जहाँ हिन्दी ने इसे आत्मसात करते हुए इसे नए रूप में ढाला है। आज की हिन्दी गजल, जन चेतना से लैस होकर अपने सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक दायित्व का बखूबी निर्वाह कर रही है, अब वह जमाने की आवाज और चेतना बन गयी है। वर्तमान काल में गजलों के यथार्थवादी चरित्र के कारण यथार्थ का खुरदुरापन उसका सौंदर्य बनता जा रहा है। अब वह गमों पर मरहम लगाकर व्यथित व्यक्ति को सुलाने की जगह उसे जगाने और कर्म क्षेत्र में संघर्ष करके अपनी तकदीर बदलने की प्रेरणा देने का कार्य कर रही है। आज के समकालीन गजलकार अपने चारों ओर के वातावरण में जो देख रहा है, उसी को शेश्र के माध्यम से नज़्म कर रहा है। आज की गजल की दृष्टि में यदि ऊँची हवेलियाँ हैं, तो टूटी–फूटी झोपड़ियों को भी वह नजरअंदाज नहीं कर रही है।

अगर बिहार में समकालीन हिन्दी गजल के स्वरूप और लेखन परम्परा को देखें तो बिहार हमेशा से साहित्यकारों, अध्यात्मिक गुरुओं और ऋषियों की घरती रहा है। आदिकवि विद्यापति से लेकर रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री, बाबा नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, गोपाल सिंह नेपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी, भिखारी ठाकुर, अरुण कमल, आलोकधन्वा, बुद्धिनाथ मिश्र आदि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया है। एक ओर जहाँ बिहार का गद्य साहित्य जीवन के परिष्करण और उत्थान का साहित्य है वहीं दूसरी ओर पद्य साहित्य का भी अपना गरिमामय इतिहास है। बहरहाल, बिहार में गजल लिखने वालों की लंबी कतार है। बहुत ऐसे नाम हैं जिन्होंने अपनी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर बनाई है। पत्र–पत्रिकाओं से लेकर मंचों पर भी इनकी गजलें खूब पढ़ी और सराही जाती हैं। बिहार की गजलों में आंतरिक आवेग के साथ परिवर्तन की छटपटाहट है। जनमानस की पीड़ा से लेकर आतंकवाद और बाजारवाद के विरुद्ध आवाजें हैं। बिहार के गजलकारों ने

❖ संपर्क : शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, मो.– 9931330923

खामोशी की चादर से लिपटे लोगों को अपनी आवाज देते हुए उनके आंतरिक कोलाहल को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है।

निःसंदेह समकालीन दौर में जितनी सक्रियता पुरुष रचनाकारों की है उससे तनिक भी कम महिला रचनाकारों की नहीं है। सर्वविदित है कि औरतों को जन्म से ही बंदिशों में रखा गया है और उन्हें रीति–रिवाजों की दुहाई देकर जकड़ा जाता रहा है। वे घर–परिवार से लेकर बाहर तक की जिम्मेदारियों को बखूबी निभा पाने का सामर्थ्य रखती हैं फिर भी समाज उनके अस्तित्व को और उनकी आजादी को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। इस पर बिहार की संजीदा कवयित्री अभिलाषा कुमारी कहती हैं – 'उन्हें भाती है गम को आँसुओं में घोलती औरत,/भला भाती नहीं आखिर उन्हें क्यों बोलती औरत।'

वैसे तो आज भी ज्यादातर महिला गजलकारों की गजलों का विषय परंपरागत ही है। लेकिन कुछ नाम जिन्होंने अपनी रचनाधर्मिता का बखूबी निर्वहन किया है, उनमें डॉ. नीलम श्रीवास्तव प्रमुख हैं। इनकी गजलें समाज को आईना दिखाने का काम करती हैं। सरकार की गलत नीतियों का विरोध करना इनकी गजलों की विशेषता जान पड़ती है। बिहार की सशक्त महिला हस्ताक्षर नीलम श्रीवास्तव का ये शेर देखें जो सरकार की तानाशाही का पुरजोर विरोध करता हुआ नजर आता है। शेर देखें – 'तोड़ चिल्मन सड़क पर उतर जाएँगे,/ये न समझो के हम तुमसे डर जाएँगे।'[1]

डॉ. अनिता सिंह की गजलों की कहन शैली औरों से जुदा है। महिला होने के नाते इनकी संवेदनशीलता और सहनशीलता, इनकी गजलों में भी परिलक्षित होती हैं। इन्हें पता है कि शिकायत करने बाद भी बदलाव संभव नहीं है। अतः इस परिस्थिति में चुप रहना ही बेहतर है। अशआर देखें – 'छोड़ो जाने भी दो कहने से क्या हासिल,/जुल्म उन्होंने हम पर ढाए कैसे–कैसे।'[2]

समकालीन महिला गजलकारों की अगुआई करने वाली डॉ. भावना वैसे तो बेहद सहज व संवेदनशील हैं लेकिन सत्ता की तानाशाही और आम–अवाम के शोषण पर इनके सब्र का बाँध टूटता है। परिणाम स्वरूप विरोध प्रकट करता हुआ कुछ ऐसे अशआर भी देखने को मिलते हैं – 'अब तो लड़ाई है मेरी अन्याय के खिलाफ,/हर झूठा का रख देंगे हम चोला उतारकर।'[3]

डॉ. नीलम श्रीवास्तव को समाज और राजनीति में सार्थक बदलाव की उम्मीद हैं। लेकिन यह उम्मीद बार–बार टूटती है। यहाँ सिर्फ सरकारें बदलती हैं, उनके काम करने का तरीका नहीं बदलता। कुर्सी पर बैठने वाला चाहे जो भी हो उसकी दृष्टि समाज में व्याप्त बुराइयों पर नहीं पड़ती। खास करके महिलाओं की दुर्दशा के प्रति सरकार की उदासीनता भयावह है। यह शेर देखें– 'खेल होता बस सियासी नाम पर मेरे यहाँ,/दस्ताने द्रौपदी हर बार दोहराई गई।'[4]

डॉ. भावना भी सरकार की इसी उदासीनता को रेखांकित करने का प्रयास करती हैं। निः सहाय आम आदमी की जिन्दगी भी किसी तमाशे से कम नहीं होती। दुनिया भी इनके दुःख, दर्द का साथी बनने के बजाये मूक दर्शक बनी रहती है। शेर देखें– 'तमाशा हो रहे हैं हम, तमाशाई बनी दुनिया,/सियासत आगे जाने क्या नया करतब दिखाती है।'[5]

समकालीन हिन्दी गजल की सशक्त महिला हस्ताक्षर डॉ. आरती कुमारी सियासत की अमानवीयता, बेहयाई के साथ–साथ आम जनता के डर को भी रेखांकित करती हुई कहती हैं – 'ये सियासत मौत पे भी जश्न है करती,/कुछ कमी इसमें हमारी, खौफ तारी है।'[6]

आराधना प्रसाद बतौर संजीदा गजलकार अपनी पहचान पाती हैं। इनकी गजलों में क्षणिक मनोरंजन और फूहड़ता की जगह जीवन का चिरकालीन खुरदुरा यथार्थ है जो इन्हें विशिष्ट बनाता है।

इनका यह बेहद चर्चित शेर 'चाक पर घूमती रही मिट्टी' विषम परिस्थितियों में आदमी की जिजीविषा और हौसलों का द्योतक है। इनके आशावादी दृष्टिकोण को समझने के लिए इस मुकम्मल अशआर को देखें – 'इक नई जिन्दगी की चाहत में,/चाक पर घूमती रही मिट्टी।'[7]

आरती आलोक वर्मा, महिलाओं की दयनीय स्थिति की ओर ईशारा करती हैं। साथ ही उसकी वजह भी बताती हैं। गौर करे तो यह बात भी सही है कि महिलाओं की चुप्पी, उनकी अत्यधिक सहनशीलता और खुद के बजाए पुरुष वर्ग पर आश्रित होना ही उनके दुखों का मूल कारण है। इस बाबत आरती आलोक वर्मा का यह बेहद उल्लेखनीय शेर ध्यातव्य है– 'हाशिए पर हम आ गए खुद ही,/हमने ही हाशिए बनाए हैं।'[8]

ऋता शेखर 'मधु' भी इन्हीं कारणों को महिलाओं की दुर्दशा का कारण बताती हैं। शेर देखें – 'शिकायत कर नहीं पाती खिलाफत कर नहीं पाती,/उसे सहने की आदत है बगावत कर नहीं पाती।[9]

नीलू चौधरी मानती हैं कि महिलाओं की नियति ही तन्हा रहना है। शादी के बाद पहले उनका मायका छूटता है, फिर जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तब अच्छी तालीम के वास्ते बच्चों से दूर होती हैं और फिर अंत में बुढ़ापे में पथराई आँखों से उनका इंतजार करते हुए जीवन गुजार देती हैं। माँओं और महिलाओं के अकेलेपन को शब्द देता हुआ यह अनूठा अशआर गौर करें– 'हुए बच्चे हैं घर से दूर जब से,/कि घर सूना पड़ा है और मैं हूँ।[10]

माधवी चौधरी का यह बेहद संजीदा शेर पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए व्यवस्था पर कुठाराघात करता हुआ प्रतीत होता है जहाँ पति को जीवन साथी, सहचर होने के बजाए परमेश्वर का दर्जा प्राप्त है। अब भला परमेश्वर के प्रति कोई प्रेम भाव कैसे रख सकता है! परमेश्वर के प्रति तो दास्य भाव रखे जा सकते हैं

क्योंकि परमेश्वर तो पूजनीय हैं। शेर देखें – 'प्यार उससे क्या करोगी 'माधवी' तुम,/दिल में जो बस देवता बनकर रहेगा।'[11]

रूपम झा, महिलाओं के बदलते विचारों का समर्थन करती हैं, उन्हें उनकी शक्तियों से अवगत कराती हैं। साथ ही उनके अंदर नई चेतना का संचार का करती हैं। विदित हो कि आजकल की महिलाएं हर क्षेत्र में अपनी अमिट उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। पुरुषों के कदम से कदम मिला कर अपनी कार्यकुशलता का परिचय दे रही हैं। इस सन्दर्भ में इस अशआर को देखा जा सकता है – 'अब तो रोने सिसकने की फुर्सत नहीं,/इस जहाँ को चलाने लगीं औरतें।'[12]

चाँदनी समर, युवा एवं संभावनाशील गजलकार हैं। लेखन के शुरूआती दौर में ही इनकी गजलों में सामाजिक सरोकार का होना गजल के सुखद भविष्य का द्योतक है। शून्य पड़ती मानवता को रेखांकित करता हुआ उनका यह खूबसूरत शेर देखें – 'तोलते हैं इक तराजू में सभी रिश्तों को लोग,/शै हरिक महँगा हुआ सस्ता हुआ इंसान है।'[13]

बेहद सरल एवं सहज स्वभाव की वरिष्ठ साहित्यकार रूबी भूषण अपनी अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति पाठक वर्ग को अपनी गजलों से भी बेहद प्रभावित करती हैं। स्त्रियों की मनोदशा को बड़ी ही संजीदगी से प्रस्तुत करने वाली शायरा रूबी भूषण का यह अशश्आर गौर करें – 'देखा जो नींद में कभी हमने तमाम रात,/लेकिन सुबह हुई तो सपने बिखर गए।[14]

श्वेता गजल, स्त्री जीवन की त्रासदी और कठिनाइयों को गजल लेखन की बुनियादी शर्तों से समानांतर रूप में जोड़कर देखती हैं। इनकी माने तो इनकी गजलें स्त्री दुर्दशा की पूरक हैं। उदाहरण स्वरूप यह खूबसूरत अशआर देखें– 'खून में उंगलियाँ मैं डुबोती रही,/गम 'गजल' का गजल से जुदा तो न था।'[15]

निष्कर्ष : बिहार की समकालीन हिन्दी महिला गजलकारों ने गजल के परम्परागत कथ्यों का परित्याग कर नये विषयों को आत्मसात किया है जिसमें ज़्यादातर उनके खुद का भोगा हुआ जीवनानुभव है। हर तरह की विसंगतियों को रेखांकित करना इनके गजल लेखन की पहली शर्त जान पड़ती है। विदित हो कि यह फेहरिस्त यही समाप्त नहीं होती। और भी नाम हैं जो निरंतर सृजनशील हैं। लेकिन उनमें ज़्यादातर गजलकार आज भी प्रेम की परिधि से बाहर नहीं निकल सके हैं। हालाँकि प्रेम पर लिखना कोई ऐब नहीं है लेकिन जहाँ बेरोजगारी, लाचारी, भूखमरी आदि जैसी विकराल समस्याएं हमारे सामने खड़ी हों वहाँ ऐसी गजलों का सृजन रचनाकार की रचनाधर्मिता पर सवाल खड़े कर देता है।

सन्दर्भ–सूची –

1. बिहार की महिला गजलकार, डॉ. आरती, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ,वर्ष –2021, पृष्ठ –118
2. बिहार की महिला गजलकार, डॉ. आरती, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ, वर्ष –2022, पृष्ठ –21
3. डॉ. भावना के चुनिंदा अशश्आर विजय कुमार, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष–2024, पृष्ठ –97
4. बिहार की महिला गजलकार, डॉ. आरती कुमारी, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ, वर्ष –2021, पृष्ठ–115
5. यह समय कुछ खल रहा है, डॉ. भावना, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष –2022, पृष्ठ – 159
6. आरती कुमारी, नया प्रस्थान, बाबासाहेब भीमराव बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, डॉ. सतीश कुमार राय, वर्ष –2022, पृष्ठ –467
7. चाक पर घूमती रही मिट्टी, आराधना प्रसाद, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, वर्ष –2022, पृष्ठ –29
8. आधी आबादी की गजलें, डॉ. विनय कुमार शुक्ल, आरती देवी, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष–2023, पृष्ठ–40
9. वही, पृष्ठ–56
10. वही, पृष्ठ–111
11. वही, पृष्ठ– 168
12. वही, पृष्ठ– 201
13. आसमां एक नया चाहिए, डॉ. पंकज कर्ण, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष–2023, पृष्ठ– 62
14. गजलें बिहार की, विकास, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष–2023, पृष्ठ–154
15. वही, पृष्ठ–179

■

'पिछले पन्नों की औरतें' में स्त्री–विमर्श

नयन मादुले राजमाने *

विमर्श का अर्थ है 'जीवंत बहस', किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबधताओं का समाहार करते हुए उलट–पुलटकर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भो में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना विमर्श है स्त्री पुरुष समानता स्त्री विमर्श का मुख्य मुद्दा है। मृणाल पांडे के अनुसार "स्त्री की तमाम इन बनी बनाई रूढ़िबद्ध छबियों को नकारकर स्त्रियों द्वारा अपनी अस्मिता की सही खोज, शिक्षा और उसके द्वारा आयी जीविकोपार्जन की क्षमता से संभव है"[1] उससे यह स्पष्ट होता है कि, स्त्री अपनी अस्मिता केवल शिक्षित होकर कायम नहीं रख सकती, तो उसे आत्मनिर्भर भी बनना पड़ेगा। आज स्त्री विमर्श ने पितृसत्ताक मुल्यों, दोहरे नैतिक मानदंण्डो, लिंगभेद की राजनीति व सामाजिक संरचना के अन्तर्विरोधों पर उंगली रखी है। बर्बर स्त्री विरोधी व्यवस्था ने सदियों तक स्त्री को कदम–कदम पर रौंदा है। उसके व्यक्तित्व को नकारते हुए उसकी गरिमा का हनन किया है। तो इस नैतिक आचरण की पितृक मर्यादाओं और खोखली लक्ष्मण रेखाओं को स्त्री विमर्श अस्वीकार करता है।

प्रभा खेतान का कहना है "स्त्री लेखन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य स्त्री की विभिन्न भूमिका के बारे में मानव समाज को परिचय देना है। उन अंधेरे कोनो पर भी प्रकाश डालना है,जिसकी पीडा स्त्री ने सदियों झेली है। जरूरत है कि स्त्री अपनी मानवीय गरिमा और अधिकार को समझकर संरचनात्मक, सांस्कृतिक तथा मानविय दृष्टिकोन के मूल तत्वों का विश्लेषन करें। अपने लेखनमें उन तमाम स्त्रियों को शांती दे जो संघर्षरत है तथा जो स्त्री समाज के विकास में सक्रिय है। वे जो समाज की नजरों से दूर कहीं किसी कोने में सुबक रही है, जिनके पासमानवीय गरिमा के नाम पर अपना शरीर है उनको भी शब्द प्रदान करे और साहित्य के विकास में नये दृष्टिकोन तथा वैकल्पित अवधारणाओं को विकसित करें।"[2]

* संपर्क : जी.के.जोशी, (रात्र) वाणिज्य महाविद्यालय, लातूर (महाराष्ट्र) –413512
संपर्क: 8805426071

डॉ. शरद सिंह एक ऐसी साहित्यकार है जो अनछुए विषयों को लेकर लेखन करती है, जिससे पाठक उनके साहित्य के प्रति आकृष्ट हो जाता है। उनके लेखन के केंद्र में श्स्त्रीश है। स्त्री तथा उसकी समस्याएं, उसका सम्मान, उसकी अस्मिता के साथ वह स्त्री पात्रों को चित्रित करती हैं। स्त्रीवादी चेतना का वहन वह अपने साहित्य के द्वारा करती है। उनके साहित्य में स्त्री की समस्या, संघर्ष और समस्याओं को नियति मानकर उसे स्वीकार करने वाली स्त्री के साथ–साथ समस्याओं से मुक्ति के प्रयास तथा सफलता प्राप्त करने वाली स्त्रियों के विषयों पर शरद सिंह लेखनी चलाती है। समस्या के मूल में जाकर कुछ नया सोचती है तथा नई–नई राहें खोलती हैं। डॉ. शरद सिंह हिंदी–साहित्य में एक सशक्त स्त्री–विमर्शकार के रूप में उभर कर सामने आयी है। इनके साहित्य कि एक विशेषता यह भी है की इनका साहित्य कल्पना पर आधारित न होकर यर्थाथवाद से जुड़ा होता है। मानवीय संवेदनाओं और जीवन अनुभवों पर भी इनका साहित्य आधारित है। सुन्दरम शाण्डित्य शरद सिंह के संबंध में लिखते हैं कि, 'शरद सिंह साहित्य के क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर ही नहीं, बल्कि वर्तमान समय की लड़कियों। स्त्रियों की रोल मॉडल भी हैं।'[3]

डॉ शरद सिंह उनके बेस्ट सेलर उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' जो हिंदी साहित्य का टर्निंग प्वाइंट माना गया है। इसमें हाशिए में जी रही उन महिला–ओं के जीवन की गाथा, उनकी सभी विडंबनाओं के साथ सामने रखती है। इस उपन्यास को शरद सिंह रिपोर्ताज शैली में प्रस्तुत किया है, जो रिपोर्ट की तरह न होते हुए कथात्मक वृत्तांत बन पड़ा है। इस उपन्यास की कथावस्तु जीवन से सम्बन्धित समस्या पर केंद्रित चुनी है। इस कारण यह कथानक स्वाभाविक एव यधार्थ प्रतीत होता है। यह उपन्यास अतीत और वर्तमान की कड़ियों को बड़ी ही कलात्मकता से जोड़ते हुए उसे पढ़ने वाले को वहां पहुंचा देता है जहां बेड़नियों के रूप में औरतें आज भी अपने पैरो में घुंघरू बांधने के लिए और अपनी देह का सौदा करने के लिए विवश हैं।

शरद सिंह ने इस उपन्यास में जिन औरतों को पात्र के रूप में सामने रखा है वे सदियों से सामाजिक उपेक्षा, आर्थिक विपन्नता और दैहिक शोषण को अपनी नियति मानकर सहती आ रही है। इस शोधपरक उपन्यास में सामाजिक स्तरों में दबी, कुचली और पिछले पन्नों में छिपी हुई औरतों को उन्होंने पहले पन्ने पर स्थान दिया हैं। तीन भागों और सत्ताइस उपभागों में लिखे गए उपन्यास के स्त्री पात्र महत्वपूर्ण हैं। किसी स्त्री की वेदना को, पीड़ाघ को रिपोर्ताज शैली में पिरोना शरद सिंह की एक अलग विशेषता है। उपन्यास में लेखिका समाज की आन्तरिक और बाह्य परतों को खोलने का प्रयास करती हैं और उसमें सफल भी होती है। समाज के इस कुरूप चेहरे को बड़े बेबाकी से प्रस्तुत करती हैं।

'पिछले पन्ने की औरतें' एक उपन्यास के साथ–साथ यथार्थ का औपन्यासिक

दस्तावेज भी है। इसमें बेड़िया समाज का इतिहास है, बेड़घनियों के त्रासद जीवनका विस्तृत वर्णन है, बेड़नियों के संघर्ष का बड़ी सटीकता से वर्णन है। शरद सिंह जहां एक ओर नए विषयों को कथानकों को अपने उपन्यासों एवं कहानियों का विषय बनाती है। वही उनके कथा साहित्य में धारदार स्त्री विमर्श भी दिखाई देता है। इस उपन्यास के बारे में परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं, 'शरद सिंह का बीहड़ क्षेत्रों में प्रवेश ही इतना महत्वपूर्ण है कि एक बार ही नहीं, कई–कई बार इस कृति का पढ़ना जरुरी जान पड़ेगा। 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास लिखित से अधिक वाचिक इतिहास पर आधारित है। इस बेलगाम कथा को श्लील–अश्लील का आरोप संभव नहीं है। अश्लील दिखता हुआ ज्यादा नैतिक दिख सकता है। भद्रलोक की कुरूपताएं छिपी नहीं रह गई है।'[4]

इस उपन्यास में अनेकों स्त्री पात्र है, जिसमें शामा, गोदाई की नचनारी, बालाबाई जो एक गर्भवती बेड़नी को भी देह– पिपासु पुरुषों ने केवल और केवल स्त्री देह के रूप में देखा। चंदाबाई, फुलवा, रसुबाई ये बेड़नियॉ स्त्री को मात्र देह मानने वाले के द्वारा स्त्री के सम्मान और स्वाभिमान पर चोट पहुँचाने, अत्याचार करने वालों को झेलती हैं। समाज इन्हें अपनी खुशियों को बढ़ाने के लिए पारिवारिक उत्सकों में नाचने के लिए बुलाता तो है लेकिन अपने परिवार में शामिल करने से हिचकता है। इस उपन्यास में चंदाबेन बेड़िया समाज के लिए अपना जीवन समर्पित करते हुए 'बेड़नी पथरिया' गाँव में सत्य शोधन आश्रम की स्थापना कर बेड़िया समाज की महिलाओं का जीवन बदलना चाहती है।

फुलवा और डेलन का विवाह तो हो जाता है, लेकिन शुरुआत के दिन अच्छे गुजरे लेकिन आगे जाकर वह भी बेड़िया पुरुषों जैसा आलसी होता चला गया। और गृहस्थी फुलवा के कंधों पर आ गई। फुलवा किसी अन्य पुरुष के साथ रहती है तो उसके अंदर का पुरुष जाग उठता और वह उसे मारपीट, गाली–गलोच पर आ जाता। तो फुलवा भी दहाड़ मारकर कहती, 'चरिन्तर का इतना ही खयाल था तो ब्याहकर ले चलते अपने गाँव...वहाँ जैसे रहने को कहते, वैसे रहती। यहाँ तो पेट पालने के लिए दूसरों का बिस्तर गर्म करना ही पड़ता है...बेड़नी के मरद बने हो तो बेड़िया जैसे रहो, ठकुरायसी न दिखाओ।'[5]

बैड़नियों के साथ–साथ लेखिका चंपा जैसे सामाजिक कार्यकर्ता का भी चित्रण करती है। चंपा विनोबा भावे, के 'स्वराज' कार्यक्रमों मे तथा सुंदरलाल बहुगुणा के 'चिपको आंदोलन' जैसे कार्यक्रमों में भाग ले रही तो घर से बाहर अकेली थी तो उसके माँ के मन में अनेकों सवाल उठे। यह सवाल जब वह चंपा से पूछती है तो वह कहती है, 'मां... पहली बात तो यह कि मेरा शील सुरक्षित है और दूसरी बात ये कि अगर मेरा शील भंग हो जाएगा तो उससे कौन–सा पहाड़ टूट पड़ेगा?'[6] आगे जाकर वह यह भी कहती है, 'जब तक औरत स्वयं कमजोर न बने तब तक कोई पुरुष उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।'

श्यामा अपनी बेटी गुड्डी को इस दलदल से बचाना चाहती है और वह उसकी शादी कर देती है। कुछ दिन अच्छे बितते है लेकिन आगे जाकर उसे बेड़नी की बेटी होने से लेकर भद्दी–भद्दी गालियाँ दी जाती है तथा मार पीट भी होती है, इतना ही नहीं तो उसका पति खिलान उसे 'ब्लू फिल्म' दिखाकर धंधा करवाना चाहता है। वह कहता है, 'तू क्यों समझती है कि तुझे अपनी बीवी बनाए रखने को तुझ से शादी किया हे मैंने? अरे, चल हट! तुझे तो मैं इसलिए ब्याहकर लाया हूँ कि तुझसे धंधा करा सकूँ। इसलिए तो मैं तेरे को रोज फिल्में दिखाता हूँ कि तू ग्राहकों को खुश करने के नए–नए लटके – झटके सीख ले... मगर तू तो लगता है कि मेरे हाथों अपना गला दबवाए बिना नहीं मानेगी।'[7] इससे भी गुड्डी बाहर निकला चाहती है, प्रयास भी करती है। गुड्डी के निश्चय को देखकर लगता है नचनारी, रसूबाई, चंदा, फुलवा और श्यामा जैसी औरतों ने जिस आशा की लौ को अपने मन में संजोया था वह अभी बुझी नहीं है। गुड्डी के रूप में अपने बेड़िया समुदाय की औरतों को शोषण के पिछले पन्ने से निकालकर विकास की मुख्यधारा के अगले पन्ने पर ले आए...

अंततः हम यह कह सकते है कि विवेच्य उपन्यास में स्त्री शोषण के कारण उत्पन्न असंतोष और आक्रोश भी है। सामाजिक रूढ़ियों, बधनों एवं देह के स्तर पर स्त्री मुक्ति की कामना भी है। साथ ही साथ स्त्री सशक्तिकरण भी हैं। आत्मविश्वास के साथ दृढ संकल्प कर पीड़ित जिंदगी से बाहर निकलने के लिए छटपटाहट है, प्रयास भी है। समाज के दोहरेपन को चुनौती देती गुड्डी, श्यामा तथा अन्य पात्रों को रेखांकित कर यह उपन्यास स्त्री विमर्श की कई परतों को खोलता ही नहीं तो उघाड़ने का काम करता हैं।

संदर्भ :

1. मृणाल पांडे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृ. सं. 17
2. प्रभा खेतान – प्रथम दशक के महिला लेखन में स्त्री–विमर्श, सम्पादक डॉ. मृदुला वर्मा, विद्या प्रकाशन, पृ.सं.24
3. अस्थाना सर्वेश, सम्पादक शाण्डिल्य सुन्दरम, (युवा साहित्यकार शरद सिंह के साथ साक्षात्कार) संस्कार पत्रिका, 25 अगस्त 2014,पृ.सं.–61
4. परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य सृजन, नवम्बर– दिसम्बर, 2009
5. वही पृ. सं. 61
6. वहीं पृ. सं 131
7. वहीं पृ.सं. 299

■

अस्मिता चिंतन

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में नारी जीवन

राजश्री ❖

हिंदी साहित्य की प्रख्यात कथा लेखिका उषा प्रियंवदा का साहित्य नारी जीवन की त्रासद कथा है। वह नारी जीवन के कटु यथार्थ पर बहुत ही जीवंतता के साथ अपनी कलम चलाई हैं। नारी जीवन के अनचाहे प्राप्ति की पीड़ा और उनके अधूरेपन को जिस तरह से उषा प्रियंवदा ने उकेरा है, उस तरह शायद ही कोई लेखक कर पाए। उनके यथार्थ चित्रण इतने सजीव लगते हैं कि कहीं से भी बनावटपन नहीं झलकता। नारी जीवन का एकदम सटीक चित्रण उनके उपन्यासों में है। नारी मन के भावों को शब्द देने में वे अद्वितीय स्थान रखती हैं। देश विदेश का अनुभव होने के कारण सामाजीक तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में नारी के बदलते, बिगड़ते एवं संवरते रूपों से वे पूर्णतया जुड़ी हुई हैं। प्रत्येक युग में नारी का शोषण होता रहा है। उन्होनें नारी की पीड़ा को पहचाना। उसे अनुभव किया है और उसपर अपनी कलम चलाई। मध्यवर्गीय नारी की भावनाओं को वाणी देने का प्रयास किया है। उषा प्रियंवदा ने नारी जीवन की विसंगतियों, नई परिस्थितियों तथा उलझनपूर्ण मन स्थितियों में नारी के अनेकों समस्याओं को लेखिका ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। आधुनिक जीवन की विवशता, अजनबीपन, संत्रास अकेलेपन की छटपटाहट को बखूबी अपने उपन्यासों मे अंकित किया है। आज स्त्री की बदलती हुई मान्यताओं विश्वास और परिस्थितियों के बदलाव को लेखिका ने अपनी कलम के जादूई ताकत का आधार बनाया है।

उषा जी ने अत्याधुनिक असमान्य नारी को समझने और समझाने का प्रत्यन किया है। अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता की खोज में नारी आज भी भटक रही है। उषा जी के कथा साहित्य में कभी भारतीय पृष्ठभूमि होती है कभी विदेशी पृष्ठभूमि। इसका कारण यह है कि देश और विदेश दोनों जगह उनके कार्य क्षेत्र रहे हैं। इनकी रचनाओं मे भारतीय परिवेश का चित्रण है, वहीं पाश्चात्य परिवेश का भी चित्रण किया गया है। इन्हीं तथ्यों के कारण यथार्थ के साथ आधुनिकता का बोध स्वतरूही हुआ है। उषा जी की रचनाओं में कल्पना को बहुत ही कम स्थान मिला है। उन्होंने अपनी रचनाओं मे समाज के सच्चाई को उकेरा है।

❖ संपर्क : शोधार्थी (हिंदी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), ग्राम– कातर, पोस्ट– हसन बाजार, थाना– पीरो, जिला– भोजपुर–802204, मो.– 8294842809

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उषा प्रियंवदा का पहला बहुचर्चित उपन्यास है। जिसमें लेखिका ने अपनी अनोखी और कलात्मक सूझबुझ से एक आधुनिक भारतीय शिक्षित, जिम्मेदार नारी का चित्रण किया है। साथ ही उनके ऊब, घुटन, तनाव का तीखा एहसास हमे इस उपन्यास में देखने को मिलता है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र आत्मनिर्भर होकर जहाँ न सिर्फ अपना गुजारा स्वयं कर रही है बल्कि पूरे परिवार का भरण पोषण भी कर रही है।

उपन्यास की नायिका है सुषमा जो अजनबीपन, अकेलेपन के कारण अपनी दारुण नियति को बदलने में कामयाब नहीं है। अपने जीवन में आए हुए उलझन को सुलझाने में वह असमर्थ है वैसे भी मानव जीवन की यह विडंबना है कि जो कुछ हम करना नहीं चाहते वहीं करने के लिए विवश होना पड़ता है। सुषमा छात्रावास के 'पचपन खंभे लाल दीवारों' में कैद है । यहाँ रहकर उसे अनेको तीखे अहसासों से गुजरना पड़ता हैं। लेकीन फिर भी वह मुक्त नहीं हो पाती शायद होना ही नहीं चाहती। प्रस्तुत उपन्यास आत्मनिर्भर आधुनिक भारतीय नारी की इसी मार्मिक वेदना को दर्शाती है।

उषा जी के उपन्यासो में व्यक्त नारी समस्याएँ जैसे– पारिवारिक समस्या, सामाजिक समस्या, विवाह सम्बन्धी समस्या, अविवाह की समस्या, प्रेमगत समस्या, नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की समस्या, आर्थिक समस्या, कामकाजी नारी की समस्या, उब, घूटन आदि की समस्याएँ प्रमुख है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास का आरंभ ही सुषमा के अपने अतीत के अवलोकन से होता है। "उसको लगता है कि नील आकर सिरहाने खड़ा हो गया है, फिर उसने झुककर, धीरे से उसके बाल छुए हैं। सुषमा चौक कर उठ बैठी चारों ओर धूप अंधेरा था उसने कांपते हुए कंठ से पुकारा...'नील'[2] सुषमा देखती है चारों तरफ घोर अंधेरा है। भयावह अंधकार को देखकर सुषमा को अपना अंधकारमय जीवन याद आता है सुषमा को लगता है कि इसके प्राण और रात्रि की आत्मा में घना संबंध है। अंधकार को देख कर सुषमा अपने भोगे हुए दुरूखमय अतीत मे खो जाती है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की तत्कालिक व्यापक लोकप्रियता का कारण यह था कि उसका कथानक मध्यवर्ग की एक ऐसी शिक्षित युवती के चरित्र पर केंद्रित है जो दिल्ली के एक महाविद्यालय मे प्राध्यापिका है, जो कि अपने परिवार की एक मात्र आय की साधन है बेटी की आय को साधन मान कर माँ–बाप अपनी सारी जिम्मेदारियों का बोझ उस पर डाल देते हैं। सुषमा अपने परिवार की आर्थिक परेशानी को दूर करने के लिए शादी नहीं करती है। सुशिक्षित सुषमा नौकरी पेशे से युक्त होते हुए भी रूढ़िग्रस्त समाज और नैतिक वर्जनाओ के साथ परिवार की जिम्मेवारियों को निभाती हुई अविवाहित रह जाती हैं। माता, पिता, भाई, बहन सबकी इच्छाओ को पूर्ति के लिए नौकरी करती हुई तिल–तिल जल कर अपने सामाजिक दायित्व का पालन करते करते कब उम्र के एक ऐसे मोड़

पर आ खड़ी हो जाती हैं जहाँ से उसे सब धुंधला दिखता है और सुषमा इसको अपनी नियति मान लेती है। वह इन सब सम्बन्धो से इतना उब जाती है कि सारे रिश्ते उसे काटने को दौड़ते है। "यह कॉलेज यह काम भी मेरी डेस्टिनी है,मुझे यही छोड़ दो"।[2] नील बहुत देर तक चुप रहा। 'तो फिर मेरे लिए क्या कहती हो? तुम चाहती हो कि मे जीवन–भर अंधेरे में भटकता रहूँ?"[3] अपने ऐसे प्रेमी को भी वह यह कह कर निष्कासित करने पर विवश हो जाती है– "तुम जाओ नील। तुम पास होते हो तो मै कुछ भी सोच नही पाती।तुम निकट आ जाते हो तो मेरे सारे निश्चय कापने लगते है... तुम जाओ!"[4] ना चाहते हुए भी सुषमा को नील को छोड़ना पड़ता हैं। सुषमा जैसी आज भी ना जाने कितनी नारियों के जीवन में यह आज कसमकश चलता रहता है। नील कहता है– "ठीक है, तुम यही रहो, इन पचपन खम्भो में बंदी होकर।"[5]

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खंबे लाल दीवारें' की नायिका सुषमा उब, त्रासदी अपनी ही वर्जनाओं में कैद संकुचित है, परिस्थितियों में प्रताड़ित विवाह सुख से वंचित युवति के अंतरद्वन्द् को रुपायीत करता है। वहीं दूसरे उपन्यास "रुकोगी नहीं राधिका" की नायिका राधिका स्वतंत्र बोल्ड चरित्र है। लेखिका ने एक ऐसी नारी की अवधारणा की है जो आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता स्थापित करने के लिए अपने अस्तित्व को भी नस्ट कर रही है।

"रुकोगी नही राधिका" के माध्यम से एक आत्माविश्लेषण का स्वर हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है समाज में एक अकेली स्त्री की त्रासद स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। 1968 के दशक में समाज जिस ढर्रे में था, आज भी वैसे ही स्थिति स्त्री की बनी हुई है। अकेले जीवन की पीड़ा और परिवार के साथ रहने की कड़वाहट दोनों ही स्त्री के लिए कशमकश स्थिति को चित्रित करती है। स्त्री विमर्श के आलोक में रुकोगी नहीं राधिका को दो संदर्भ में देखा जा सकता है एक प्रवासी जीवन में स्त्री का संघर्ष या उसकी स्थिति तथा दूसरी भारतीय जीवन में लौटने बाद भी विभेद पूर्ण स्थिति। रुकोगी नहीं राधिका की राधिका एक सुखी परिवार की एकमात्र बेटी है उसके पिता, भाई, भाभी सभी उसे प्यार करते हैं माता के मरने के बाद वह पिता के अधिक निकट हो गई है। किंतु पिता की शारीरिक आवश्यकता विद्या से विवाह करके पूरी होती है विद्या राधिका के पिता से लगभग 20 वर्ष छोटी है। यह बात राधिका को नहीं अच्छी लगती कि उसके पिता दूसरा विवाह कर लिए और यह बात राधिका को हर वक्त परेशान करती रहतीं है। और यह घाव राधिका के मन मे जिंदगी भर के लिए अपने पापा के घर मे ही उसे अजनबी बनकर अकेलेपन की जिंदगी जीने के लिए मजबूर कर देता हैं। राधिका एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशपत है। कथा का प्रारंभ राधिका के विदेश लौटने से होता है जहाँ एयरपोर्ट पर आशा भरी निगाहों से परिजनों को ढूंढ रही है और विदेश से लौटने के बाद पहला दिन वह अजनबी अक्षय के साथ गुजराती है औपचारिकता के साथ अक्षय उसका अच्छा मित्र बन जाता है घर वापस लौटने

पर ज्ञात होता विमाता विद्या और पिता अलग–अलग रह रहे हैं। अपने घर में भी वह अजीब सी एकाकीपन से घिर जाती हैं।राधिका डैन नामक पत्रकार से परिचय होने के बाद वह भी विदेश जाने के लिए प्रेरित हो जाती है। डैनियल पीटरसन के सहायक के रूप मे वह शिकागो चली गई। वहा वह पढ़ना भी चाहती थी।और पिता को एक त्रास देना चाहती थी। डैनियल के साथ एक वर्ष वह एक फ्लैट में रही परंतु डैन संबंध से संतुष्ट नहीं हो पाया। कारण यह था कि राधिका प्रत्येक पुरुष में पिता का प्रतिबिंब ढूंढ रही थी और डैन राधिका में पत्नी के चले जाने के कड़वाहट धोना चाहता था। तब डैन कहता है– "तुम्हें नई तरह से एडजस्ट करने में समय लगेगा मैं जानता हूँ मुझसे छुटने का दुख भी। तुममे युवावस्था की लक्ष्य है और जानता हूँ इस दुख पर विजय पा लोगी। मैं तुम्हें रिजेक्ट नहीं कर रहा हूँ, मुक्त कर रहा हूँ। तुम्हें अपने साथ चलने के लिए इस कारण नहीं कहता, क्योंकि तुमने कभी एक क्षण के लिए भी प्यार नही किया। राधिका, तुम मुझमें अपना पिता ढूंढती रहती पर, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आई थी पर मैंने तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नहीं होना चाहा। मैं तो स्वतंत्र व्यक्तित्व हूँ।"[6] "कुछ रुक कर और मैं तुममे अपना खोया यौवन ढूंढ रहा था। अपनी पत्नी के छोड़ कर चले जाने की कड़वाहट धोना चाहता था, पर शायद हम दोनों सफल नहीं।"[7]

पिता के घर जाने के बाद राधिका को वो अपनापन नहीं मिलता इससे हताश हो कर राधिका दिल्ली वापस आती हैं। जहाँ वह शंकर के मकान मे किराये पर रहती है। जहाँ राधिका को मनीष मिलता हैं। मनीष में यौवन सुलभ आकर्षण है मनीष राधिका के जीवन में अंत तक रहता है, वह विवाह का प्रस्ताव राधिका को देता है, परन्तु राधिका इंकार कर देती है। अक्षय भी राधिका को विवाह का प्रस्ताव देता है परन्तु वहाँ पर भी वह इंकार कर देती है। इसी बिच राधिका का बड़ा भाई राधिका को लखनऊ ले कर आता है जहाँ पिता का फोन आता है– की हालात खराब और, इलाहाबाद पहुंचने पर पता चलता है कि विधा की मृत्यु हो चुकी है। विद्या समझदार अध्यापिका थी परंतु घुटन, अभाव और समाधाहिन् जीवन में शायद उसने मृत्यु को गले लागाना सही समझा। पिता राधिका को रुकने के लिए कहते हैं। परंतु राधिका वहाँ रुकना स्वीकार नहीं करती है और वहाँ से मनीष के साथ भ्रमण के लिए निकल जाती है। राधिका का व्यक्तित्व स्वतंत्र व्यक्तित्व है जहाँ अस्तित्व के खोज में भटक रही है ।

'शेष यात्रा' उपन्यास एक ऐसी पति परित्यक्ता नारी की कथा है जो तलाक के बाद अपने विश्वास लगन परिश्रम से अपने व्यक्तित्व का सृजन करती है और अर्थपूर्ण जीवन बिताती है। 'शेष यात्रा' उपन्यास आज के वर्तमान दाम्पत्य जीवन का परिचायक है अनु के माध्यम से लेखिका ने नारी जीवन के यर्थात पर प्रकाश डाला है। डरी–सहमी भारतीय समाज की एक साधारण सी युवती विदेश में रहने वाले नवयुवक डॉक्टर प्रणव कुमार के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेती

है। विवाह के पश्चात वह वैवाहिक जीवन मे विदेशी सुख सुविधा विदेशी ठाठ बाट का उपभोग करती हुई अपने ननिहाल को भी भूल जाती है सब कुछ उसे स्वप्न जैसा लगता है। कुछ समय बाद प्रणव का मन विवाह से उब जाता है। विवाहिक बंधन के करण अचानक प्रणव के मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है। प्रवण से तलाक की बात सुन अनु रोती बिलखती है वह हर हाल मे प्रणव के साथ रहना चाहती है। तब प्रणव कहता है।

"मैं चाहता हूं कि तुम मुझ पर इतनी निर्भर ना रहो मुझसे अलग अपना व्यक्तित्व बनाओ आत्मनिर्भर बानो तब तो तू बच्ची थी एकदम अबोध अब तो यहां चार–पांच साल से हो। वह बचपना क्यूट नही लगता"8 यह सुनकर अनु को झटका लगता है अपने तनाव को कम करने के लिए वह शराब का सहारा लेती है अनु पहली बार शराब का ग्लास उठती है शराब पीने के बाद अनु रोने लगती है उसके मन का सरा दुख आंसू के रास्ते निकलने लगता है। प्रणव उससे कहता है। "आज पीने का शौक चढ़ा था लोग पीकर खुश होते हैं आप रो रही है।"[9] तब अनु कहती है– "तुम नहीं समझोगे मुझे लग रहा है जैसे मेरा सतलड़ा हर खो गया है।"[10]

इतना सब होने के बाद अनु हताश निराश होकर तलाक की बात को शांत मन से स्वीकार कर लेती है। विदेश में उसे भारतीय सखी दिव्या मिलती है। उन लोगों का साथ पा अनु कुछ संभाल जाती है और अपने परिस्थितियों का सामना करते हुए अथक परिश्रम से अनु डॉक्टर बन जाती हैं। बाद में दिव्या का भाई दीपान्कर को अपना जीवनसाथी बना लेती है। अपने जीवन के 10 वर्ष पूर्णतरू परिवर्तित हो जाती है उसके रहन–सहन ,खानपान आचार, व्यवहार क्षेत्र में नवीनता परिलक्षित होती है। 10 वर्ष बाद पूर्व पति से मिलना वह स्वीकार कर लेती है प्रणव की मनोदसा को सुनकर कुछ समय के लिए विचलित हो जाती है परंतु पुनरू सँभल जाती है और प्रणव से हमेशा के लिए दूर चली जाती हैं प्रणव भी अनु के जीवन से दूर चला जाता है। अब उपन्यास में अनु का एक नया रूप हमारे सामने आता है एक पूर्णत आत्मविश्वासी आत्मनिर्भर नारी के रूप में और दस साल बाद प्रणव टूटा हुआ बिखरा हुआ रोग ग्रस्त हमें देखना को मिलता है अनु सवरती है प्रणव बिखरता है।

अनु के माध्यम से उषा प्रियंवदा ने एक स्त्री में संघर्षशील चेतना को विकसित होते हुए दिखायी है पति के संबल और सानिध्य से दूर रहकर भी स्त्रियाँ नई जिंदगी का सकती है। शेष यात्रा की अनु बदलते समय और सोच की प्रतिबिंब करती है। आज के इस दौर में तलाकशुदा और पति द्वारा उपेक्षित लड़कियाँ किस तरह अपना स्वयं ढूंढने लगी है, इसका सफल चित्रण उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास मे किया है।"

'अन्तर्वशी' उपन्यास में उषा प्रियम्वदा ने उन तमाम भारतीयों का उल्लेख किया है जो विदेश में रह गये है। जो बेहतर जीवन की तलाश मे प्रवासी होते

जा रहे है। "विदेश में बसे युवकों से मध्यवर्गीये परिवार की कन्याओं का विवाह सौभाग्य समझा जाता है और फिर शुरू होता है संघर्ष और मोह भंग का अटूट सिलसिला।"[11] उपन्यास की नायिका जो बनारस की है जिसका नाम वनश्री था अब अमेरिका में वाना हो गई है। एक ऐसे समाज के बीच रह रही है जहां सभी लोग एक होड़ में पागल की तरह दौड़ में है। वाना भी इस दौड़ में अपनी गाड़ी चला रही है पति के असमर्थताओं का एहसास उसे पति के प्रती संवेदनशील बना देता है । जिसकी परिणीति संबंधों की टकराहट में होती है। इसके अलावा वाना के चारों ओर एक दुनिया और भी है जिसमें अंजी, राहुल, सुबोध भी है सब एक दूसरे से भिन्न अपने–अपने रास्ते को तलाशते हुए सभी राहुल की तरह सफलता की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ पाते और नहीं शिवेश की तरह टकराहट कारुनिक अंत को प्राप्त होते हैं।

उपन्यास में अमेरिका में बसे शिवेश, वाना और राहुल के आपसे संबंधों की कहानी बड़ी ही स्वाभाविक स्थितियों से बुनी हैं। अप्रवासी भारतीयों के जीवन संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा व्यक्तिगत संबंधों का बदलते जाना है। वह उपन्यास अमेरिका वासी पात्रों और परिवेश की जिंदगी को उनके आपसी से संबंधों और संघर्षों को गहरी सवेदनशीलता से युक्त रचनाओं की शृंखला में यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप मे अपना स्थान रखता है।

संदर्भ सूची

1. 'पचपन खम्भे लाल दीवारे', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–7
2. वहीं, पृष्ठ संख्या–135
3. वहीं, पृष्ठ संख्या– 135
4. वहीं, पृष्ठ संख्या– 135
5. वहीं, पृष्ठ संख्या– 136
6. रुकेगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 36
7. वहीं, पृष्ठ संख्या– 36
8. शेषयात्रा, उषा प्रियम्बदा, पृष्ठ संख्या– 48
9. वहीं, पृष्ठ संख्या– 49
10. वहीं, पृष्ठ संख्या– 49
11. प्रियम्बदा उषा, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस, भूमिका, पृष्ठ संख्या– 9

■

शिवानी के उपन्यासों में

शहरी–ग्रामीण स्त्री पात्रों के जीवनमूल्य का तुलनात्मक अध्ययन

सलमान ❖

शिवानी के उपन्यास हिंदी साहित्य में नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को सजीव और संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन की स्त्रियों का जीवंत चित्रण मिलता है, जिनमें उनके सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश और जीवन–मूल्यों को गहराई से दर्शाया गया है। शिवानी ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी स्त्रियों के संघर्ष, आकांक्षाओं और मानसिक जटिलताओं को गंभीरता से उकेरा है। इस शोध आलेख में शिवानी के उपन्यास 'मायापुरी' को संदर्भित करके मुख्य शहरी और ग्रामीण स्त्री पात्रों को केंद्र में रखकर उनके जीवन मूल्य और संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । शिवानी के इस उपन्यास में ग्रामीण स्त्री पात्र जहां पारंपरिक, श्रमशील और परिवार के प्रति समर्पितरहती हैं वहीं शहरी स्त्री पात्रमहत्वाकांक्षी, भौतिक सुख–सुविधावादी और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के पक्षधर रहती हैं । शिवानी ने इन दोनों जीवन शैलियों के बीच के संघर्ष को सजीव ढंग से चित्रित किया है, जिससे समाज में स्त्री जीवन के विविध आयाम और मूल्यगत भिन्नताएँ स्पष्ट होती हैं।

हिंदी साहित्य में शिवानी का नाम उन लेखिकाओं में अग्रणी है, जिन्होंने नारी जीवन के विभिन्न आयामों को अत्यंत सजीव और सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी दोनों ही प्रकार की स्त्रियों के जीवन का गहन चित्रण मिलता है, जिसमें उनके सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश, जीवन मूल्य, और संघर्षों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। शिवानी ने अपने लेखन में न केवल ग्रामीण स्त्री के संघर्षों और उसकी जटिलताओं को उजागर किया है, बल्कि शहरी जीवन में रहने वाली स्त्रियों की आकांक्षाओं और उनकी मानसिक जटिलताओं को भी गंभीरता से चित्रित किया है।शिवानी के उपन्यासों के स्त्री चरित्रों के बारे में सुधा श्रीवास्तव लिखती हैं –"शिवानी का कथा साहित्य नारी चित्रण पर ही आधारित है। नारी के जितने विविध रूपों का चित्रण शिवानी ने किया है। वह हिन्दी साहित्य में अन्यत्र सुलभ होना आसान

❖ संपर्क : शोधार्थी : हिन्दी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय तमिलनाडु, तिरुवारूर, 610005
मो. – 8285166282

नहीं। नारी के रूप, गुण, स्वभाव, के विविध चित्रों को तो उन्होंने रेखांकित किया ही है, उसका मानसिक ऊहापोह, द्वन्द्व, आकांक्षाएँ तथा अनुभूतियाँ भी उनकी कथाओं में अपना स्पंदन सुनती हैं । नारी को गहराई से समझने तथा उसके रूपों को शब्दबद्ध करने में शिवानी अत्यंत सफल हुई हैं ।" शिवानी की स्त्रियों में इतनी विविधता है कि वह सब हमारे आसपास की स्त्रियों को प्रतिबिंबित करती हुई दिखती हैं।

ग्रामीण और शहरी जीवन, दोनों ही अपने–अपने ढंग से स्त्रियों के जीवन मूल्य और दृष्टिकोण को आकार देते हैं। जहाँ ग्रामीण स्त्रियाँ पारंपरिक समाज और मान्यताओं से गहराई से जुड़ी होती हैं, वहीं शहरी स्त्रियाँ आधुनिकता, स्वतंत्रता, और व्यक्तिगत पहचान की खोज में संघर्ष करती दिखती हैं। ग्रामीण स्त्री के जीवन में परिवार, परंपरा, और सामूहिकता का महत्त्व होता है, जबकि शहरी स्त्रियाँ अधिकतर स्वतंत्रता और व्यक्तिगत उपलब्धियों के प्रति जागरूक होती हैं। इन दोनों प्रकार की स्त्रियाँ अपनी–अपनी परिस्थितियों में अपने जीवन मूल्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं।शिवानी के उपन्यासों में इन दोनों स्त्री पात्रों के जीवन मूल्य, उनकी सोच, और उनके संघर्षों का चित्रण मिलता है । इसका अध्ययन करने पर दिखता है कि भारतीय समाज में स्त्री जीवन किस प्रकार ग्रामीण और शहरी परिवेश के आधार पर अलग–अलग दिशा में विकसित होता है।

शिवानी के उपन्यास 'मायापुरी' में ग्रामीण और शहरी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र न केवल अपने परिवेश से गहरे जुड़े हैं, बल्कि उनके चारित्रिक गुण भी उनके सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे को प्रतिबिंबित करते हैं। ग्रामीण और शहरी जीवन के इस विभाजन को शिवानी ने बेहद सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है, जहाँ प्रत्येक पात्र की अपनी विशिष्टता, विशेषताएँ और कमजोरियाँ उभरकर सामने आती हैं।दुर्गा, शोभा, और पधान दादी जैसे पात्र ग्रामीण स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन पात्रों में कोमल भावनाएँ, निश्छलता और सरलता की प्रमुखता दिखती है। उनका जीवन प्रकृति के साथ अधिक सामंजस्यपूर्ण है और वे सामाजिक संबंधों और पारंपरिक मूल्यों को गहराई से समझती हैं। उनके जीवन में सादगी और अपनापन है, और ये स्त्रियाँ अधिकतर परिस्थितियों में अपने दिल की सुनती हैं। इनका जीवन संघर्षपूर्ण होते हुए भी ठोस जड़ों पर आधारित होता है, जहाँ रिश्तों की गहराई और सामाजिक बंधनों की अहमियत होती है। उनकी कोरी भावुकता और निश्छलता उन्हें समाज में एक विशेष स्थान देती है, जिसमें वे अपने आदर्शों को महत्व देती हैं।दूसरी ओर, गोदावरी, मंजरी, और सविता जैसी शहरी स्त्रियाँ बौद्धिकता, प्रपंच और दिखावे का प्रतिनिधित्व करती हैं। शहरी जीवन के दबाव और प्रतिस्पर्धा ने इनके व्यक्तित्व में चालाकी और एक जटिलता का समावेश कर दिया है। ये पात्र अपने हितों की रक्षा के लिए अधिक तर्कशील और कभी–कभी छलपूर्ण होते हैं। शहरी स्त्रियों का जीवन अक्सर

दिखावे, सामाजिक प्रतिष्ठा, और बाहरी सुंदरता के प्रति अधिक ध्यान देता है, जहाँ वास्तविक भावनाएँ कहीं पीछे छूट जाती हैं। वे बुद्धिजीवी होने के बावजूद भी अपने जीवन में आत्मिक शांति और संतोष की कमी का अनुभव करती हैं।

उपन्यास में शोभा की माँ 'दुर्गा' और मंजरी की माँ 'गोदावरी' के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो पाएंगे की दोनों के क्षेत्रीय परिवेश ग्रामीण और शहरी के कारण उनके जीवन–बोध, मूल्य, विश्वास, परंपरा और संस्कारों में अंतर आता है। "दोनों का मायका एक ही ग्राम में हैं, गोदावरी का विवाह एक सम्भ्रांत परिवार में हुआ, उसके पति इंजीनियर हैं दुर्गा का भी विवाह एक उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मण–पुत्र से ही हुआ, पर पति क्लर्क थे।" दोनों की आर्थिक स्थिति के कारण भी दोनों के जीवन–बोध और शैली में परिवर्तन आता है। शोभा की माँ अत्यंत निरीह स्वभाव की है। पति की मृत्यु के पश्चात वह अपने गहने–वहने बेचकर बैल खरीदती है और खेती के माध्यम से अपने परिवार का लालन–पालन करती है । उसके लिए अपनी बेटी की शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। "वह जानती थी कि एम. ए. न करने से पुत्री के हृदय में मन ही मन एक संघर्ष चल रहा है।" दुर्गा अपने बच्चे के भविष्य के लिए चिंतित रहती थी इसलिए वह चाहती थी की शोभा शहर जाकर अपनी पढ़ाई पूरी करे। इसलिए वह शोभा को जबरदस्ती पढ़ने के लिए शहर भेजती है वह कहती है – "देख तो, रमिया, इसका पागलपन! इतनी बड़ी हो गई है और अभी भी मुझे छोड़कर कहीं जाने में यह हाल है! अरे पगली, मन न लगे लौट आना। पर शहर में रहने वाली, स्कूल–कॉलेज में पढ़ने वाली लड़की का इस गाँव में क्या हमेशा मन लग सकता है? क्योंकि गाँव के परिवेश में रहकर शोभा के चरित्र में विकास नहीं होता।" वहीं दूसरी ओर 'गोदावरी' का चरित्र एक महत्वकांक्षी स्त्री का चरित्र है। उसके लिए अपने बेटे–बेटी की खुशी बाद में पहले अपनी महत्वकांक्षा, इज्जत और प्रतिष्ठा की चिंता रहती है । सतीश जब अपनी माँ 'गोदावरी' से 'सविता' से विवाह करने के लिए मना करने के बारे में अपनी माँ से बात करता है तब गोदावरी बेटे की चिंता करे बगैर कहती है –"बेटा राम–राम! क्या कह रहा है तू? मेरे सामने तो यह मजाक कर गया, पिता के सामने स्वप्न में भी ऐसे शब्द मत निकालना। जिनकी कृपा से हमारा दस हजार का कर्जा धीरे–धीरे चूक गया, उनसे ऐसे विश्वासघात का ध्यान भी कैसे आया तुझे? मैं इसी पलंग पर प्राण त्याग दूँगी।" गोदावरी की महत्वकांक्षा के पीछे भावी समधी है जो कि भारत के महिमामय भावी राजदूत है। उन्हीं की बदौलत गोदावरी विशाल भवन में ऐशों आराम की जिंदगी काट रही है। "आज उसका वैभव, उसकी विशाल अट्टालिका, पुत्र–पुत्री की शिक्षा दृ सब ही तो तिवारीजी के प्रसादस्वरूप हैं। नहीं तो आज फिर पुरातन कर्जे में गोते लगाता उसका परिवार दम तोड़ता होता। जब पहले तिवारीजी के यहाँ से संबंध आया था तो गोदावरी को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगुआ तेली! एक सामान्य इंजीनियर का पुत्र सतीश और दूसरे भारत के महिमामय भावी राजदूत!" गोदावरी मानती

है कि तिवारीजी के साथ यह संबंध उसके परिवार की सामाजिक स्थिति को बचाए रखने का साधन है, और इस महत्वकांक्षा के चलते वह अपने बेटे की भावनाओं की उपेक्षा करती है।

शोभा और सविता के चरित्र को देखें तो पाएंगे कि शोभा एक ग्रामीण स्त्री है जिसमें सौम्यता, सहजता और पारंपरिकता और सहृदयता है। वहीं सविता जो की शहरी अत्यानुधिक स्त्री है उसके चरित्र में उच्छशृंखलिता है। वह अनुशासनहीन, अशालीन एवं अमर्यादित है जो सामाजिक नियमों और नैतिकताओं का पालन नहीं करती है। शोभा एक निम्नवर्गीय श्रमशील ग्रामीण स्त्री है जो पढ़ाई लिखाई के साथ–साथ घर–गृहस्थी को भी अच्छी तरह संभालती है। शोभा के लिए शिक्षा सिर्फ शिक्षा नहीं है उसके लिए ये अपने परिवार के सपने को पूरा करने की कुंजी है, इसलिए वह स्वप्न सजाती है– "वह एम. ए. पास कर किसी स्कूल में अध्यापिका हो गई है। माँ को मनीऑर्डर भेज रही है। भाइयों के पास साफ–सुथरे कपड़े हैं, चमकीली जूते हैं। अम्माँ ने बर्तन मलने के लिए एक छोटा–सा छोकरा रख लिया है । हाथों में जो बर्तन मलने से काली–काली दरारें पड़ गई थीं, वे फिर भर गई हैं।" शोभा के जीवन मूल्य सामाजिक हैं जबकि वही सविता के जीवन मूल्य व्यक्तिगत हैं। सविता का जीवन शराब–सिगरेट पीना–पिलाना, जीमखाना और क्लबों में जाना इत्यादि तक ही सीमित था उसके जीवन का कोई सामाजिक उपजीव्य नहीं था। सविता की माता सविता के चरित्र को व्याख्यायित करती हुई लिखती है –"उसकी रँगी–पुती आकृति उसे तीर–सी चुभती, उसकी दिन–रात की सिगरेटें उसके हृदय को दग्ध करतीं पर उसमें कुछ कहने का साहस नहीं रहा था। बड़ी रात्रि तक पुत्री के कमरे में यूनिवर्सिटी के छात्र, अध्यापक, मित्रवर्ग का जमघट रहता । हा–हा, ही–ही, हो–हो ! सिगरेट का धुआँ दीवार भेदकर स्पष्ट उसके कमरे में चला आता और वह खीझकर सिर पीट लेती।" इस उपन्यास में सविता आधुनिक जीवनशैली और पश्चिमी प्रभावों को अपनाने वाली एक शहरी युवती के रूप में चित्रित की गई है ।

शोभा और सविता के पात्र ग्रामीण और शहरी जीवन के स्त्री पात्रों के जीवन–मूल्यों और चरित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शोभा जहां ग्रामीण पृष्ठभूमि की पारंपरिक, सहनशील, और श्रमशील स्त्री है, वहीं सविता शहरी, अत्यानुधिक और उच्छृंखलता जीवनशैली की प्रतीक है। शोभा के जीवन में शिक्षा और परिवार के प्रति उसकी जिम्मेदारी महत्वपूर्ण है, जबकि सविता की प्राथमिकताएं व्यक्तिगत स्वतंत्रता और भौतिकवादी जीवनशैली तक सीमित हैं। इन दोनों पात्रों के माध्यम से शिवानी ने सामाजिक, सांस्कृतिक और मूल्यगत भिन्नताओं को उजागर किया है, जो पारंपरिक ग्रामीण और आधुनिक शहरी स्त्री के बीच के संघर्ष और विभाजन को दर्शाता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शिवानी ने ग्रामीण और शहरी स्त्रियों के चरित्र और जीवन–मूल्यों का गहन और तुलनात्मक चित्रण अपने इस उपन्यास

में किया है। उन्होंने दिखाया है कि ग्रामीण स्त्रियाँ,परंपरागत, श्रमशील, और परिवार की जिम्मेदारियों से बंधी होती हैं, जबकि शहरी स्त्रियाँ, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और भौतिक सुख–सुविधाओं पर अधिक ध्यान देती हैं। शिवानी के लेखन में इन दोनों जीवन शैलियों के संघर्ष और समाज में उनके प्रभावों को सजीव ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जिससे नारी जीवन के विविध आयामों को समझने में मदद मिलती है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. सिद्दाम खोट, शिवानी के उपन्यासों में समाज, पृष्ठ –116
2. (उद्धृत– शोध प्रबंध – वैशाली डी. पटेल, शिवानी के उपन्यासों में नारी, पृष्ठ संख्या –84)
3. शिवानी : मायापुरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक्स संस्करण, 2019, पृष्ठ संख्या – 9
4. वही, पृष्ठ संख्या – 8
5. वही, पृष्ठ संख्या – 10
6. वही, पृष्ठ संख्या – 40
7. वही, पृष्ठ संख्या – 14
8. वही, पृष्ठ संख्या – 12
9. वही, पृष्ठ संख्या – 51

■

स्वतंत्र भारत में
महिलाओं की स्थिति और शिक्षा

अरुण कुमार *

वर्ष 1947 में भारत को स्वतन्त्रता मिलते ही महिला शिक्षा केक्षेत्र में एक नये युग की शुरूआत हुयी। संविधान के अनुच्छेद 45 में निःशुल्क एवम् अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त को प्राथमिकता देते हुए स्वतंत्र भारत में शिक्षा प्रणाली के विकास पर बल दिया गया।भारतीय संविधान के प्रस्तावना में 42वी संविधान संशोधन (1976)के तहत देश को एक प्रभुत्वसम्पन्न गणराज्य के रूप में स्वीकार करते हुए देश के नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय प्रदान करने, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतन्त्रता देने एवं प्रतिष्ठा और अवसर की समानता के साथ–साथ व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करने वाली बन्धुता को बढ़ाने का संकल्प किया गया है। भारत के नागरिक होने के कारण महिलाओं के कई अधिकार संवैधानिक रूप से सुरक्षित किये गये है। संवैधानिक उपबंध महिलाओं हेतु वैसे ही है,जैसे कि तपती दुपहरी में महिलाओं के लिए ठंडी छाव की व्यवस्था प्रकृति द्वारा कि जाती है। संविधान द्वारा प्रदत्त महिलाओं को यह अधिकार उनकें उज्ज्वल भविष्य के लिए वरदान साबित हो रहा है, किन्तु अभी भी रूढ़िवादी व पारम्परिक सामाजिक विचारों ने बच्चियों और महिलाओं को संकट में डाल रखा है।

इन बच्चियों और महिलाओं को संवैधानिक रूप से संरक्षण मिल तो गया है, लेकिन उनके परिवार और परिवार की व्यवस्थाओं से उत्पन्न पीड़ा को दूर करना अभीभीशेषवतहै। इसमें कोई संदेह नहीं कि संवैधानिक व्यवस्थाओं ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। महिलाओं के अधिकार के सन्दर्भ में संविधान के अनुच्छेद 15 (1) में बताया गया है कि राज्य किसी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा। राज्यों को भी महिलाओं की शिक्षा और समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए विशेष कार्यक्रमों के साथ उनके कल्याण और विकास को बढ़ावा देने का अधिकार भी दिया गया है। लड़कियों को शिक्षित करने के लिए अभि–भावकों

* संपर्क : शोधार्थी, ऐतिहासिक अध्ययन और पुरातत्व विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

को जागरूक करने के लिए भी कई कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। संविधान ने महिलाओं को समानता का अधिकार भी दिया है, जो उन्हें पुरुषों की भांति किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध कराता है। इतना ही स्वतंत्रता के उपरांत कई शिक्षा आयोगों व समितियों कि स्थापना कि जा चुकी है, जिनमे महिलाओँ के शिक्षागत विकास हेतु निम्न सिफारिशें कि गईं है यथा–

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग(1948–49) : स्वतंत्र भारत की नवीनतम आवश्यकताओं और मांगों के अनुरूप विश्वविद्यालय शिक्षा के पुनर्गठन के लिये सुझाव प्रस्तुत करने हेतु सरकार द्वारा डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग को पुनर्गठित करने के लिए एवं सुझाव देने के लिए नियुक्त किया था। 25 अगस्त, 1949 को आयोग ने अपने रिपोर्ट में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। आयोग ने सिफारिश कियाकिया कि – स्त्रियों को भी पुरुषों के कालेजों में समान शिक्षा और सुविधाएं दी जाएं। आयोग का कहना था कि स्त्री और पुरुष समान हैं, लेकिन उनका कार्यक्षेत्र अलग है, इसलिए स्त्रियों को भी गृह, अर्थशास्त्र और घरेलू प्रबन्ध की शिक्षा देने का प्रोत्साहन देना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) : 23 सितंबर 1952 को भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया। आयोग का लक्ष्य था, भारत की माध्यमिक शिक्षा की तत्कालीन स्थिति का विश्लेषण करना और इसके प्रत्येक पहलू को समझाना। आयोग ने शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में लड़कियों को लड़कों के समकक्ष अवसर देने की मांग की। आयोग ने बालिकाओं के लिए अलग–अलग विद्यालयों का भी सुझाव दिया और महिला शिक्षकों को नियुक्त करने का भी सुझाव दिया।

राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958) : वर्ष 1958 में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में भारत सरकार ने स्त्री शिक्षा पर विचार करने के लिए 'राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति' का गठन किया। इसका मुख्य उद्देश्य था – स्त्री–शिक्षा के विभिन्न मुद्दों का समाधान करने के लिए उपायों का विकल्प प्रस्तुत करना। जिसमें इस बात पर विशेष जोर दिया गया कि केन्द्र सरकार को चाहिए कि स्त्री–शिक्षा को कुछ समय के लिए विशिष्ट समस्या के रूप में स्वीकार करे और उसके प्रसार का भार अपने ऊपर लेकर प्रतिबद्धता के साथ काम करे। समिति ने यह सुझाव भी प्रस्तुत किया कि केन्द्रीय सरकार को एक निश्चित योजना के अनुसार, निश्चित अवधि में स्त्री–शिक्षा का विकास एवं विस्तार करना चाहिए। स्त्री पुरुषों की शिक्षा में वर्तमान विषमताओं को दूर किया जाए और दोनों के लिए समान शिक्षा की व्यवस्था की जाए। समिति ने इस बात पर विशेष बल दिया कि केन्द्र सरकार को सभी राज्यों के लिए स्त्री शिक्षा के विस्तार के लिए नीतियों बनानी चाहिए और राज्यों को इस नीति का अनुकरण करने के लिए

पर्याप्त धन देना चाहिए। बालिकाओं को प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए अधिक सुविधाएं प्रदान करने के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री–शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय को स्त्री–शिक्षा के मुद्दों पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय महिला शिक्षा–परिषद बनाना चाहिए।

राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद (1959) : 1959 में, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद का गठन किया, जो राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति की सिफारिशों को मानता था। 1964 में इसका पुनर्गठन किया गया था। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे –

1. विद्यालय स्तर पर बच्चों और वयस्क स्त्रियों की पढ़ाई से संबंधित समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना।

2. बालिकाओं और स्त्रियों की शिक्षा के प्रसार और सुधार के लिए लक्ष्यों, नीतियों, कार्यक्रमों और प्राथमिकताओं का सुझाव देना। समय–समय पर सर्वेक्षण, अनुसंधान और विचारगोष्ठी का आयोजन करने की सिफारिश करना।

3. समय–समय पर शिक्षा क्षेत्र में होने वाली प्रगति का मूल्यांकन करना और भावी कार्यक्रम की प्रगति पर नजर रखना।

हंसा मेहता समिति (1962) : श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में गठित समिति ने व्यापक चर्चा के बाद कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए, जो निम्नलिखित हैं–

1. बालक–बालिकाओं के पाठ्यक्रमों में विद्यालय स्तर पर अंतर नहीं होना चाहिए। लिंग के आधार पर पाठ्यक्रमों में कोई भेद करनेकाऔचित्य नहीं है।

2. समिति ने कहा कि पुरुषों और स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कार्यों में भेद के आधार पर बालकों और बालिकाओं के लिए अलग–अलग पाठ्यक्रम बनाना चाहिए। नए समाज को बनाने में पाठ्यक्रमों की भिन्नता बाधा नहीं होनी चाहिए। यही कारण है कि ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए जो पुरुषों और स्त्रियों के वर्तमान अंतर को स्थायी या अधिक गहरा बना दे।

शिक्षा आयोग (1964–66) : 14 जुलाई 1964 को भारत सरकार ने प्रोफेसर डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में एक शिक्षा आयोग का गठन किया। आयोग ने शिक्षा में सुधार को आधुनिक समाज के निर्माण से सीधे संबंधित मानते हुए कहा, ष्हमारे मानवीय संसाधनों के पूर्ण विकास, घरों के सुधार और शैशव के सर्वाधिक संस्कार–ग्राही वर्षों में बच्चों के चरित्र के निर्माण के लिए लड़कियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है" ।ष्स्वतन्त्रता संघर्ष में भारतीय नारियाँ भी पुरुषों के साथ–साथ लड़ी थी,ष आयोग ने बताया। रोग, गरीबी, अज्ञानता औरख के खिलाफ लड़ाई में भी यह साझेदारी जारी रहनी चाहिए" ।

महिलाओं के लिए व्यावसायिक और रोजगारोन्मुख शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए, आयोग ने शिक्षा के सभी स्तरों पर स्त्री–शिक्षा की

समस्याओं को हल करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किये और कहा, 'घर की चारदीवारी के बाहर स्त्रियों का कार्य आज देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है और आगामी वर्षों में वह और बड़ा आकार धारण कर लेगा, इसलिए स्त्रियों को प्रशिक्षण और रोजगार देने के विषयों पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। इस दिशा में आयोग ने लड़कियों के अलग–अलग स्कूलों की स्थापना, हॉस्टल और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था पर विशेष बल दिया।'

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) : 24 जुलाई, 1968 को भारत सरकार ने शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को सरकारी प्रस्ताव के रूप में घोषित किया। इसमें लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की जरूरत को समझा गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) : 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने समानता के लक्ष्य को पूरा करने के लिए सभी को समान शिक्षा के अवसर और शिक्षा में सफलता के अवसर देने पर जोर दिया। महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा का इस्तेमाल किया जाना चाहिए था। इस बात पर बल दिया गया कि महिलाओं की शिक्षा पर विशेष प्रयत्न किया जाना चाहिए।

आचार्य राममूर्ति समिति (1990) : समिति ने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की क्रियान्वयन की समीक्षा करते हुए देखा कि लड़कियों की शिक्षा के लिए निर्धारित दिशा–निर्देशों पर पूरी तरह से अमल नहीं हो सका है। इसलिए सरकार को उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए, जो उसने घोषित की है। इसके तहत महिला शिक्षकों की संख्या बढ़ाई जाए, योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, कपड़े, पाठ्यपुस्तकें आदि दी जाएं।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (2005–2008) : आयोग ने सर्वशिक्षा अभियान और अन्य केन्द्रीय कार्यक्रमों में सुधार की जरूरत की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। जो कि बालिकाओं के शिक्षाके लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद कर सकते हैं। विद्यालयों में लडकियों का अधिक नामांकन सुनिश्चित करने के लिए विशिष्ट योजनाओं का निर्माण महिलाओं की शिक्षा के लिए विशेष कोशिश की जानी चाहिए। इसके लिए विशेष कार्य–रणनीति पर कार्य करने की अवश्यकता पर आयोग ने भी सुझाव दिया था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) : 29 जुलाई 2020 को भारत सरकार ने नवीनतम राष्ट्रीय शिक्षण कार्यक्रम जारी किया। जिसकें तहत वर्ष 2030 तक सभी को समावेशी और समान गुणवत्ता युक्त शिक्षा, जीवन पर्यन्त मिलनी चाहिए। यह लक्ष्य निश्चित रूप से महिलाओ को राष्ट्र निर्माण हेतु प्रेरित करेगा। 2020की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में गुणवत्ता, उत्तरदायित्व, समानता और शिक्षा जैसे विषयों की पहुंच पर विशेष ध्यान दिया गया है।

2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि लिंग और सामाजिक श्रेणियों के अंतराल को कम करने के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली और

क्रमिक सरकारी नीतियों ने प्रगति की है, लेकिन असमानता अभी भी है। सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित समूहों में अधिक है, और विशेष कर इन पर ध्यान केन्द्रित करने कि अवश्यकता है। इनकें नामांकन में नभी गिरावट देखी गयी है, विशेष रूप से महिला छात्रों में, हालांकि स्कूल में कक्षा 1 से 12 तक नामांकन में गिरावट आ रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि ए०स०डी०एच० समूहों में सर्वाधिक महिलाएं हैं, जो अल्प प्रतिनिधित्व वाले सभी समूहों में है। दुर्भाग्यवश, इन समूहों की महिलाओं को औरोंसे अधिक एसईडीजी का सामना करना पड़ता है। महिलाएं समाज में विशिष्ट और महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो वर्तमान और भावी पीढ़ियों के विचारों को आकार देती है। इसलिए नीति कहती है कि एसईडीजी विद्यार्थियों के लिए योजनाओं और नीतियों को इन बालिकाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

इसके अलावा, भारत सरकार एक जेंडर समावेशी निधि बनाएगी, जो सभी लड़कियों और ट्रान्सजेंडर विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण और न्याय संगत शिक्षा प्रदान करने की क्षमता का विकास करेगी । प्राथमिकताओं को केंद्र सरकार ने निर्धारित किया है, तथाउन्हें लागू करने के लिए राज्यों को धन भी उपलब्ध कराया है। भारत सरकार ने विभिन्न आयोगों और समितियों द्वारा दी गयी सिफारिशों के अनुरूप स्त्रियों की शिक्षा को विकसित करने और उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए प्रयत्नकिया है। इससें देश में शिक्षा के स्तर में सुधार होगा और महिलाओं के सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में सुधार होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 और 1986 ने महिलाओं की शिक्षा से सम्बधित कई समस्यायों का समाधान किया है।

परिणामतः आज भारत में लड़कों और लड़कियों की शिक्षा में बहुत अंतर नहीं है। शिक्षा के हर स्तर के उद्देश्य स्पष्ट और स्पष्ट हैं, और दोनों के उद्देश्य समान हैं। देश भर में सभी आयु वर्ग के बच्चों के लिए हर स्तर पर समान पाठ्यचर्चा दी जाती है, लेकिन लड़कियों के लिए गृह–विज्ञान विषयों के लिए अतिरिक्त सुविधा है। साथ ही, बहुत सी प्रशिक्षण प्राप्त महिला शिक्षक भी उपलब्ध हैं।

शिक्षा के विभिन्न पहलुओं में महिलाओं की प्रगति और उनकी स्थिति में सुधार– आज महिला, शिक्षण पर भारत सरकार एव राज्य सरकारें विशेष ध्यान दे रही है। आधुनिक शिक्षा के प्रसार और अन्य राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों ने बालिका और स्त्री कि शिक्षा के लिये विशेष योजनायें व कार्यक्रम संचालित कर रही है, जिससे कि उनके सामाजिक स्थिति में सुधार हो सके। सरकार भी स्त्री–शिक्षा को प्रश्रय प्रदान कर रही है। लड़कियों के लिए स्कूल कई स्थानों पर खोले जा रहे है। जहां उन्हें सामान्य और विशिष्ट शिक्षा दोनों उपलब्ध हैं। परिणामस्वरूप, महिलाओं की शिक्षा प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च श्रेणी के लिए ही तैयार की जाती है।

वर्तमान में देश में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति–

(1) विद्यालयों में महिला शिक्षण की स्थिति– आज केंद्र और राज्य सरकार दोनों की शिक्षा की जिम्मेदारी है। शिक्षा को विकास प्रक्रिया में निवेश करने के बजाय छठी योजना तक, कभी इसे सामाजिक सेवा माना जाता था, लेकिन अब मानव संसाधनों का विकास इसे एक बहुत महत्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक विकास मानता है। यही कारण है कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने महिलाओं को प्रारंभिक शिक्षा देने और निरक्षरता को कम करने पर विशेष जोर दिया है ।सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा कोबढ़ावादेनेके लिए अधिक धन व्यय किया जा रहा है, जिसका लाभ बालिकाओं को मिल रहा है।

'1990–91 के अंत तक बड़ी संख्या में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के केंद्र खोले गए, जिनमें सह–शिक्षा और बालिका शिक्षा केंद्र दोनों शामिल थे। इस प्रकार की योजना से लड़कियों की शिक्षा प्रभावित हुई है।' महिला समाख्या कार्यक्रम ने शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए एक कार्यक्रम भी चलाया। यह योजना हॉलैंड की मदद से चलाई गई थी। लोक जुंबिश नामक परियोजना के माध्यम से सभी को शिक्षा प्रदान करने के लिए सार्वजनिक आंदोलन भी चलाए गए थे।

इसलिए भारत में महिला साक्षरता दर बढ़ी। 1951 में महिला साक्षरता दर 8.9 प्रतिशत थी, लेकिन 2011 में यह 64.6 प्रतिशत थी। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर 73ः है। इसमें 80,09 प्रतिशत पुरुष और 64,6 प्रतिशत महिलाएं हैं। केरल देश में 96.1ः पुरुष और 92.1 : महिला साक्षरतादर के साथ पहले स्थान पर है। महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि का एक विशिष्ट पहलू यह है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता में भी वृद्धि हुई है, जिनकी शिक्षाकि भारत में लंबे समय से उपेक्षा की जाती रही है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जाति की साक्षरता दर 42.07 थी, जो 2011 में 56.5 हो गई है। इसी तरह अनुसूचित जनजाति 2001 में महिला साक्षरता दर 35.07 थी, लेकिन 2011 में यह 49.4 हो गई ।

यहाँ एक चुनौती रही कि हम सभी महिलाओं को साक्षरता के दायरे में लाने में सफल नहीं हो सके, हालांकि बहुत प्रयास किए गए हैं। भारत सरकार ने 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' नामक एक नई योजना शुरू की है, जो पांच वर्ष के आयु वर्ग में लिंग अनुपात की गिरावट को देखते हुए बनाई गई है। योजना का उद्देश्य कन्याओं को शिक्षित करना और लिंग असमानता को कम करना है। 100 करोड़ रुपये की शुरूआती राशि के साथ इस योजना का उद्देश्य महिलाओं के लिए कल्याणकारी सेवाओं की जागरूकता फैलाना है। सरकार द्वारा लिंग समानता के कार्य को मुख्यधारा से जोड़ने के अतिरिक्त, स्कूली पाठ्यक्रमों में भी लिंग समानता से जुड़ा एक अध्याय रखा जाएगा।

इसके आधार पर विद्यार्थियों, अध्यापकों और समुदाय कन्या, शिशु और महिलाओं की जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील बनेंगे, और समाज का सोहार्दपूर्ण विकास होगा। 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजना के अन्तर्गत जिन महत्वपूर्ण गतिविधियों पर काम किया जा रहा है वे हैं –

एस.एम.सी. को सक्रिय करना जिससे लड़कियों की स्कूलों में नामाकंन हो सके। स्कूलों में बालिका मंच की शुरूआत। कन्याओं के लिए शौचालय निर्माण। बन्द पड़े शौचालयों को फिर से शुरू करना। कस्तूरबा गांधी बाल स्कूलों को पूरा करना। एक व्यापक अभियान चलाना,जिसमें माध्यमिक स्कूलों में पढ़ाई छोड़ चुकी लड़कियों को फिर से नामाकिंत करने के लिए। लडकियों के लिए माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में छात्रावास प्रारंभ करना।

महिलाओं की उच्च और तकनीकी शिक्षा– भारत को आधुनिक और समृद्ध बनाने के लिए समाज, उद्योग और व्यापार क्षेत्र की बदली हुई आवश्यकताओं को देखते हुए, उच्च शिक्षा में महिलाओं का प्रवेश अनिवार्य माना जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में महिलाओं की शिक्षा में विविधता देखी गई है। महिला महाविद्यालयों के निर्माण पर विशेष बलदियाजारहाहै।1985–86 में भारत में 741 महिलाएं थीं, जो 1994–95 में 1107 हो गईं । 2010–11 में 3982 महिला महाविद्यालयों की संख्या बढ़ी है । यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन की 2014–15 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, 2014–15 में 12475669 महिलाओं ने उच्च शिक्षा में प्रवेश लिया था, जो एक और वृद्धि है। इसमें विशेष रूप से महिलाओं ने तकनीक और विज्ञान के क्षेत्रों में भी अधिक भागीदारी दिखाई है। 2014–15 में 2320894 महिलाएं विज्ञान संकाय में थीं, 1962384 महिलाएं वाणिज्य तथा प्रबन्धन संकाय में थीं, और 1232006 में 2320894 महिलाएं विज्ञान संकाय में थीं।

देश में महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण मिलता है। 369 महिला औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों और सामान्य आईटीआई की 844 महिला शाखाओं और प्राइवेट आईटीआई के तंत्र से आयोजित की जाती है। राज्य सरकारें इन प्रशिक्षण संस्थानों को चलाती हैं, जिनमें कुल 51,804 सीटें हैं। राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद की सिफारिश है कि आम आईटीआई में कुल स्वीकृत सीटों में से 30: महिला आवेदकों के लिए आरक्षित रहें। ये सीटें प्रत्येक राज्य या केन्द्र के अधीन हैं।

प्रत्येक राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश की आम आरक्षण नीति ये सीटें भर सकती है। व्यवसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के तहत 10 क्षेत्रीय व्यवसायिक प्रशिक्षण संस्थान हैं जो मुम्बई, बंगलुरू, तिरुवंतपुरम्, हिसार, कोलकाता, तुरा, प्रयागराज, इंदौर, बड़ौदा तथा जयपुर में हैं। इन संस्थानों में दीर्घावधि पाठ्यक्रमों

के लिए 3.764 सीटें हैं। सरकार और महिलाओं के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान नोयडा प्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम की निगरानी करते हैं।

आज भारत में महिलाओं के स्वतंत्र व्यक्तित्व और समाज में उनकी सक्रिय भूमिका पर जोर दिया जा रहा है। यह आवश्यकता महसूस की जा रही है कि महिलाएं भी पुरुषों के समान अधिकारों की मालिक बनें और आधुनिक जीवनध ाारा का एक हिस्सा बनें। यही कारण है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने भी स्त्रियों की मानसिकता में परिवर्तन लाने, उनका सामाजिक दर्जा बढ़ाने और उनके कल्याण के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। महिला जागृति योजना का उद्देश्य इस दिशा में स्त्रियों की मानसिकता में बदलाव लाना था।

भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग ने उत्तर प्रदेश में नोराड योजना के तहत अपारम्परिक क्षेत्रों में महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया है। महिला कल्याण निगम की मार्जिन मनी ऋण योजना का उद्देश्य व्यापार के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी और आर्थिक स्वायत्तता के लिए स्वतंत्र रोजगार शुरू करना था। उनके लिए भी व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया था। महिलाओं के लिए समान काम के लिए समान वेतन दिया गया है, और सेना में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिया गया है।

यही कारण है कि स्वतंत्र भारत में महिलाओं की सामाजिक भूमिका बहुत बदल गई है। शिक्षा के अलग–अलग क्षेत्रों में भी उनकी भागीदारी बढ़ी है। लेकिन ये भागीदारी पुरुषों से भी कम है। वे सिर्फ शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे हैं, बल्कि रोजगार के स्तर और गुणवत्ता में भी बहुत पीछे हैं। नोरोवा (1993) ने महिला कर्मचारियों के संदर्भ में एक शोध पत्र में महिला कर्मचारियों की स्थिति को चिंताजनक बताया है। यहां इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि तकनीकी शिक्षा और व्यवसायोन्मुख प्रशिक्षण में स्त्रियों की संख्या बहुत कम है।

महिला शिक्षा के विकास पर यूजीसी एनुअल रिपोर्ट 2014द्15 के आंकड़ों से पता चलता है कि अधिकांश विद्यार्थियों ने कला वर्ग का चुनाव किया है। व्यवसायोन्मुख और तकनीकी प्रशिक्षणों में उनका अनुपात बहुत कम है। रिपोर्ट के अनुसार 2014–15 में उच्च शिक्षा में हुए कुल 26585437 नामांकनों में से 9945700 कलावर्ग के थे ।

यह कुल नामांकन का एक बड़ा हिस्सा है।विभिन्न शिक्षाविदों और समाजशास्त्रियों द्वारा इस सन्दर्भ में किए गए अध्ययनों से भी पता चला है कि आज भारतीय स्त्रियों में रूढ़िवादी, विकासवादी और आधुनिक विचारधारा को माननेवालों का दो विरोधाभासी विचारधाराएँ व्याप्त हैं। शिक्षित महिलाओं का एक वर्ग आत्मविश्वास से भरपूर है और अपने अधिकारों के लिए लड़ने और समाज

में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए तैयार है, जबकि दूसरा वर्ग सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करने और स्वीकार करने के लिए तैयार है।

आधुनिक सोच और सामाजिक स्थान बनाते हैं। भूमिका को लेकर संघर्ष जारी है। एमएससी शाह और भार्गव द्वारा उत्तरार्द्ध (गृह विज्ञान) की छात्राओं पर किए गए एक अध्ययन में यह स्पष्ट था। इस अध्ययन में शामिल अधिकांश छात्राएं घर छोड़कर बाहर काम करनास्वीकारनहींकिया ।शिक्षा प्राप्ति के बावजूद भारतीय महिलाओं को अपने लिए पूरा जीवन तथा अधिक सन्तोषप्रद सामाजिक दायित्व के प्रति आकृष्ट न होने के कारणों की व्याख्या करते हुए कपूर ने कहा कि, 'जहां पिता बन जाना कभी भी एक उद्देश्य एवं एक पूर्ण कर्तव्य नहीं माना गया है, वहीं माँ या पत्नी बन जाना बहुत से लोगों द्वारा महिलाओं के लिए एक पूर्णकालिक और उपयुक्त कर्तव्यमानागयाहै। उनका कहना है कि यह इस धारणा से है कि कई लड़कियों ने शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद रूढ़िवादी जीवनशैली अपनाई है। विद्वानों ने इस स्थिति को यह कहकर समझाया कि युवा लड़कियों ने स्कूल का माध्यमिक प्रमाण पत्र प्राप्त किया है, फिर क्या उसे करना है, यह निश्चित नहीं हो पाता है, क्योंकि उसकी शादी आसानी से तय नहीं हो सकती हैइसलिए कॉलेज में प्रवेश पालेना और तीन साल में डिग्री प्राप्त करने के उपरांत उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी होती ।

आज भारत में महिलाओं के शैक्षिक स्तर से संबंधित मुख्यतः तीन तरह की समस्याएं देखने को मिल रही हैं। समाज में स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग जो शिक्षा के दायरे में आ ही नहीं सका है, जिनकी शब्दों को अंकों के आकार में पहचान ही नहीं मिली है।दूसरा वर्ग वह है जिसे स्कूल जाने का मौका तो मिला, लेकिन पढ़ाई पूरी करने के लिए पर्याप्त सुविधाएं और अवसर नहीं मिले और तीसरा वर्ग वह है जिसे शिक्षा तो प्राप्त हुई है, किन्तु वे उसका बेहतर उपयोग नहीं कर पाए। शिक्षा क्षेत्र इन तीनों परिस्थितियों को बहुत महत्वपूर्ण मानता है । ये हालात निश्चित रूप से अच्छे नहीं हैं। स्वतन्त्रता के इतने वर्षों के बाद भी देश की महिलाओं में से बहुत कम लोगों ने शिक्षा प्राप्त कर आज की दुनिया में भाग लेने का अवसर पाया है । हमें महिलाओं को सम्मानजनक जीवन जीने के अवसर देने के लिए इस दायरे को बढ़ाना होगा। उन्हें शिक्षा और आर्थिक सहायता देकर समाज की मुख्यधारा में शामिल करना होगा।

■

रामधारी सिंह दिनकर के

विचारों में स्त्री का स्थान

सुजाता कुमारी*

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति का ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है, विशेष रूप से रामधारी सिंह दिनकर के विचारों के माध्यम से। प्राचीन काल में भारतीय समाज में स्त्रियों को विशेष सम्मान और अधिकार प्राप्त थे, लेकिन मध्यकालीन पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण उनकी स्थिति में गिरावट आई। दिनकर ने अपने निबंधों में स्त्रियों की शिक्षा, स्वतंत्रता, और समाज में उनके स्थान पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि नारी की भूमिका केवल घर तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे समाज के हर क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। शिक्षा और समान अधिकारों के माध्यम से स्त्रियाँ न केवल स्वयं को सशक्त बना सकती हैं, बल्कि भारतीय समाज की प्रगति में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। दिनकर का मानना है कि स्त्री–पुरुष के बीच समानता और सहयोग से ही समाज का समग्र विकास संभव है।

भारतीय संस्कृति के अंतर्गत स्त्रियों का स्थान सदैव से महत्वपूर्ण रहा है । प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक, भारतीय समाज ने महिलाओं को एक विशेष सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान की है। प्राचीन भारत में, स्त्रियों का स्थान अत्यंत सम्मानजनक था। वेदों, उपनिषदों, और पुराणों में स्त्रियों की पूजा और उनके अधिकारों का उल्लेख मिलता है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' (जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं) का सूत्र इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को विशेष स्थान दिया गया है। स्त्रियों को शिक्षा, सामाजिक और धार्मिक अधिकारों में भागीदारी का अधिकार था। उदाहरण के लिए, उपनिषदों में विदुषियों का उल्लेख मिलता है, जो अपनी विद्या और ज्ञान के लिए जानी जाती थीं। ऐसी विदुषियों में गार्गी और मैत्रेयी प्रमुख थीं, जिन्होंने अपने ज्ञान और बुद्धिमत्ता से समाज को प्रेरित किया। ये विदुषियाँ सार्वजनिक चर्चाओं में सक्रिय भाग लेती थीं और अपने विचारों से समाज में बदलाव लाने में सक्षम थीं।

❖ संपर्क : शोधार्थी, तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारुर, 610005, मो.– 9540472864

मध्यकाल तक आते–आते पितृसत्तात्मक संरचना का विकास हुआ जिस कारण स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। मध्यकालीन भारत में, महिलाओं की स्वतंत्रता कम हुई और उन्हें सामाजिक बंधनों में बांधने वाले कई नियम लागू किए गए। सती प्रथा, बाल विवाह और स्त्रियों के शिक्षा के अधिकारों का हनन जैसे मुद्दे इस समय के दौरान प्रचलित हुए। लेकिन, 19वीं और 20वीं शताब्दी में सुधारक आंदोलनों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए। सामाजिक सुधारक जैसे रवींद्रनाथ ठाकुर, राजा राममोहन राय और सावित्रीबाई फुले ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई । और इसी का परिणाम है कि आधुनिक युग में पहुंचते ही स्त्रियों का स्थान केवल अब पारिवारिक जिम्मेदारियों तक सीमित नहीं रह गया है। बल्कि अब वे शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, कला, और व्यवसाय में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में वर्चस्ववादियों द्वारा स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया, जिसके परिणामस्वरूप वे सामाजिक, आर्थिक और मानसिक रूप से पिछड़ी रहीं। लेकिन जब समाज में शिक्षा का प्रसार हुआ, तब यह महसूस किया जाने लगा कि स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। शिक्षा के द्वारा न केवल स्त्रियाँ स्वयं को सक्षम और सशक्त बना पाईं, बल्कि पुरुषों और समाज की सोच में भी बदलाव आया। रामधारी सिंह दिनकर शिक्षा ग्रहण के पश्चात महिलाओं की स्तिथि में परिवर्तन और पुरुषों के मनः स्तिथि में आए बदलाव का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि – "जब मर्दों की शिक्षा का विकास हुआ, यह अनिवार्य हो गया कि ऊँची–से–ऊँची शिक्षा औरतों को भी दी जाए और औरतों के शिक्षित होने से पुरुषों के अहंकार में थोड़ी कमी भी हुई है । अपढ़ स्त्रियाँ पुरुषों के अत्याचार सहने को तैयार नहीं हैं। इससे पुरुष अपनी सीमा समझने को लाचार हुआ है। शिक्षित होने से नारियों के भीतर क्या–क्या सुधार हुए हैं, वह अलग बात है, किन्तु स्त्री–शिक्षा के प्रसार से पुरुषों में सुधार हुए हैं, यह सत्य है ।"[1] उक्त कथन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा ने पुरुषों के अहंकार को चुनौती दी है और उन्हें स्त्रियों को बराबरी के अधिकार देने के लिए प्रेरित किया है। साथ ही, पुरुषों को यह समझ में आने लगा है कि समाज की प्रगति तभी संभव है जब स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर कार्य करें। इस प्रकार, स्त्री–शिक्षा का प्रसार न केवल स्त्रियों के विकास का माध्यम बना है, बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए भी आवश्यक सिद्ध हुआ है।

रामधारी सिंह दिनकर ने अपने निबंध 'अर्धनारीश्वर' में नर और नारीके बीच सामाजिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक विभाजन को दर्शाया है। उन्होंने शिव–पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप का उदाहरण देते हुए यह संदेश दिया है कि स्त्री और पुरुष समान हैं और उनमें से एक के गुण दूसरे के दोष नहीं हो सकते। वे इस प्रसंग को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि – "नारी केवल नर को रिझाने

अथवा उसे प्रेरणा देने को नहीं बनी है। जीवन यज्ञ में उसका भी अपना हिस्सा है और वह हिस्सा घर तक ही सीमित नहीं, बाहर भी है। जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है। नर और नारी, दोनों के जीवनोद्देश्य एक हैं। यह अन्याय है कि पुरुष तो अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनमाने विस्तार का क्षेत्र अधिकृत कर ले और नारियों के लिए घर का छोटा कोना छोड़ दे। जीवन की प्रत्येक बड़ी घटना आज केवल पुरुष प्रवृत्ति से नियंत्रित और संचालित होती है। इसीलिए, उसमें कर्कशता अधिक, कोमलता कम दिखाई देती है। यदि इस नियंत्रण और संचालन में नारियों का भी हाथ हो तो मानवीय संबंधों में कोमलता की वृद्धि अवश्य होगी।"[2] इस प्रकार नारी को केवल घरेलू कार्यों तक सीमित करने का अर्थ है उसकी असाधारण क्षमताओं और योग्यताओं का उचित उपयोग न कर पाना। इतिहास गवाह है कि जब–जब नारियों को समान अवसर मिला है, उसने हर क्षेत्र में अपनी योग्यता को सिद्ध किया है। चाहे वह शिक्षा हो, विज्ञान हो, राजनीति हो, या फिर कला और साहित्य हो, नारी ने हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भारतीय समाज को समृद्ध किया है।

आधुनिक समाज में यह स्पष्ट है कि यदि नारी को बराबरी के अधिकार और स्वतंत्रता मिले, तो वह न केवल अपने जीवन को संवार सकती है, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर कर सकती है। समाज में व्याप्त असमानता और भेदभाव न केवल नारियों के लिए अन्याय है, बल्कि भारतीय समाज की समग्र उन्नति में भी बाधा है।

रामधारी सिंह दिनकर अपने निबंध 'विवाह की मुसीबतें' में विवाह के बाद स्त्रियों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों की चर्चा करते हैं। साथ ही इस व्यवहार परिवर्तन के पीछे कारण क्या है इसे भी रेखांकित करते हैं वे मानते हैं कि जो व्यवहार और प्रवृत्तियाँ स्त्री में दिखती हैं, वे मौलिक नहीं हैं, बल्कि पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए हुए हैं। समाज की संरचना में स्त्री को 'नारीत्व' की सीमाओं में बांध दिया जाता है। वे लिखते हैं कि – "नारी का लालन–पालन माता–पिता इस भाव से करते हैं, मानो अपना बोझ उसे आप नहीं उठाना हैय मानो उसकी सारी सार्थकता लता बनकर वृक्ष को छा लेने में हैं। किन्तु विवाह के बाद जब वृक्ष ऊँघने लगता है, तब लता को विफलता–बोध की पीड़ा महसूस होती है और उसका मन खिन्न होने लगता है ।"[3] उक्त कथन से स्पष्ट होता हैकि स्त्री की यह स्थिति उसकी अपनी पहचान और अस्तित्व से उसे वंचित कर देती है। समाज द्वारा उसे केवल एक पत्नी, माँ, या बेटी के रूप में देखा जाता है, जिससे उसकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, इच्छाओं और स्वतंत्रता का दमन होता है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को केवल एक सहायक या पराश्रित के रूप में परिभाषित करता है, जबकि उसकी अपनी प्रतिभा, क्षमता, और आत्मनिर्भरता को दरकिनार किया

जाता है। यही मानसिकता है, जो स्त्री के विकास को सीमित करती है और उसकी सामाजिक, मानसिक, और व्यक्तिगत आजादी को बाधित करती है। विवाह के बाद जब उसे अपने पति पर निर्भर रहने की स्थिति में रखा जाता है और उसके निजी सपनों या इच्छाओं को महत्व नहीं दिया जाता, तो उसमें विफलता की भावना जागृत होती है। यही कारण है कि स्त्रियाँ अपने जीवन में असंतोष, अकेलापन और आत्म–साक्षात्कार की कमी महसूस करती हैं।

इस प्रकार यह व्यवस्था स्त्री को परंपरागत भूमिकाओं तक सीमित करके उसकी पहचान को पूरी तरह से पुरुष के अधीन कर देती है। उसका संघर्ष न केवल सामाजिक दबावों के साथ है, बल्कि अपने अस्तित्व और आत्म–निर्माण के लिए भी है, जो इस संरचना के भीतर मुश्किल हो जाता है।

रामधारी सिंह दिनकर के विचारों के अनुसार, भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। प्राचीन काल में महिलाओं को सम्मान और अधिकारप्राप्त थे,लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते उनकी स्थिति में गिरावट आई। दिनकर ने स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक स्वतंत्रता के महत्व को रेखांकित किया है, वे यह भी मानते है कि शिक्षा ने न केवल महिलाओं को सशक्त किया है, बल्कि पुरुषों की सोच में भी परिवर्तन आया है। वे यह मानते हैं कि स्त्री–पुरुष के बीच समानता और सहयोग से ही भारतीय समाज का विकास संभव है। दिनकर के अनुसार, नारी की भूमिका केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय रूप से हिस्सा लेना चाहिए। विवाह के बाद स्त्रियों के व्यवहार में बदलाव भी पितृसत्तात्मक संरचना का परिणाम हैं, जो उनकी पहचान और आत्मनिर्भरता को सीमित करता है। इस प्रकार, दिनकर का दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि नारी के विकास के लिए समान अधिकार और स्वतंत्रता की आवश्यकता है, जिससे समग्र भारतीय समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया जा सके।

संदर्भ :

1. दिनकर रचनावली, सं. नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार, भाग–8, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पहला संस्करण – 2011, पृष्ठ संख्या – 14
2. वही, पृष्ठ संख्या – 124
3. वही, पृष्ठ संख्या – 167

■

भारतीय परिवेश में

नारी समाज और उसकी वस्तुस्थिति

अंजु कुमारी *

विमर्श वह है जो जीवनगत विसंगतियो से मोर्चा लेने की प्रेरणा दे,साथ ही साथ एक स्वस्थ्य जीवन दृष्टि विकसित करे। स्त्री कि लड़ाई दोहरी है, वह न केवल अपनी आत्म पहचान बदलना चाहती है बल्कि अपने प्रति पुरुष की पारंपरिक सोच को भी बदलना चाहती है। स्त्री विमर्श के अंतर्गत स्त्री का संघर्ष सिर्फ देह की स्वतंत्रता या लिंग की लड़ाई तक सीमित नहीं क्यूंकि स्त्रियों को अनेक मोर्चों पर एक साथ लड़ना होता है। स्त्री सशक्तिकरण एक सर्वागीण एवं बहुआयामी दृष्टिकोण है जो राष्ट्रनिर्माण में महिला की सक्रिय भागीदारी में विश्वास रखता है। परत–दर–परत व्यवस्था को उघाड़कर स्त्री को इस सच्चाई से अवगत कराया जाता है कि वह मात्र देह नहीं बल्कि मनुष्य है। अपना दु:खड़ा रोने के बजाय उसे समाज की मुख्यधारा से जुड़ना है।

हमारा पितृसत्तात्मक समाज स्त्री के मानस का निर्माण इस तरह से करता है कि स्त्री स्वयं पर हो रहे अत्याचार को अपनी नियति स्वीकार कर लेती है क्योंकि स्त्री जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता दो चुटकी सिंदूर होती है, उसे चुनाव एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसरों से वंचित रखा गया। हमारा समाज हमेशा से औरत की अस्मिता पर ही क्यूँ प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। वह तभी आदर्श नारी मानी जाती है जब वह उसके या समाज द्वारा स्थापित मापदंडों पर खरी उतरती है।

कहते हैं अगर किसी भी राष्ट्र या समाज में तरक्की या विकास को देखना हो तो वहाँ की स्त्रियों की स्थिति से अनुमान लगाया जा सकता है। हमारा भारतीय समाज पुरुष प्रधान होने के कारण यहाँ स्त्रियों की स्थिति दोयम दर्जे की होकर रह गयी है। आज महिला सशक्तिकरण समय की मांग भी है और दरोकार भी। हर वो संभव प्रयास किया जाना चाहिए जिससे महिला सशक्त बने रचनात्मक सोच के साथ अपने कदम बढाये, अपने आत्मविश्वास को मजबूत करे ताकि समाज के उत्थान में भी अपनी भूमिका अदा कर सके।

❖ संपर्क : शोधार्थी (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), शांति कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड खन्दकपर, बिहार शरीफ, नालंदा– 803101, मो:–7479491455

आजादी के बाद भारत के विकास में महिला साक्षरता का विशेष योगदान रहा है। शिक्षा के चलते नारी जागरूक हुई और इस जागरूकता ने नारी के कार्यक्षेत्र की सीमा को घर की चारदीवारी से बाहर की दुनिया तक फैला दिया। आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वो शिक्षा का क्षेत्र हो, राजनीति का क्षेत्र या फिर कोई और क्षेत्र, सभी क्षेत्रों में नारी की भागीदारी पुरुषों से कम नहीं, नारी कितने ही बड़े मुकाम हासिल कर ले पर उनकी स्थिति दयनीय ही है कारण लोगो की मानसिकता उनकी सोच, उनकी विचारधारा में बदलाव नहीं आया हालांकि स्त्रियों की यह दशा का कुछ अंश की जिम्मेदार कहीं न कहीं खुद स्त्रियाँ भी हैं, स्त्री हमेशा पुरुषों के प्रभाव को ढोती हुई दिखती है। इसके पीछे का कारण उनकी परवरिश तथा उनकी समाजिक संरचना स्त्री को मानसिक नियंत्रण के लिए विवश करती है। फ्रांसीसी लेखिका और दार्शनिक सिमोन द बोउआर अपनी रचना The second में लिखा है– One is not born rather become a women. (अर्थात स्त्रियाँ पैदा नहीं होती उसे बनाया जाता है।)

प्रभा खेतान की 'स्त्री : उपेक्षिता' में भी प्रभा लिखती है– "स्त्री कहीं झुण्ड बनाकर नहीं रहती। वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं। गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग–अलग वर्गों एवं भिन्न–भिन्न जातियों में बिखरी हुई है। उसमे क्रांति की चेतना नहीं क्यूंकि अपनी स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। वह पुरुष की सहअपराधिनी है। अतः समाजवाद की स्थापनामात्र से स्त्री मुक्त नहीं हो जाएगी। समाजवाद भी पुरुष की सर्वोपरिता की ही विजय बन जायेगा।"1

आज भी हम देखें तो ग्रामीण क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक ढांचा बहुत मजबूत है वहां आज भी अधिकांश स्त्रियाँ घरेलू काम–काज तक ही सीमित है। महिला सशक्तिकरण की दिशा में सबसे बड़ा रोड़ा, महिलाओं में शिक्षा और जागरूकता की कमी ही है, क्यूंकि आज हम इस बात को नकार नहीं सकते कि जब–जब समाज में नारी को अवसर मिले हैं तब–तब उन्होंने अपने को श्रेष्ठ साबित किया है। नारियों के समाज के प्रति महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद आज भी अधिकांश महिलायें किसी न किसी रूप में शोषण का शिकार होती है लेकिन प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति आज से कहीं अच्छी थी समाजिक और राजनैतिक मामलों में उन्हें पूरी स्वतंत्रता थी। वे अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करती थी उन्हें अर्धांगिनी का दर्जा प्राप्त था। प्राचीनकाल में स्त्रियों को सम्मान और आदर दिया जाता था वो पुरुषों की भांति ही सामाजिक तथा ब्रह्मचर्य का पालन कर वेदों का पाठ करती थी। उन्हें अपने जीवन साथी चुनने तक की आजादी थी।

11वीं शदी आते–आते इनकी स्थिति में गिरावट आने लगी इसका जिम्मेदार कुछ हद तक मुसलमानों का आगमन भी रहा, मुसलमानों के आगमन के फलस्वरूप ब्राम्हणो ने भारतीय संस्कृति की रक्षा हेतु कई कड़े नियम बनाये। देश में जगह–जगह पर लड़ाईयां होने लगी और मुसलमानों ने हिन्दू लड़कियों को भगा ले जाने लगे तब माता–पिता ने भय के कारण छोटी–छोटी लड़कियों

की शादी शुरू कर दी। इस तरह सुधारकों और विरोधियों के बीच शास्त्रों और परम्परा का हवाला देना रूढ़ि–सी बन गयी। स्त्रियों पर प्रतिबंध लगने शुरू हो गये इसी युग में पर्दाप्रथा, बालविवाह, सतीप्रथा तथा बहुपत्नीवाद जैसी अवधारणा की शुरुआत हुई जिससे इनकी स्थिति दिन पर दिन बद् से बदतर होती चली गयी। पर्दाप्रथा के कारण स्त्रियाँ घर की चारदीवारी में कैद रहने के लिए मजबूर हुई शिक्षा से उन्हें वंचित होना पड़ा। इन सबो के परिणामस्वरूप स्त्रियों की दशा में गिरावट होती गयी। उनका जीवन अपने परिवार तक ही सीमित होकर रह गया। जन्म से मृत्यु तक पुरुषों के संरक्षण में ही रहने के लिए मजबूर किया गया। बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में बेटा।

21वीं सदी आते–आते महिला आन्दोलन में कई उतार चढ़ाव आये। बाजारवाद और खुली अर्थव्यवस्था ने स्त्री पुरुष के संबंधो के समीकरण को प्रभावित करना शुरू किया। महिलाओ ने सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर खुलकर अपनी भागेदारी पर सवाल उठाये साथ ही साथ समाज सुधारकों का ऐसा वर्ग तैयार हुआ जो स्त्री मुक्ति के लिए जन–जागरण आन्दोलन चलाया। समाज में मौजूद कुरीति और दोहरे मापदंडो की पोषक मान्यताओं के खिलाफ राजाराम मोहनराय (ब्रह्म समाज), केशवचन्द्र सेन (प्रर्थना समाज), दयानंद सरस्वती (आर्यसमाज), रामकृष्ण परमहंस (रामकृष्ण मिशन) तथा बालगंगाधर तिलक जैसे महापुरुष सामने आये और स्त्री मुक्ति के स्वर को बुलंद किया, समाज में मौजूद सतीप्रथा, बालविवाह, पर्दाप्रथा तथा स्त्री–पुरुष में असमानता का खुलकर विरोध किया। स्त्री और पुरुष के जिन भिन्न और परस्पर विरोधी गुणों की बात की जाती है वह उसका प्राकृतिक गुण नहीं मानव सभ्यता द्वारा बनाया गया है।

प्रभा खेतान अपनी पुस्तक 'उपनिवेश में स्त्री' में स्त्री की विशिष्टता को स्थापित करते हुए कहती हैं– "प्रत्येक स्त्री अपने आप में एक विशिष्ट स्त्री है। अपने जीवन जीने और होने के तरीके से वह अपना स्त्री होना स्थापित करती है। अत। स्त्रीत्व के नाम पर समाज उसके स्त्री होने के आचरण को अच्छा या बुरा कहने का अधिकार नहीं रखता और न पूर्वनिर्धारित ढंग से किसी भी भूमिका को उसपर आरोपित कर सकता है।"[2]

स्त्री एवं पुरुष दोनों ही समान हैं। प्रेम, विवाह का मूल्य, यौन आदि का मूल्य दोनों के लिए समान है जिसका निर्वहन दोनों करते हैं। लेकिन आज भी हमारे देश में लैंगिक असमानता की समस्या कायम है। भारतीय समाज और व्यवस्था में अब भी स्त्री समानता और अधिकार वास्तविक सन्दर्भों से बहुत दूर है फिर चाहे वो स्त्री के अधिकार की बात हो,पिता की संपत्ति में बेटियों के हक की हो, कार्यस्थल पर समानता की हो या समान कार्यों के समान वेतन की भुगतान हो हर स्तर पर असमानता है। वर्तमान में स्थिति विश्लेषण शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और राजनितिक प्रतिनिधित्व जैसे क्षेत्रों में प्रगति और निरंतर असमानताओं को प्रकट करता है। सिर्फ शब्द नहीं आंकड़े भी बहुत कुछ कहते हैं रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया द्वारा प्रदान की गई सुचना के अनुसार महिलाओं

की श्रम भागीदारी दर 2001 में 25.63 प्रतिशत थी। यह 1991 में 22.27 प्रतिशत और 1981 में 19.67 प्रतिशत की तुलना में वृद्धि है। (स्त्रोत–श्रम एवं रोजगार मंत्रालय भारत सरकार)

महिला शिक्षा में पूर्व की अपेक्षा पर्याप्त विकास हुआ है परन्तु फिर भी इस स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। स्त्री समाज की आधारशिला होती है, शिक्षित स्त्री परिवार और समाज को सही मार्गदर्शन देकर उसका सर्वांगीण विकास कर सकती है। इसलिए स्त्रीयों का शिक्षित होना अतिआवश्यक है। तभी वो अपने अधिकारों के प्रति सजग और अपनी गुलामी मानसिकता से बाहर निकल सकती हैं। बदलते दौर में नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ है वह अब घर की चारदीवारी एवं गृहणी की भूमिका से इतर भी अपनी पहचान विभिन्न क्षेत्रों में बखूबी निभा रही है मगर यह कितने प्रतिशत? ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाएँ पिछड़ी है, वे आज भी पुरानी मान्यताओं से बाहर नहीं निकली। ग्रामीण क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक ढांचा आज भी बहुत मजबूत है।

वर्तमान समय में बालिका भ्रूण–हत्या सबसे ज्यादा गंभीर मानवाधिकार हनन का मुद्दा है क्यूंकि इस प्रक्रिया के द्वारा मानव के उस प्राकृतिक अधिकार को ही छीन लिया जाता है जिसके बल पर उसे इस दुनिया में आने का अधिकार है द्य सारे मानवाधिकार कागजो पर धरे के धरे रह जाते हैं, आश्चर्य की बात तो तब होती है कि इस गुनाह में माता–पिता से लेकर परिवार और तथाकथित डॉक्टर भी शामिल रहते हैं। स्त्री भ्रूणहत्या के समर्थन में तर्क यह दिया जाता है की लड़कियों की सेना पालकर क्या होगा, ये तो पराये घर ही चली जाएँगी हमारे वंशवृक्ष की रक्षा तो लड़के ही करेंगें।

बलात्कार स्त्रियों के प्रति होने वाले अत्याचारों में सबसे घिनौना अपराध है, लेकिन हमारे भारत में घरेलु हिंसा की तादात बलात्कार के मामले से कहीं ज्यादा दोगुनी या तिगुनी है। कई बार तो दहेज भी घरेलू हिंसा का एक महत्वपूर्ण कारण बनता है। समाज एवं घर परिवार के द्वारा हिंसा को छिपाने और शादी को बचाए रखने का दवाब बनाता है। कई महिलाएँ तो ऐसी हैं जो बदनामी के डर से शिकायत तक नहीं करती, कई सालो तक लगातार हिंसा झेलने के बाद भी कुछ कहने की हिम्मत तक नहीं जूटा पाती। कई बार तो हिंसा इतनी बढ़ जाती है कि महिला को मानसिक या शारीरिक चोट के साथ–साथ उन्हें मजबूरन आत्महत्या करने कि नौबत तक आ जाती हैं। जिसे हम इन आकड़ो द्वारा समझ सकते हैं– घरेलू हिंसा– 1,13,403 / बलात्कार– 34,651 (स्त्रोत–रास्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो भारत सरकार)[3]

समाज में फैली कुप्रथाओं के चलते दहेज का स्वरुप दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। भारतीय समाज में चूँकि विवाह जाति के आधार पर होता है, इसलिए समान जातिवाले कन्या पक्ष की मजबूरी का नाजायज लाभ उठाते और शोषण करते है। दहेज दानव हमारे समाज के लिए आज भयंकर अभिशाप बन गया है। वास्तव में वरपक्ष को कन्या पक्ष से स्वेच्छा से मिलनेवाला उपहार

ही दहेज है, किन्तु इसे जबरन विवाह की बात पक्की करते समय एक मोटी राशि के रूप में लोग निर्धारित कर लेते हैं। तो वहीं दूसरी तरफ बाजारवाद ने भी स्त्रियों को प्रभावित किया है। स्त्री को इससे पहचान तो मिली, मगर दूसरी ओर पहचान के साथ उसकी यौनिकता और श्रम का वस्तुकरण हुआ है। विज्ञापन ने एक ओर उन्हें जीविकोपार्जन का विकल्प दिया तो वही दूसरी ओर उसके देह और सौन्दर्य का व्यवसायीकरण किया है। साथ ही साथ इस नव पूँजीवाद ने स्त्री के यौन वस्तुकरण को बढ़ावा दिया है जिससे बाजार में होड़ एवं प्रतियोगिता के साथ पश्चिमी पुरुष के मूल्यों का वर्चस्व बढ़ा है। पश्चिमी पुरुषों ने भारत को एक सेक्सी बाजार के रूप में प्रकट होते पाया है।[4] भूमंडलीकरण का प्रभाव स्त्रीयों के लिए जितनी लाभप्रद रहा उतना ही हानिकारक रहा। कम लागत में स्त्रीश्रम का उपलब्ध होना और उन्हें छटनी करने की सुविधा, उनका गैर संगठित होना। बाजार स्त्री को कोई दीर्घकालीन आश्वासन नहीं देता और न ही वेतन और कीमत की गारंटी।[5] फलस्वरूप भूमंडलीकरण से उत्पन्न प्रविधि के क्षेत्र में स्त्रियाँ पुरुष के समान दर्जा पाने में क्रमशः असमर्थ होती जा रही हैं।

इसके लिए हमें मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे में सुधार करना होगा। महिलाओं के व्यक्तित्व के हर आयाम के विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने होंगें। महिलाओं को स्वयं अपने प्रति नया दृष्टिकोण पैदा करना होगा। महिला सशक्तिकरण के दिशा में भारत एवं राज्य सरकारों द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं। अगर महिलाओं की सशक्तिकरण की रफ्तार इसी तरह रही तो महिलायें भी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर समाज के सर्वांगीण विकास में अपनी सहभागिता देंगी।

सन्दर्भ सूची –

1. स्त्री उपेछिता, प्रभा खेतान, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ट सं०–17
2. उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, पृष्ट सं०–130
3. स्त्रोत–राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड व्यूरो भारत सरकार
4. बाजार के बीच–बाजार के खिलाफ, प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, पृष्ट सं०–60
5. वही, पृष्ट सं०–7

■

पौराणिक वाङ्मय में तीर्थराज प्रयाग

डॉ. सिद्धार्थ सिंह* / संतोष पांडेय*

गंगा, यमुना तथा सरस्वती नदी के संगम पर स्थित प्रयागराज हिन्दू धर्म के सर्वाधिक पवित्र तीर्थ नगरों में से एक है। यहाँ पर अन्तर्वेदी के माधव, मध्यवेदी के माधव, बहिर्वेदी के माधव, अक्षयवट, प्रतिष्ठानपुरी, नागवासुकी, कम्बलाश्वर नाग, सांध्यवट, भोगवती, हंसप्रयतन, शेषतीर्थ, कोटितीर्थ, दशाश्वमेघ, उर्वशी कुण्ड, ऋणमोचनतीर्थ, सरस्वती कूप, बड़े हनुमान मन्दिर या लेटे हनुमान मन्दिर, मनकामेश्वर मन्दिर, अलोपी मन्दिर, भारद्वाज आश्रम जैसे अनेक छोटे–बड़े तीर्थस्थलों का विस्तृत साम्राज्य फैला हुआ है। सभी छोटे–बड़े तीर्थ स्थलों को स्वयं में समाहित कर लेने तथा त्रिवेणी संगम स्थल होने के कारण इसे तीर्थराज (तीर्थों का राजा) कहा गया। सर्वप्रथम ब्रह्मा जी ने यहीं पर प्रकृष्ट यज्ञ किया, इस कारण इसे प्रयाग कहा गया। यहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, देवाधिदेव शंकर तथा अन्य सभी देवी–देवता निवास करते हुए सर्वत्र इसकी रक्षा करते हैं इस कारण यह सर्वाधिक महत्व का धार्मिक नगर कहा जा सकता है। यह क्षेत्र लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन को उत्तम बनाने की दृष्टि से कल्याणकारी व महत्त्वपूर्ण है। कुम्भ, अर्द्धकुम्भ तथा माघ मेले जैसे धार्मिक आयोजन इस नगर के महत्व को कई गुना बढ़ा देते हैं।

वाङ्मय का शाब्दिक अर्थ है– किसी भाषा में निहित सम्पूर्ण साहित्य। पौराणिक वाङ्मय अथवा पौराणिक साहित्य की संख्या 18 बताई गई है, इन्हें मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्म पुराण, वाराह पुराण, लिंग पुराण, शिव पुराण, स्कन्द पुराण, विष्णु पुराण, वामन पुराण, भविष्य पुराण, गरूण पुराण, अग्नि पुराण, भागवत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, नारद पुराण के नाम से जाना जाता है। इन अष्टादश पुराणों का भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान है, इन्हें भारतीय संस्कृति का विश्वकोष कहा जा सकता है। इनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि विषयों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त होते हैं। इन पौराणिक वाङ्मयों में अनेक प्रकार के तीर्थस्थलों का वर्णन मिलता है, इनमें भी गंगा, यमुना, अदृश्य सरस्वती नदी के संगम पर स्थित

* संपर्क : डॉ. सिद्धार्थ सिंह, सहा. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, तिलकधारी पी.जी. कॉलेज, जौनपुर (उ.प्र.)/ संतोष पांडेय, शोध छात्र, पंडित सुन्दरलाल मेमोरियल डिग्री कॉलेज, कन्नौज छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

प्रयाग का सर्वाधिक महत्व रहा है। इसे तीर्थराज, प्रयागराज, प्रयाग, कुम्भनगरी, संगम नगरी इत्यादि नामों से सम्बोधित किया जाता है। ये तीर्थस्थल भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जन–जीवन का अभिन्न अंग प्रतीत होते हैं। ये प्राचीन काल से भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँध सकने में सहायक रहे हैं। तीर्थ मुख्य रूप से वे पवित्र स्थल हैं जहाँ पर निवास करने वाले लोगों के आचार–विचार तथा व्यवहार में पूर्ण सात्विक भावना विराजमान रहती है। इस स्थान का महत्व इतना अधिक होता है कि वहाँ पर जाने मात्र से ही व्यक्ति के विचार सत्य की तरफ उन्मुख हो जाते हैं, वे धार्मिक तथा पुण्यप्रदायी कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं। यह समस्त वातावरण ही सात्विकता से ओत–प्रोत प्रतीत होता है। यहाँ पर आने वाला व्यक्ति स्वयं ही इसी माहौल में ढलने लगता है इसी कारण पुराणों में तीर्थयात्रा को विशेष आदर की दृष्टि से देखा गया है। पद्मपुराण में तीर्थ यात्रा के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि–

'तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः, यद्दर्शनं नृणां पापराशिं दहति तत्क्षणे।।
तस्मात् तीर्थेषु मन्तव्यं नरैः संसारभीरूभि, पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणिविराजिषु।।1

यदि यह समझा जाए कि घूमने–फिरने, मनोरंजन करने के उद्देश्य से किसी भी तीर्थयात्रा पर जाने से हमें पुण्य प्राप्त हो जाएगा तो ऐसा नहीं है। पद्म पुराण के अनुसार जो व्यक्ति सम्पूर्ण विधान पूर्वक तीर्थ यात्रा करता है, जिसके हाथ, पैर व मन भलीभाँति सुसंयत हों वही विद्या, तप, कीर्ति तथा फल का भागी होता है–

विधिना गच्छतां नृणां फलावाप्तिर्विशेषता, तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तीर्थयात्रा विधिं चरेत्।
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चौव संसयतम्, विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।2

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड के अनुसार जो कोई काम, क्रोध, लोभ को छोड़कर तीर्थ में प्रविष्ट होता है, उसे ही तीर्थ यात्रा करने का अधिकार है–

अक्रोधनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः, आन्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते।।

इस संसार में हिन्दू धर्म की दृष्टि से जितने भी पवित्र तीर्थ स्थल हैं उसमें भारत भूमि में स्थित प्रयाग को सर्वाधिक पवित्र माना जाता है। प्रयाग शब्द 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'यज' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बनता है। स्कन्दपुराण के अनुसार इस स्थान पर ब्रह्मा जी ने प्रकृष्ट यज्ञ किया। इस कारण इसे प्रयाग कहा जाता है– प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति गीयते।[3]

हिन्दू धार्मिक मान्यता के अनुसार सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा जी ने सृष्टि का निर्माण पूर्ण कर लेने के पश्चात यहाँ पर सर्वप्रथम यज्ञ किया। इसी प्रथम यज्ञ के 'प्र' और 'याग' (यज्ञ) के सन्धि के परिणामस्वरूप प्रयाग नाम प्रचलित हुआ। इस पवित्र नगरी का निर्माता स्वयं भगवान विष्णु को बताया जाता है, वे यहाँ वेणीमाधव रूप में सदैव विराजमान रहते हैं। प्रयाग को तीर्थराज भी कहा जाता है क्योंकि यह गंगा, यमुना व सरस्वती नदी के संगम तट पर स्थित है–

सितासिते सरिते यत्र सं थे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पत्ति।

ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।।

पद्मपुराण के अनुसार जिस प्रकार सभी ग्रहों में सूर्य तथा नक्षत्रों में चन्द्रमा सर्वश्रेष्ठ है, ठीक उसी प्रकार सभी तीर्थों में प्रयाग सर्वश्रेष्ठ है–

ग्रहाणां यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।

तीर्थानामुत्तमम तीर्थ प्रयागख्यमनुत्तमम्।।

इसमें तीर्थराज प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन करते हुए 'से तीर्थ राजो जयति' कहकर सम्बोधित किया गया है–

ब्राह्मी न पुत्री त्रिपथागास्त्रिवेणी सभागमेनासत् योगमात्रं।

यत्राप्लुता न ब्रह्म पद नयन्ति, सतीर्थराजो जयन्ति प्रयाग।।[4]

अर्थात् गंगा, यमुना, सरस्वती का जहाँ पवित्र संगम है, जहाँ पर स्नान करने से व्यक्ति ब्रह्म पद की प्राप्ति कर लेता है, ऐसे तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

अग्नि पुराण में इसे 'पृथ्वी की जंघा' कहकर पुकारा गया है। ठीक इसी प्रकार मत्स्य पुराण में प्रयाग माहात्म्य का वर्णन करते हुए इसे 'सर्वाधिक पूजनीय' कहा गया है–

तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयाग पूजयेद् बुधः। पूज्यते तीर्थ राजस्तु सत्यमेव युष्ठिर।[5]

प्रयाग में प्रत्येक वर्ष कुम्भ, 12वें वर्ष महाकुम्भ तथा प्रति 6ठवें वर्ष अर्द्धकुम्भ का आयोजन इसकी महत्ता को कई गुना बढ़ा देता है। नारदपुराण के अनुसार जब मकर राशि में सूर्य का प्रवेश होता है तथा वृष राशि में वृहस्पति प्रवृष्ट होता है, उस समय प्रयाग में दुर्लभ कुम्भ का योग बनता है–

मकरे च दिवानाथे वृषगे च बृहस्पतौ, कुम्भयोगो भवेतत्व प्रयाग हयति दुर्लभम्।[6]

इस कुम्भ पर्व का आयोजन प्रत्येक वर्ष माघ के महीने में किया जाता है, जब सूर्य, चन्द्रमा मकर राशि में चले जाते हैं लेकिन महाकुम्भ उस समय लगता है जब 12 वर्ष बाद वृहस्पति के क्रान्तिवृत्तीय परिक्रमा के पश्चात 13वें वर्ष में पुनः मेष राशि में आने पर चन्द्रमा व सूर्य मकरराशि में चले जाते हैं। धार्मिक मान्यता के अनुसार मकर राशि पर सूर्य के संचार के समय समस्त देवी–देवता तथा समस्त तीर्थ इसमें आकर विलीन हो जाते हैं। ऋग्वेद में कुम्भ पर्व को सभी प्रकार के पापों का नाशक बताया गया है–

जघान वृत्रं स्वधितिबनेव सरोज पुरो अदन्न सिन्धुना।

विभेद गिरिं–नवभिन्न कुम्भनाम इन्द्रो स्वयुग्भिः।।[7]

वैदिक ग्रन्थों में कुम्भ पर्व को शारीरिक सुख प्रदान करने वाला बताया गया है–

कुम्भो वनिंष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोन्तः।

रताशिर्व्यक्तः शताधाऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधा पितृभ्यः।।[8]

कुम्भपर्व का आयोजन प्रयाग, नासिक, उज्जैन, हरिद्वार जैसे स्थलों पर ही किया जाता है। मत्स्य पुराण के अध्याय 104 में तीर्थराज प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा गया कि प्राचीन काल में प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर से वासुकिहदतकका भाग जहाँ कम्बल तथा अश्वतर बहुमूलक नामधारी नाग निवास करते थे जो तीनों ही लोकों में प्रजापति के नाम से पहचाने जाते थे। इस स्थान पर स्नान करने वाला व्यक्ति मृत्यु के पश्चात स्वर्ग लोक में स्थान प्राप्त करता है। यहाँ पर ब्रह्मा इत्यादि देवता संगठित होकर लोगों की रक्षा करते हैं। इस क्षेत्र में कई तीर्थस्थान है जिनका वर्णन सौ वर्ष में भी नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर 60,000 वीर धनुर्धर गंगा की रक्षा करते हैं तथा सात घोड़ों से युक्त रथ पर आसीन सूर्य देव यमुना की देखरेख करते हैं। भगवान श्रीहरि विष्णु तथा देवताओं के राजा इन्द्र पूरे प्रयाग क्षेत्र की रक्षा करते हैं।[9] महेश्वर सदा इस स्थान पर स्थित वट वृक्ष की रक्षा करते हैं। इस क्षेत्र की भूमि स्वर्णमयी तथा वृक्ष इच्छानुरूप फल देते हैं। यहाँ पर गौ दान का विशेष महत्व है। गौ को गंगा–यमुना के संगम पर ऐसे ब्राह्मण को दान करना चाहिए जो सफेद वस्त्र धारण करता हो, वेदों का प्रकाण्ड विद्वान हो, धर्मज्ञ हो तथा शान्त स्वभाव का हो। इस प्रकार विधि विधान के अनुसार गौ दान करने वाला, गौ के शरीर में जितने रोयें होते हैं, उतने वर्षों तक स्वर्ग लोक में सुखपूर्वक निवास करता है।[10] मत्स्य पुराण के अनुसार दुर्गम स्थान पर विपरीत परिस्थिति में महापातक के घटित हो जाने पर केवल गाय ही रक्षा कर सकती है, इस कारण व्यक्ति को श्रेष्ठ ब्राह्मण को गौ दान देना चाहिए तथा गौ दान, स्वर्ण, मोती, मणि जैसी बहुमूल्य सामग्री का दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण को भी अत्यधिक सावधान रहना चाहिए क्योंकि जब तक उसके पास इस प्रकार की सामग्री रहती है तब तक दान ग्रहणकर्ता के सारे तीर्थ विफल रहते हैं।

मत्स्य पुराण में प्रयाग की ही भाँति प्रयाग के समीपवर्ती अनेक तीर्थ स्थलों का विस्तृत रूप में वर्णन प्राप्त होता है। एक स्थान पर ऋषि मार्कण्डेय युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि प्रयाग में यात्रा करके, यहाँ की पवित्र नदियों में स्नान करके मुनष्य अपनी आगे व पीछे की कई पीढ़ियों का उद्धार कर देता है। जो व्यक्ति इस क्षेत्र में स्नान आदि करता है, वह अश्वमेघ यज्ञ के बराबर पुण्य प्राप्त करता है तथा प्रलय के पश्चात स्वर्गलोक में निवास करता है। गंगा नदी के पूर्वी तट पर तीनों ही लोकों में प्रसिद्ध समुद्रकूप तथा प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) है। प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) से उत्तर दिशा की तरफ हंसपतन नाम का तीर्थ स्थल है, यह तीनों ही लोकों में प्रसिद्ध है। यहाँ पर स्नान कर लेने से भी व्यक्ति अश्वमेघ यज्ञ के बराबर पुण्य प्राप्त करता है तथा सूर्य, चन्द्रमा की स्थितिपर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति विशाल हंसपाण्डुर एवं उर्वशीरमण नामक तीर्थस्थलों पर अपने प्राणों का त्याग करता है, वह भी दुर्लभ फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति तीर्थराज प्रयाग में सफेद वस्त्र पहनकर तथा जितेन्द्रिय होकर महीने भर एक समय भोजन ग्रहण करता है, वह प्रत्येक जन्म में चक्रवर्ती

सम्राट होता है। उसे स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित अनेकों स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं।

गंगा तो सर्वत्र सुलभ है परन्तु गंगाद्वार प्रयाग में तथा गंगासागर संगम में दुर्लभ कहीं गई है। इन क्षेत्रों में स्नान करने वाला व्यक्ति स्वर्गलोक चला जाता है तथा यहाँ पर प्राण त्यागने वाला पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है। जिन लोगों का चित्त पाप से आच्छादित है तथा वे उससे मुक्ति पाने के लिए प्रयासरत हैं, उन सभी लोगों के लिए गंगा के समान कोई अन्य सर्वसुलभ साधन नहीं है। भगवान महेश्वर के जटाजूट से निकली मंगलकारी गंगा समस्त पापों का नाश करने वाली है, यह पवित्रों में भी परमपवित्र तथा मंगलों में मंगलस्वरूपा हैं।[11] गंगा नदी के उत्तरी तट पर मानस तीर्थ है, यहाँ पर तीन दिन तक बिना अन्न जल के उपवास रहने वाले व्यक्ति की सभी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। मानस तीर्थ के स्मरण मात्र से गौ, पृथ्वी, सुवर्ण दान करने के बराबर पुण्य प्राप्त होता है। जो व्यक्ति निष्काम भाव से गंगा नदी में डूबकर मृत हो जाता है, उसे नरक का दर्शन ही नहीं करना पड़ता है बल्कि वह तो हंस व सारस से युक्त विमान पर आसीन होकर स्वर्गलोक चला जाता है।[12] प्रयाग के दक्षिण की तरफ तथा यमुना नदी के उत्तरी तट पर ऋणमोचन नामक तीर्थस्थल है, यह परमश्रेष्ठ तीर्थस्थल है। यहाँ पर एक रात्रि निवास कर स्नान करने से व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा सदैव के लिए स्वर्गलोक चला जाता है। विश्वासघाती व्यक्ति भी यदि प्रयाग में आता है तो वह भी समस्त धन–धान्य से परिपूर्ण होकर अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है। यमुना नदी के पश्चिम में धर्मराज तीर्थ तथा दक्षिण में अग्नितीर्थ नामक तीर्थस्थल है, यहाँ पर स्नान करके व्यक्ति स्वर्ग को चला जाता है। यमुना नदी के उत्तरी तट पर महात्मा सूर्य का नीरूजक नामक तीर्थ है। यहाँ पर देवराज इन्द्र सहित समस्त देवता त्रिकाल संध्योपासना करते हैं। गंगा तथा यमुना दोनों ही नदियाँ समान पुण्य प्रदान करती हैं, ज्येष्ठ होने के कारण सर्वत्र गंगा की ही पूजा की जाती है। मत्स्य पुराण के अनुसार जो व्यक्ति श्राद्धहीन है, जिसके चित्त में पाप ने सत्व जमा लिया है, ऐसे पापी मनुष्य के सामने प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन करना उचित नहीं है। जो व्यक्ति समस्त प्रकार के रत्न ब्राह्मणों को देता है उसे भी उतना पुण्य नहीं प्राप्त होता है, जितना कि प्रयाग में निवास करने तथा मृत्यु प्राप्त करने पर होता है। यहाँ पर ब्रह्मा सभी प्राणियों में निवास करते हैं तथा ब्राह्मणों में उनका कुछ विशेष अंश पाया जाता है जिसके कारण वे सब ब्रह्मा कहे जाते हैं।[13]

प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन करते हुए आगे कहा गया कि नैमिषारण्य, पुष्कर, सिन्धुसागर, गोतीर्थ, गया तीर्थ, धेनुक, गंगा सागर तथा तीन करोड़ दस हजार अन्य तीर्थ प्रयाग के अन्तर्गत आ जाते हैं। यहाँ पर तीन अग्निकुण्ड हैं जिनके बीच से समस्त तीर्थों द्वारा सम्मानित परमपवित्र गंगा नदी प्रवाहित होती है। यहाँ पर लोक भाविनी सूर्य देवी की पुत्री यमुना गंगा के साथ मिलकर प्रवाहित होती हैं। गंगा तथा यमुना का यह मध्य भाग पृथ्वी का जघन्य स्थल कहलाता है। अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक सभी मिलकर प्रयाग में विद्यमान गंगा की

16वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते हैं। प्रयाग स्थित झूँसी में कम्बल तथा अश्वतर नामक दो नागों का निवासगृह है। यहाँ पर देवता, चक्रवर्ती सम्राट इत्यादि यज्ञों के माध्यम से यजन करते हैं। तीनों ही लोकों में प्रयाग के समान कोई अन्य तीर्थ नहीं हैं। यह स्वर्गप्रद, सत्य, सुखदायी, पुण्यदायी, धर्म स्वरूप, धर्म सम्पन्न तथा समस्त पापों का नाशक है। ज्ञान योग तथा तीर्थ प्राप्ति का संयोग दुर्लभ होता है, इसके संयोग से व्यक्ति को परमपद (मोक्ष्य) की प्राप्ति होती है।[14] प्रयाग में ये दोनों ही उपलब्ध होने के कारण यह अत्यधिक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है।

प्रयाग के अविनाशी स्वरूप का वर्णन करते हुए ऋषि मार्कण्डेय जी कहते हैं कि प्रयाग का मण्डल पाँच योजन तक विस्तृत है। इस स्थान पर देवतागण पापकर्म का नाश तथा प्राणियों की रक्षा करते हैं। यहाँ पर प्रतिष्ठानपुर से उत्तर की तरफ गुप्तरूप में ब्रह्मा जी, वेणीमाधव रूप में विष्णु जी, अक्षयवट के रूप में देवाधिदेव शंकर निवास करते हैं। इसके साथ–साथ गन्धर्वसहित देवतागण, कई धनुर्धर वीर योद्धा प्रयाग की रक्षा में सदैव तत्पर रहते हैं। इस प्रकार प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर सातों द्वीप, सातों समुद्र तथा पृथ्वीतल पर स्थित समस्त पर्वत उसकी रक्षा करते हुए प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। यहाँ पर धर्मराज युधिष्ठिर अपनी पत्नी द्रौपदी तथा समस्त भाईयों के साथ ब्राह्मणों को नमस्कार कर, गुरूजनों तथा देवी–देवताओं को तर्पण द्वारा सन्तुष्ट किया, ठीक उसी समय भगवान वासुदेव भी वहीं आ पहुँचे, अब सभी पाण्डवों ने मिलकर वासुदेव श्रीकृष्ण की पूजा की। अब मार्कण्डेय ऋषि समेत सभी महात्माओं तथा भगवान श्री कृष्ण युधिष्ठिर समेत उनके भाई व द्रौपदी को आशीर्वाद दिया। इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों संग वहीं पर निवास करने लगे। प्रयाग के महात्म्य का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कहा गया कि जो व्यक्ति प्रातः काल उठकर इस माहात्म्य का पाठ करता है एवं नित्य तीर्थराज प्रयाग का स्मरण करता है, वह परमपद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तथा सभी प्रकार के पापों से मुक्ति पाकर भगवान शिव के लोग में निवास करता है।[15] भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण जी प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रयाग की यात्रा करता है अथवा वहाँ पर निवास करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर रूद्रलोक को चला जाता है, जो प्रतिगृह से विमुख, सन्तृप्त, जितेन्द्रिय, पवित्र तथा अहंकार से दूर रहता है, उसे इस तीर्थफल की प्राप्ति होती है। जो क्रोध रहित, सत्यवादी, ईमानदार, दृढ़निश्चयी तथा समस्त प्राणियों के साथ समान व्यवहार करता है वह इस तीर्थफल का भागी होता है। इस पुण्यप्रदायी तीर्थ की यात्रा ऋषि–मुनियों क लिए अत्यधिक गोपनीय तथा यज्ञों से भी बढ़कर फलदायक है।[16]

निष्कर्ष– प्रयाग तीर्थों का राजा है इसी कारण इसे तीर्थराज प्रयाग कहा जाता है। ब्रह्मा जी द्वारा सर्वप्रथम यहीं पर प्रकृष्ट यज्ञ सम्पन्न किए जाने के कारण इस क्षेत्र का नाम प्रयाग पड़ा। गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती नदी का

मिलन स्थल होने के कारण यह संगम नगरी अथवा संगम क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ पर अनेक छोटे–बड़े तीर्थ स्थल विस्तृत रूप में फैले हुए हैं जिसे देखने के लिए न सिर्फ देश के कोने–कोने से बल्कि विदेशों से भी लोग आते हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश समेत सभी देवी–देवता सदैव इस क्षेत्र में निवास करते हुए इसकी रक्षा करते हैं। इस क्षेत्र की यात्रा करना, यहाँ की पवित्र नदियों में स्नान करना तथा यहाँ पर गौ इत्यादि का दान देना अत्यधिक मंगलकारी है। इस पवित्र तीर्थस्थल की यात्रा करने वाला, यहाँ पर निवास करने वाला एवं यहाँ पर मृत्यु प्राप्त करने वाला मनुष्य जीवन–मरण के बन्धन से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है। हजारों किमी0 दूर से भी इस क्षेत्र का स्मरण मात्र करने वाला व्यक्ति भी धन–धान्य से परिपूर्ण हो जाता है तथा मृत्यु के पश्चात स्वर्गलोक में निवास करता है।

संदर्भ सूची–

1. पद्म पुराण, 19,16–17
2. वही, 13, 23–24
3. स्कन्द पुराण, काशीखण्ड, 7–49
4. पद्म पुराण, 6, 23, 34
5. मत्स्य पुराण, 105, 55
6. नारद पुराण, 2, 63, 7
7. ऋग्वेद, 10, 83, 7
8. शुक्ल यजुर्वेद, 19, 87
9. मत्स्य पुराण, 104, 1–9
10. वही, 105, 12–23
11. वही, 107, 28–56
12. वही, 108, 1–6
13. वही, 109, 1–17
14. वही, 109, 110
15. वही, 112, 1–22
16. वही, 181, 1–32

■

संतकाव्य में मानवीय मूल्य की अवधारणा

गीता कुमारी*

आज अगर मूल्यों की बात करें तो लगता है कि, जैसे मजाक उड़ाया जा रहा है। प्रायः जब मूल्यों की बात आती है तो हम कहते है कि सच्चाई ईमानदारी आदि। सबसे पहले यह जानना है कि मूल्य है क्या ? जीवन में इन मूल्यों पर चलकर ही किसी भी घर, समाज एवं देश के चरित्र की निर्माण होता है। मूल्य यानी जीवन के रास्ते को तय करने के लिए कुछ मूलभूत आधार या हमारे आदर्श जो हमारे जीवन को उन्नत करे। जो व्यक्ति अपने जीवन के मूल्यों पर अडिग रहता है वह कभी भी भय में नहीं जीता, वह निर्भय, और आत्मविश्वास से पूर्ण रहता है। अतः जीवन में मूल्य, एक रक्षा कचव की भांति होते है जो हमें बाहर विपरीत परिस्थितियों का सामना करने की प्रेरणा देता है।

संत काव्य में मानवीय मूल्य पर विचार करने से पूर्व संतो के आविर्भाव एवं तत्कालीन परिवेश पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। संतो का अविर्भाव मध्यकाल में हुआ, जब सामन्ती समाज टूटने लगा था और पूँजीवादी समाज उभरने लगा था एवं तत्कालीन समाज, राजनीतिक अव्यस्था और सामाजिक दुर्व्यवहार के दो पाटों के बीच में पिस रहा था। सन्तों का चित्तयुगान्तकारी चेतना से प्रज्जवल प्रमुदित था। उनके इसी युगान्तकारी रूप के कारण समीक्षकों ने भी उन्हें समाज सुधारक माना। लेकिन ये कुशल समाज के राष्ट्रप्रहरी भी थे। संत कवियों का जन जीवन से सीधा संबंध था इसलिए उनके कण्ठ से वैसी ही वाणी फूटी जिसमें उनके जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति सम्मिलित थी क्योंकि वे आखिन देखी पर विश्वास करते थ। संतों ने तत्कालीन परिस्थतियों से जूझते हुए लोकमंगल में अपने संदेशों को वाणी के माध्यम से प्रचार प्रसार किया।

संत काव्य जनता के प्रेम घृणा, वेदना और आशाओं का दर्पण है। उनका यह मानव मूल्य सामाजिक यथार्थ से उपजा है और इन मानव मूल्यों का मूलस्रोत लोकजीवन है। संतों ने वास्तव में जनमानस का नेतृत्व किया जिनका मुख्य उदेश्य सम्पूर्ण मानवता का सांस्कृतिक अभयुत्थान करना था साथ ही साथ उन मानव मूल्यों की स्थापना की जो प्रत्येक युग में पथ प्रदर्शक एवं प्रेरणास्पद बन गये।

* संपर्क : geetakumaritra@gmail.com

इनके काव्य में निहित मानवीय मुल्य इस प्रकार द्रष्टव्य हैं:–

प्रेम से संबंध में संत का यह कहना है कि प्रेम हृदय से होता है बुद्धि से नहीं। संतों ने प्रेम को जीवन की उच्चतम एवं उदात्त अनुभूति माना है। संत कबीर मानते है कि प्रेम की प्राप्ति होने पर साधक का अंहभाव समाप्त हो जाता है। जिससे उसे मन में किसी के प्रत्ति बैर–भाव नहीं होता। तथा लौकिक सिद्धान्तों कि बेडियों भी टूट जाती हैं। 'जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि ब्यौहार। प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि बार ।।' [1.]

संत दादूदयाल ने यहाँ पति और पत्नी के रूपक द्वारा प्रेम का महत्व बताया है कि प्रेम हीन पत्नी कितना भी श्रृंगार कर ले वह सौर्य से पूर्ण नहीं होगी जिस प्रकार जीवात्मा स्वयं से प्रेम नहीं करती है तो वह परमात्मा रूपी भरतार से कैसे प्रेम कर सकेगी। आत्मा परमात्मा का ही अंश है इसलिए स्वयं से प्रति से ही ईश्वर से प्रीति होगी। इसके अतिरिक्त संसार के सभी जीवधारियों से प्रेम करना चाहिए तभी परमात्मा के प्रेम के पात्र बन पाएंगें अन्यथा प्रेम के बिना संसार का श्रृंगार मिथ्या भासित होगा। जैसे– 'प्रेम प्रीति इस नेह बिन, सब झूठे सिंगार। दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भरतार ।।' [2.]

मध्यकालीन समाज मिथ्यावादी था सत्य की महत्ता को भूल चूका था। चारों तरफ असत्य का ही बोल बाला था संत कवियों की दृष्टि सर्वप्रथम इसी पर गई उन्होंने स्वयं के जीवन में इस तथ्य को उतारते हुए समाज के समक्ष इसकी वास्तविकता को उद्घाटित किया कि वास्तविक सुख का आधार सत्य ही होता है। सत्यवादी मनुष्य को दुःख एवं क्लेश की कोई चिन्ता नहीं रहती वह तो अपने सत्य की धुन में मग्न रहता है। संत कबीर कहते है–

'सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साच हैं, ता हिरदै गुरू आप।।'[3.]

अर्थात् इन्होंने सच को तप के समान महान माना है। संत दादूदयाल ने सत्य को ईश्वर का पर्याय माना है इसलिए सत्य रूपी ईश्वरीय नौका पर आरूढ मनुष्य को संबोधित करते है जैसे साचा नाँव अलाह का सोई सति करि जाणि।

समता एवं सहकार की भावना लोकमंगल का एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है संत कवियों ने मुक्त हृदय से समता एवं अभेद दृष्टि का प्रचार–प्रसार किया। संत कवियों ने समतामूलक समाज की कल्पना की। उनक मत से समदृष्टि ही विश्व बंधुत्व की प्रथम भूमिका है। उनके विचार से लोगों को ऐसा व्यवहार, आचरण में लाना चाहिए। जिससे भेदभाव दूर हो।

संत कबीर अपने दोहे समाज में होने वाले भेदभाव का विरोध करते हुए कहते है कि यदि सभी मनुष्य सृष्टि के सभी प्राणी पंच तत्वों से बने हैं एक ही मिट्टी के बर्तन, एक ही नूर से उपजे हैं एक ही प्रभू की सन्तान है एक ही परमात्म स्वरूप के अंश हैं तो फिर यह छुआछूत, ऊँच–नीच का भेदभाव क्यों?

जैसे 'ऊँच–नीच है मधिम बानी, एकै पवन एक है पानी।

एकै मटिया एक कुंभारा, एक सभिन्ह का सिरजनहारा ।।'[4.]

संत कवियों ने अपने काव्य में धार्मिक एकता एवं सहभावना की बात कही है जो उस समय की आवश्यक माँग थी। उस समय में हिन्दू और मुसलमान में धर्म के मध्य वैमनस्य की खाई थी। इस संदर्भ में कबीर कहे हैं कि–

'कहै, कबीरा, दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई।

हिन्दू तुरक का करता एकै ता गति लखीन जाई ।।' [5.]

संत दादूदयाल जी ने कहा है कि हिन्दू मुसलमान दोनों के शरीर में एक ही आत्मा का वास है–

'सब हम देखया सोधिकर, दूजा नाहि आन।

सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ।।'[6.]

अहिंसा ही परम धर्म है, वही तपस्या और परम सत्य भी है। अर्थात् किसी भी जीव के प्रति हिंसा की दृष्टि न हो।

संत कबीर ने अहिंसा की भावना का प्रचार किया था केवल जीवों की हत्या नहीं थी अपितु कटुक वचन भी हिंसा में समाहित होता है–

घट–घट में वही साई रमता। कटुक वचन मत बोल रे।।'[7.]

इसके अतिरिक्त मलूकदास तो यहाँ तक मानते है कि वनस्पतियों तक को हानि पहुँचना हिंसा है। इनमें जीवों का अंश है।

'जैसे– हरि डारि ना तोडए, लोग छूरा बान।

दास मलूका यों कहैं, अपना सा जिव जान।'[8.]

आंतरिक शुद्धता के लिए मनुष्य को क्षमावान और दयावान होना अनिवार्य है। जीवों एवं दीन दुखियों के प्रति दया भाव का प्रसार करना आचरण की प्रथम कसौटी है। इस धरती पर सभी प्राणी एक ही ईश्वर द्वारा भेजे गये हैं। फिर सबल, निर्बल को जीने क्यों नहीं देता?

कबीर ने दया की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है–

'जहाँ दया तहें धर्म है, जहाँ लोभ तहें पाप।

जहाँ क्रोध तहें काल है, जहाँ छिमा तहें आप।।'[9.]

'दया पौद सूखे नहीं, छिमा सींच जल ढार।।'[10.]

मलूक दास कहते है कि दया की भावना के ही कारण वाणी में अमृतोपम मधूरता आती है। जैसेः– दया धर्म हिरदै बसै, बोले अमृत चौन। तई ऊँचे पनिये, जिनके नीचे नैन।।

संतों ने स्वार्थ को हेय और है। संत कबीर कहते है :– त्याज्य बताते हुए

परमार्थ परोपकार की व्यापक प्रतिष्ठा की।

'वृच्छ कबहुँ नहि फल भखै, नदी न संधै नीर।

परमास्थ के कारने, साधन धरा शरीर।।'

मलूकदास ने परोपकार की भावना से प्रेरित होकर लोगो को उपदेश दिया है कि संसार के संतप्त प्राणियों के दुःखों को दूरे करके उन्हें सुख प्रदान करना चाहिए जैसे– 'जो दुखिया संसार में, सोवो तिनका दुक्ख। दलिंदर सौंप मलूक को लोगन दीजै सुक्ख।।'

वाणी और क्रिया की समानता ही कथनी और करनी की एकता है। समाज में कथनी और करनी का अभाव हो गया था इसलिए संतों ने कथनी के सामंजस्य पर अधिक बल दिया। जिनकी कथनी और करनी में अन्तर पाया उन्हें, जो कुछ बुरा–भला कह सकते थे उसमें उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ा। कबीर ने व्यक्ति मात्र को कथनी का त्याग कर, करनी पर बल देने को कहा है–

'कथनी थोथी जगत में, करना उत्तम सार। कह कबीर करनी, सबल और औजत पार।।'

संत कवि मन पर नियंत्रण की बात करते हैं क्योंकि मन चंचल होता है मन के नियंत्रण न होने पर मनुष्य का जीवन अनके विपदाओं एवं कठिनाईयों से भर जाता है। कबीर कहते है–

'मन के मते न चलिये, मन के मते अनके । जो मन पर असवार है, सौ साधू कोई एक।।'

अर्थात् मन के अनुरूप चलने से यह हमें उच्छृंखल बना देता है, इसे विवेकपूर्वक प्रयोग करना चाहिए क्योंकि मन में असंख्य विचार उठते हैं और विलय हो जाते हैं तथा इस पर नियंत्रण आवश्यक है। मन को वश में रखने का सामर्थ्य जो रखते है ऐसे मनुष्य बिरले होते है इसलिए इसे सतत् अभ्यास से नियंत्रित किया जा सकता है।

उपर्युक्त विशलेषण से ज्ञातव्य हुआ कि संत काव्य मानवतावादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति है। दुखी जनों की पीडा की अनुभूति कना तथा मनव धर्म की स्थापना करना है। इसके अलावा यह बोध हुआ कि संत कवियों ने अपने काव्यों में मानवीय मूल्यों को उद्घाटित कर समाज को मार्गदर्शन प्रदान किया है जिस पर चलकर व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक कर सकता है। यदि दन मानवीय मूल्यों को मनुष्य अपने जीवन में अनुसरण करता है तो न केवल वह अपने जीवन को विकसित कर पायेगा अपितु वह सुदृढ एवं सभ्य समाज को प्रतीष्ठित करने में अपना योगदान भी दे पायेगा। क्योंकि संत काव्य को हमारी संवेदना को मानवीयता से जोड़ता है।

संदर्भ सूची :

1. संत साहित्य और लोकमंगल की भावना डॉ ओमप्रकाश त्रिपाठी लोक भारती प्रकाशन– वर्ष 1993 पृष्ठ संख्या 30
2 दादू की बानी, भाग– 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद वर्ष 2009, पृष्ठ संख्या– 30
3. कबीर साखी संग्रह भाग 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद– वर्ष 2011, पृष्ठ संख्या– 07
4. दादू की बानी भाग– 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद– वर्ष 2009 पृष्ठ संख्या– 13
5. कबीर अनुशीलन स० प्रेम शंकर त्रिपाठी श्री बाड़ा बाजार, कुमार सभा पुस्तकालय कलकत्ता– वर्ष 2000, पृष्ठ संख्या– 90
6. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुन्दर दास पृष्ठ संख्या– 83
7. दादू की बानी भाग– 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद– वर्ष 2009, पृष्ठ संख्या– 29
8. संत– साहित्य और लोकमंगल की भावना, डॉ ओम प्रकाश त्रिपाठी लोकभारती प्रकाशन– वर्ष 1993 पृष्ठ संख्या– 30
9. संत– साहित्य और लोकमंगल की भावना, डॉ ओम प्रकाश त्रिपाठी लोकभारती प्रकाशन– वर्ष 1993 पृष्ठ संख्या–30
10. कबीर साखी संग्रह– भाग 1 और 2 बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद– वर्ष– 2011, पृष्ठ संख्या– 138
11. कबीर हजार प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन वर्ष 2020, पृष्ठ संख्या– 181
12. मलूकदास की बानी– वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद वर्ष 2011 पृष्ठ–33
13. कबीर साखी संग्रह भाग 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद– वर्ष 2011 पृष्ठ संख्या 119
14. मलूकदास की बानी– वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद वर्ष 2011, पृष्ठ संख्या– 33
15. कबीर साखी संग्रह भाग 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद– वर्ष 2011, पृष्ठ संख्या–78,
16. कबीर साखी संग्रह भाग 1 और 2 वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद– वर्ष 2011, पृष्ठ संख्या 146
17. अकथ कहानी प्रेम की पुरुषोत्तम अगवाल राजकमल प्रकाशन वर्ष 2019

■

झारखंड के भद्रकाली मंदिर में

धार्मिक क्रियाकलाप का मानवशास्त्रीय अध्ययन

लखेन्द्र प्रजापति *

प्रस्तुत शोध पत्र भद्रकाली मंदिर में विभिन्न अवसरों पर आयोजित होने वाले धार्मिक क्रियाकलाप पर आधारित है। भद्रकाली मंदिर झारखण्ड राज्य के चतरा जिला के इटखोरी प्रखण्ड में भदूली ग्राम में अवस्थित है। यह मंदिर परिसर 158 एकड़ में फैला हुआ है। उत्खनन से प्राप्त ताम्रपत्रों एवं शिलालेखों से प्राप्त जानकारी के अनुसार इस मंदिर का निर्माण पाल वंश के राजा महेद्र पाल ने सन् 988 से 1038 ई के बीच करवाया। इस शोध का मुख्य उद्देश्य भद्रकाली मंदिर में विभिन्न अवसरों पर आयोजित होने वाले धार्मिक क्रियाकलापों का अध्ययन करना है।

मुख्य शब्दावलियाँ : झारखण्ड, धार्मिक क्रियाकलाप, मंदिर, भद्रकाली, मंदिर, परिसर, ऐतिहासिक इत्यादि।

परिचय

हिन्दू धर्म शास्त्रों में देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना करने के लिए अनेक धार्मिक कर्मकाण्डों का वर्णन किया गया है जिसे धार्मिक क्रियाकलाप कहा गया है। जैसे – सबसे पहले पूजा से एक दिन पहले स्नान करके खाना खाया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में नहाय खाय कहा जाता है, उसके दूसरे दिन उपवास रख कर पूजा किया जाता है। पूजा में विशेष विधि–विधान का ध्यान रखा जाता है। पूजा में कई तरह के प्रसाद बनाया जाता है प्रार्थनायें की जाती है, यज्ञ–हवन किया जाता है उसके बाद आरती के साथ पूजा को सम्पन्न किया जाता है। धार्मिक क्रियाकलापों का समापन प्रसाद, भंडारा, सास्कृतिक कार्यक्रम जैसे – संगीत एवं नृत्य के साथ पूर्ण होता है। मिलटन सिंगर ने ऐसी गतिविधियों को ''सांस्कृतिक प्रदर्शन'' के रूप में परिभाषित किया है। विभिन्न देवी–देवताओं के प्रति अपनी श्रद्धा व विश्वास प्रार्थना के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है, भले ही ये देवी–देवता पारिवारिक हो, ग्राम देवी–देवता हो या मंदिर में स्थापित देवी–देवता हो। वस्तुतः विधि–विधान प्रमुख धार्मिक साधन हैं, जिनके माध्यम से जीवन की शुद्धता व पवित्रता का निर्धारण होता है। विभिन्न समुदायों व समूहों

* संपर्क : शोधछात्र : स्नात्तकोत्तर मानवशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, Email-lakhendraprajapati@gmail.com

में धार्मिक क्रियाकलाप के विधि–विधान भिन्न–भिन्न प्रकार के देखने को मिलते हैं। भद्रकाली मंदिर में प्रत्येक धार्मिक अवसर पर कई तरह के अनुष्ठान और धार्मिक क्रियाकलाप सम्पन्न की जाती है। इसी प्रकार विभिन्न अवसरों जैसे– स्नान, पूजा, गृह प्रवेश, जन्म, विवाह, मृत्यु आदि अनेक अवसरों पर भिन्न–भिन्न विधि–विधान सम्पन्न किये जाते हैं।

भद्रकाली मंदिर, चतरा जिला मुख्यालय से 35 किलोमीटर पूर्व दिशा की ओर तथा जी० टी० रोड (चौपारण) से 15 किलोमीटर पश्चिम दिशा की ओर और इटखोरी प्रखण्ड मुख्यालय से 1 किलोमीटर उत्तर दिशा में भौदली ग्राम में मुहाने तथा बक्सा नदी के संगम स्थल पर अवस्थित है। मंदिर परिसर 158 एकड़ में फैला हुआ है। यह मंदिर परिसर एक साथ हिन्दू, बौद्ध एवं जैन तीन धर्मों का संगम स्थली है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह स्थान प्रागैतिहासिक काल तथा महाकाव्य काल से संबंधित है। प्राचीन कथा के अनुसार अपने वनवास के दौरान भगवान श्रीराम कुछ समय के लिए इस स्थान पर रूके थे। धर्म सह अस्तित्व का प्रतीक भद्रकाली मंदिर एक प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर है। उत्खनन से प्राप्त ताम्रपत्रों एवं शिलालेखों से प्राप्त जानकारी के अनुसार इस मंदिर का निर्माण पाल वंश के राजा महेद्र पाल ने सन् 988 से 1038 ई के बीच करवाया था।

सुबह 3 बजे से 4 बजे तक – सबसे पहले मंदिर के पुरोहित द्वारा मंदिर की साफ–सफाई की जाती है। उसके बाद पुरोहित स्नान करते हैं उसके बाद पुरोहित द्वारा माता एवं अन्य देवी–देवताओं का श्रृंगार किया जाता है। सुबह 4 बजे से 5 बजे तक–माता का श्रृंगार पूजन प्रारंभ किया जाता है एवं उसके बाद माता की आरती की जाती है।

सुबह 5 बजे से दोपहर 12 बजे तक– आमलोगों के पूजन के लिए माता मंदिर का पट खोल दिया जाता है। दोपहर 12 बजे से 1 बजे तक– मध्याहनकाल होता है इस समयावधि में माता के मंदिर की साफ सफाई की जाती है और उसके बाद माता को भोग लगाया जाता है, जिसमें खीर, पेड़ा सिजनल फल का भोग लगाया जाता है। दोपहर 1 बजे से संध्या 5:30 बजे तक– आमलोगों के पूजन के लिए माता मंदिर का पट खोल दिया जाता है। संध्या 5:30 बजे से संध्या 7 बजे तक– माता के मंदिर की साफ–सफाई की जाती है उसके उपरांत माता की आरती की जाती है। संध्या 7 बजे से 8:30 बजे तक– आमलोगों के पूजन के लिए माता मंदिर का पट खोल दिया जाता है ।

संध्या 8:30 बजे पुनः माता का भोग लगाया जाता है, जिसमें मालपुआ, काजू, किसमिस आदि रहता है। मालपुआ पुजारियों के द्वारा तैयार किया जाता है जो शुद्ध घी में बनाया जाता है।

विशेष पूजाः विशेष पूजा में प्रत्येक मंगलवार को संध्या 6 बजे माँ भद्रकाली मंदिर में महा आरती का आयोजन किया जाता है। जिसमें आस–पास के बहुत लोग भाामिल होते हैं। इसके साथ हीं बाहर से भी बहुत से श्रद्धालु इस महाआरती

में शामिल होते हैं। उस दिन मंदिर को विशेष रूप से आकर्षक ढंग से सजाया जाता है।

पूजा सामग्री : किसी भी देवी देवता को प्रसन्न करने के लिए वि ोश पूजा के लिए विशेष पूजन सामग्री की आव यकता होती है। माँ भद्रकाली की पूजा निम्नलिखित फल–फूल प्रसाद आदि से किया जाता है – पुष्प/ पुष्पमाला/अक्षत (अरवा चावल)/अरपन (गेहूँ का आटा)/ धूप अगरबत्ती/ दीपक, बत्ती/गाय का गोबर/चंदन/नारियल/सुपारी/गंगा जल/चुनरी के साथ माता का अंग वस्त्र/सिंदूर/रोडी/अबीर गुलाल/सुगंधित जल/अरपन (गेहूँ का आटा)/कच्चा धागा/मोली धागा/दूर्वा (दूब घास)/दूध, दही/गुड़/शहद/ फल सिजनल फल का उपयोग किया जाता है, हलवा इत्यादि।

नवरात्री पूजन (शारदीय/चैती) : भद्रकाली मंदिर में श्रद्धालु भक्तजनों द्वारा नवरात्रि तथा अन्य विशिष्ट अवसरों पर विशेष अनुष्ठान होते रहते हैं। नवरात्रा के समय मंदिर में विशेष पुजा किया जाता है। नवरात्रा के समय मंदिर को आकर्षक ढंग से सजाया जाता है और उस नवरात्रा के समय और दिनों की तुलना में श्रद्धालुओं एवं भक्तों की अधिक भीड़ होती है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में एक वर्ष में चार नवरात्रि का विधान बतलाया गया है जो निम्नलिखित है–

1. चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से रामनवमी तक ।
2. आषाढ़ शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमी तक।
3. आश्विन शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से विजय दशमी तक ।
4. माघ शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमी तक।

भद्रकाली मंदिर में उपर्युक्त चारों प्रकार के नवरात्रा का आयोजन बहुत धूम–धाम से किया जाता है। चैत्र नवरात्र का आयोजन चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से रामनवमी तक किया जाता है। वंही आषाढ़ नवरात्र का आयोजन आषाढ़ शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमी तक किया जाता है। आश्विन नवरात्र का आयोजन आश्विन शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से विजय दशमी तक किया जाता है आश्विन नवरात्र ही एक ऐसा नवरात्र है जिसमें माँ दूर्गा की प्रतिमा को स्थापित किया जाता है। और दशमी तिथि विजयादशमी के रूप में मनायी जाती है तथा पूजित प्रतिमा को नदी या पवित्र जलाशय में विसर्जन किया जाता है। वर्ष के अंत में माघ नवरात्र का आयोजन माघ शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नवमी तक मनाया जाता है।

नवरात्रि के अवसर पर विशिष्ट पूजन–पाठ विधिः किसी भी हिन्दू मंदिर में विशेष अवसर पर विशेष पूजा का आयोजन किया जाता है भद्रकाली मंदिर में भी विशिष्ट अनुष्ठानों एवं नवरात्रि के अवसर पर विशेष पूजन विधि का आयोजन किया जाता है। पूजा की भ्रुरूआत स्नान करके नवीन वस्त्र को धारण कर पवित्र आसन पर बैठकर पवित्री और आचमन के पश्चात् दाहिने हाथ में कुश, जल, अक्षत, पुष्प, द्रव्य लेकर संकल्प मंत्र पढ़ते हुए किया जाता है। उसके बाद माँ भद्रकाली का पूजन दुर्गा सप्तशती का पाठ श्रद्धा भक्ति के साथ करके किया जाता

है। श्रद्धालुओं एवं भक्तजनों का मानना है कि ऐसा करने से माँ भद्रकाली की असीम कृपा होती है और माँ अपने भक्तों को मनोवांछित फल देती है। माँ भद्रकाली की आरती–

अम्बे तू है जगदम्बे काली, जय दुर्गे खप्पर वाली।
तेरे ही गुण गावें भारती, ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती।
तेरे भक्त जनो पर माता भीर पड़ी है भारी।
दानव दल पर टूट पड़ो मां करके सिंह सवारी।
सौ–सौ सिहों से बलशाली, है अष्ट भुजाओं वाली,
दुष्टों को तू ही ललकारती।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती।

माँ–बेटे का है इस जग में बड़ा ही निर्मल नाता।
पूत–कपूत सुने है पर ना माता सुनी कुमाताम
सब पे करूणा दर्शाने वाली, अमृत बरसाने वाली।
दुखियों के दुखड़े निवारती।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती।
नहीं मांगते धन और दौलत, न चांदी न सोना।
हम तो मांगें तेरे चरणों में छोटा सा कोनाम
सबकी बिगड़ी बनाने वाली, लाज बचाने वाली।
सतियों के सत को संवारती।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती।
चरण शरण में खड़े तुम्हारी, ले पूजा की थाली।
वरद हस्त सर पर रख दो माँ संकट हरने वाली।
माँ भर दो भक्ति रस प्याली, अष्ट भुजाओं वाली,
भक्तों के कारज तू ही सारती।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती।

विवाह : विवाह समाज द्वारा मान्यता प्राप्त एक सामाजिक संस्था है। परिवार बसाने एवं उसे स्थिर रखने के लिए प्रत्येक समाज में संस्थात्मक व्यवस्था पायी जाती है, जिसे विवाह कहा जाता है। विवाह अति प्राचीन जनजातियों से लेकर अति–आधुनिक समाजों सभी में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। इसके साथ ही विवाह प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज की संस्कृति का आवश्यक अंग है क्योंकि वह साधन है जिसके आधार पर समाज के प्रारंभिक इकाई परिवार का निर्माण होता है। महाभारत में कहा गया है कि अविवाहित कन्या जो कितनी भी तपस्या और पुण्य का काम करले उसे कभी स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है।

मजुमदार तथा मदन के अनुसार– ''विवाह के अंतर्गत साधारणतया दीवानी तथा धार्मिक संस्कार के रूप में सामाजिक मान्यता निहित है जो कि दो

विषम– लिंगीय व्यक्तियों की यौन तथा अन्य आनुसांगिक और सह संबंधित सामाजिक–आर्थिक संबंधों में सम्मिलित होने का अधिकार देती है। विवाह की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि –

(1) विवाह दीवानी अथवा धार्मिक संस्कार का परिणाम है।

(2) विवाह विषम लिंगीय व्यक्तियों के संयोग का साधन है।

(3) विवाह से स्त्री–पुरुष को परस्पर जैविक और सामाजिक–आर्थिक संबंधों में सम्मिलित होने का अधिकार मिलता है।''[2]

बोगार्डस के अनुसार – ''विवाह स्त्री और पुरुष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करवाने की एक संस्था है।''[3]

हॉबेल के अनुसार –''विवाह सामाजिक नियमों का एक जाल है जो विवाहित युगल के पारस्परिक रक्त–संबंधियों, उनके बच्चों तथा समाज के प्रति संबंधों को नियंत्रित और परिभाषित करता है।''[4]

बील्स एवं हॉइजर के अनुसार – ''विवाह प्रत्येक मानव–समाज में, जिससे हम सुपरिचित हैं एक जटिल सांस्कृतिक घटना है, जिससे प्राणिशास्त्रीय कार्यों का निर्वाह होता है, लेकिन साथ हीं बच्चों और परिवार का पालन–पोषण तथा परिवार पर लादी गई सांस्कृतिक और सामाजिक क्रियाओं का उत्तरदायित्व भी होता है।''[5]

डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार – ''विवाह एक संस्था के रूप में प्रेम की अभिव्यक्ति तथा विकास का एक साधन है। यह केवल रूढ़ि नहीं है, वरन मानव–समाज की एक अंतर्भूत दशा है। यद्यपि इसके आदर्श बदलते रहते हैं, फिर भी यह मानवीय साहचर्य का एक स्थायी रूप प्रतीत होता है। यह प्रकृति के प्राणिशास्त्रीय लक्ष्यों और मनुष्य के समाजशास्त्रीय लक्ष्यों के मध्य सामंजस है। यह सामंजस्य सफल होता है या नहीं, यह इसपर निर्भर है कि इसे किस प्रकार क्रियान्वित किया जाता है। यह हमें इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग तक पहुँचा सकता है और कुछ दशाओं में हमारे लिए बाकायदा नर्क भी बन सकता है।''[6]

रवीन्द्रनाथ मुखर्जी के अनुसार– ''विवाह समाज से मान्यता प्राप्त किसी प्रथा या नियम के अनुसार दो या अधिक स्त्री–पुरुषों के यौन संबंधों को नियमित करने की वह संस्था है जिसका कि उद्देश्य घर बसाना तथा बच्चों के लालन–पालन के लिए एक स्थायी आधार प्रदान करना है।''[7] विवाह मंदिर परिसर में हिन्दू पंचांग के अनुसार सम्पन्न करवाया जाता है विवाह के समय भद्रकाली मंदिर परिसर में मेला सा मौहौल रहता है। विवाह के लिए आस–पास के तथा दूर–दराज के श्रद्धालु मंदिर में आते हैं। आज के भाग–दौड़ भरी जिंदगी में लोगों का ऐसा मानना है कि मंदिर में विवाह करने से कम खर्च लगता है और समय की भी बचत होती है। विवाह के लिए मंदिर प्रबंधन समिति द्वारा वर एवं वधु पक्ष दोनों के लिए अलग–अलग शुल्क निर्धारित किया है। इसके साथ ही मंदिर प्रबंधन समिति द्वारा विवाह के लिए वहाँ आनेवाले श्रद्धालुओं के लिए धर्मशाला भी उपलब्ध करवाया जाता है जिसका निर्धारित शुल्क निम्न प्रकार है–

क्रम संख्या	निर्धारित भुल्क
1.वर पक्ष	551/–
2.कन्या पक्ष	251/–
3.धर्मशाला	12650/–
4.रूम का दर प्रति बेड	162/–

जिसका उपयोग प्रबंधन समिति मंदिर के विकास आदि कार्यों में करता है।

मुण्डन मंदिर परिसर में मुण्डन मुख्यतः मन्नत पूर्ण होने पर ही की जाती है। मुण्डन भी हिन्दू पंचांग के अनुसार की जाती है। मुण्डन के लिए मंदिर प्रबंधन समिति द्वारा 101/– शुल्क निर्धारित किया गया है।

मन्नती पूर्णता : माँ भद्रकाली के प्रति वहाँ के लोगों की अटूट आस्था है और यही कारण है की वहाँ लोग अपनी मनोकामनाएँ लेकर माता के दरबार में आते है और मन्नत माँगते है। उसी दौरान जिनकी–जिनकी मन्नतपूर्ण हो जाती है, वे लोग माता मंदिर में मन्नती पूजा करने आते हैं। अगर किन्हीं को माता को चढ़ाई हुई चुनरी चाहिये तो मंदिर प्रबंधन समिति के कार्यालय से 51/– का रसीद कटवाकर प्राप्त कर सकते है।

वाहन पूजा : माँ भद्रकाली मंदिर के आस–पास के क्षेत्रों से बहुत से लोग जब अपना नया पुराना वाहन खरीदते हैं तो यहाँ अपनी वाहन का पुजा करवाने आते हैं। वाहन पुजा के लिए मंदिर प्रबंधन समिति द्वारा शुल्क निर्धारित किया गया है।

भद्रकाली मंदिर परिसर में प्रत्येक वर्ष में कुछ विशेष अवसरों में मेला का आयोजन किया जाता है, जो निम्न प्रकार से है–

1.प्रत्येक वर्ष 1 जनवरी को अंग्रेजी नववर्ष के अवसर पर भद्रकाली मंदिर परिसर में मेला का आयोजन किया जाता है। लोगों की ऐसी मान्यता हैं कि नववर्ष के अवसर पर किया गया पूजा उन्हें साल भर रोग–दुःख से मुक्ति दिलाती है। और धन–धान्य से सम्पन्न बनाती है।

2.14 जनवरी मकर संक्रांति के अवसर पर मेला का आयोजन किया जाता है। इसमें अधिकांश श्रद्धालु मंदिर परिसर में अवस्थित नदी में स्नान करके पूजा–पाठ करके चूडा, गुड़ तथा तिलकुट का सेवन करतें हैं। लोगों की ऐसी मान्यता हैं कि मकर सकरांती के अवसर पर नदी में स्नान करने से चर्मरोग संबंधी बिमारी से निजात मिलती है।

3.प्रत्येक वर्ष नवरात्रा के समय मंदिर में विशेष भीड़ रहती है और उस समय भी मेला का आयोजन किया जाता है। प्रसाद विक्रेताओं के अनुसार उनकी आमदनी अन्य दिनों के तुलना में नवरात्री के समय ज्यादा होती है। नवरात्री मुख्य रूप से साल में दो बार मनायी जाती है। एक आश्विन माह में दूर्गा पूजा के समय एवं दूसरा चैत्र माह में रामनवमी के समय मनाया जाता है।

4.भद्रकाली मंदिर परिसर में प्रत्येक वर्ष विवाह के अवसर पर भी मेला का आयोजन किया जाता है।

निष्कर्ष : धार्मिक क्रियाकलाप का अपना एक वैज्ञानिक महत्त्व होता है। हमारे पूर्वजों एवं धार्मिक विशेषज्ञों द्वारा हमें बताया गया कि धार्मिक क्रियाकलाप हमारी शारीरिक व मानसिक ऊर्जा को संतुलित करती है। इसी प्रकार कुछ ऐसे पशुओं एवं पेड़–पौधों को पहचानकर हमारी धार्मिक क्रिया में शामिल किया। जिसे लोग आज भी मानते है। हमलोग प्रत्येक दिन अपने घरों में दीपक जलाते हैं, दीपक जलाने के लिए गाय का घी, सरसों का तेल या तिल का तेल आदि प्रयोग किया है। इसका पीछे वैज्ञानिक महत्व है, गाय का घी सकारात्मक ऊर्जा को बढ़ाती है तथा सरसों का तेल एवं तिल का तेल नकारात्मक ऊर्जा को खत्म करता है। इसके साथ हीं घर या मंदिर में पूजा करते समय जो हम घंटी बजाते हैं, उस ध्वनि से एक कंपनशक्ति उत्पन्न होती है जो नकारात्मक ऊर्जा को काटती है। पूजा में नारियल बली किया जाता है इसका भी अपना एक महत्व है, नारियल को पंचभूतों का प्रतीक माना जाता है। जब हम नारियल को हाथ से पकड़कर फोड़ते हैं, तो हमारी हथेली के सारे एक्यूप्रेशर बिंदुओं पर दवाब पड़ता है। जिससे अनेक बिमारी ठीक हो जाती है। इसके साथ हीं पूजा के समय ताली बजाया जाता है जिससे एक्यूप्रेशर बिंदुओं पर दवाब पड़ता है। और उससे भी अनेक बिमारी खत्म होती है और कुछ बिमारी को होने से भी बचाती है। इस प्रकार मंदिर में किया जाने वाले प्रत्येक धार्मिक क्रियाकलाप का अपना विशेश महत्व होता है।

संदर्भ सूची

1. डॉक्टर रविंद्र नाथ मुखर्जी (1995), सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, पृ० सं० – 190–205
2. झा एवं सिंह (2001) मानव विज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), ठाकुरबाडी रोड, कदमकुआँ, पटना, पृ० सं० –77
3. झा एवं सिंह (2001) मानव विज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), ठाकुरबाडी रोड, कदमकुआँ, पटना, पृ० सं० –78
4. झा एवं सिंह (2001) मानव विज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), ठाकुरबाडी रोड, कदमकुआँ, पटना, पृ० सं० –78
5. झा एवं सिंह (2001) मानव विज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), ठाकुरबाडी रोड, कदमकुआँ, पटना, पृ० सं० –78
6. झा एवं सिंह (2001) मानव विज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), ठाकुरबाडी रोड, कदमकुआँ, पटना, पृ० सं० –78
7. झा एवं सिंह (2001) मानव विज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), ठाकुरबाडी रोड, कदमकुआँ, पटना, पृ० सं० –78

■

पौराणिक साहित्य में शैव सम्प्रदाय का

उद्‌भव एवं विकास

मनीषा सिंह / सुनीता देवी ❖

भारतीय संस्कृति के उद्‌गम स्रोत सिन्धु सभ्यता से लेकर वैदिक, उत्तर वैदिक, महाकाव्य काल एवं भिन्न–भिन्न राजवंशों में धर्म की समानता एवं निरंतरता ज्यों की त्यों रही थी। प्रामाणिक तथ्यों को देखें तो लिंग पूजा का उदय सिंधु सभ्यता से लेकर आधुनिक काल तक वैसा ही है, जैसा की प्राचीन काल में था। भगवान शिव के विभिन्न स्वरूपों में से विशाल एवं तपस्वी रूप जिसमें वे कैलाश पर्वत पर महायोगी शिव व्याघ्र चर्म की छाल में ध्यान मग्न स्थिति में आसन पर विराजमान हैं। भगवान शिव से संबंधित धर्म को शैव संप्रदाय कहा जाता है। यह प्राचीन धर्म है जो कि हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो से मिला है। उत्खनन के दौरान हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से अधिक से अधिक संख्या में मिट्टी किसी और पत्थर के शिवलिंग मिले जिनको देखकर यह स्पष्ट होता है कि शिव प्राचीन काल में भी विद्यमान थे और उनकी उपासना की जाती रही। इस संबंध में प्राचीन समय में पायी जाने वाली मुद्रा मिली है जिस पर अंकित मूर्ति शिव उपासना के विषय में जानकारी देती है। इस पुरुष देवता की मूर्ति में तीन मुख और तीन नेत्र हैं। वह योगासन मुद्रा में एक चौकी पर विराजमान है। इस मूर्ति की पहचान भगवान शिव के पशुपतिनाथ स्वरूप के रूप में की गई। संसार में विद्यमान सभी जीवधारियों के स्वामी होने के कारण शिव को पशुपतिनाथ, भूतनाथ, नीलकंठ, महादेव, रूद्र, शंकर, भोले, उमापति अनेक नाम से पुकारा जाता है। मुद्राओं पर अंकित पुरुष देव की मूर्ति और जगह जगह पर शिवलिंग, इस बात को स्पष्ट करते हैं कि सिंधु काल के निवासियों के प्रमुख देवता शिव ही थे और शैव संप्रदाय भारत के सबसे प्राचीन संप्रदाय के रूप में जाना जाता है। इस संप्रदाय में भगवान शिव के अनेक रूपों का वर्णन है। शिव पुराण में इसको स्पष्ट किया गया है।

पौराणिक साहित्य और परवर्ती साहित्य में शिव की योगीराज के रूप में वंदना की गई है। शिव कैलाश वासी है और व्याघ्र चर्म पर ध्यान लीन अवस्था में विराजमान रहते हैं। उनके सिर पर जटाएं हैं और द्वितीय का नव चंद्र सुशोभित है। उनकी इन्हीं जटाओं में जगत पावनी मां गंगा का उद्‌गम भी प्राप्त होता है।

❖ संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, शोधार्थी, संस्कृत विभाग, जे.एस. वि.वि. , शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, यू.पी

पौराणिक कथाओं के अनुसार स्वर्ग से उतरने के पश्चात गंगा को भगवान शिव ने अपनी जटाओं में धारण कर उसका वेग कम किया, इसलिए गंगा को शिव की जटाओं से बहती हुई दिखाई जाती है। शिव का प्रमुख शस्त्र त्रिशूल है। शिव के ललाट पर तृतीय नेत्र ज्ञान लोक का प्रतीक है। इसी से उन्होंने कामदेव का दहन किया था। समस्त अनिष्टों के प्रतीक हलाहल को समाहित करने के कारण वे नीलकंठ कहे जाते हैं। भगवान शिव कंठ तथा भुजा में रुद्राक्ष धारण करते हैं इसलिए उनका नाम रूद्र भी है। कई सिक्कों पर उनके हाथ में त्रिशूल और बाएं भाग में माँ गौरी और संमुख विराजमान नंदी को भी दिखाया गया है। प्राचीन काल में कई स्थानों पर शिव का अंकन त्रिशूल धारी के रूप में हुआ है। शिव के वहां नंदी को वृष भी कह कर पुकारा जाता है। प्राचीन काल में खुदाई में प्राप्त सिक्कों पर शिव के वाहन नंदी का भी अंकन हुआ है। भगवान शिव का सती एवं उमा के साथ विवाह की रोचक कथा महाकाव्य एवं पुराणों में ही मिलती है। प्राचीन काल में जो सिक्के प्रचलन में थे, उन पर भी शिव और मां गौरी का चित्रण प्राप्त होता है।

भगवान शिव के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन– प्राचीन काल में भगवान शिव के नर्त्तक रूप को चित्रित किया गया है। चीनी मिट्टी की एक अन्य प्रकार की मुद्रा प्राप्त होती है, जिस पर योगासीन भगवान शिव के दोनों ओर एक–एक नाग और सामने दो नाग बैठे दिखाए गए हैं। यह है देव तो नागधारी शिव के रूप में स्वीकार किए गए। इस तथ्य से भी यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत के निवासी शैव संप्रदाय को मानने वाले थे और शिव के अनुयाई थे। शास्त्रों में एक ही परम तत्व के तीन रूप बताए गए हैं जिसमें सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। उनके कार्य अलग–अलग सृष्टि के संचालन के रूप में प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा का कार्य सृष्टि की रचना करना है और विष्णु का कार्य सृष्टि का पालन करना है और शिव का कार्य सृष्टि लय है, लेकिन शैव धर्म दर्शन में शिव को स्वर में परम तत्व माना गया है और सृष्टि निर्माता, पालन करता और संघार करता तीनों रूपों में माना गया है। सृष्टिकर्ता के रूप में शिव ब्रह्म स्वरुप है और श्री हरि के रूप में विष्णु का स्वरूप स्थापित है। शिव परम कारुणिक है। उनमें अनुग्रह तथा प्रसाद का गुण भी सम्मिलित है। इनका उद्देश्य भक्तों का कल्याण करना है। वह शुभ कल्याण मंगल तथा श्रेय के पर्याय भी माने जाते हैं। भगवान शिव विभिन्न कलाओं तथा सिद्धियों के अधिष्ठाता देव के रूप में माने जाते हैं। वह योग विद्या और नाट्य शास्त्र कला के जनक है। उनके द्वारा 108 प्रकार की नाट्य मुद्राओं की सृष्टि की गई है। विभिन्न शक्तियों से संपन्न होने के कारण इन्हें महाशक्ति या महादेव कहकर भी पुकारा गया है। भगवान शिव कल्याणकारी देवता माने गए हैं। ये हर रूप में मनव जाति के लिए कल्याणकारी हैं।

शैव धर्म का प्रचार एवं प्रसार– प्राचीन काल में भगवान शिव के स्वरूप का एक रूप प्रलयकारी भी है और इसी रूप के कारण इन्हें रुद्र की उपाधि भी प्रदान की गई। अपने इस रूप में वे शमशान, रणक्षेत्र तथा मृत्यु स्थान पर निवास

करने वाले माने गए। मुंडमाला धारण किए हुए भूत, प्रेत गणों से घिरे रहते हैं। वह साक्षात महाकाल का स्वरूप है और उनकी यह भू–विक्षेप मात्र से महाप्रलय की विनाश लीला होती है। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभारत में शिव का उल्लेख कई बार किया है। इन्हें दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंशों के प्रमुख शासकों ने भी शैव धर्म के विकास को अपने स्तर से प्रोत्साहित किया। इसी श्रेणी में राष्ट्रकुट के नरेश कृष्ण द्वितीया ने एलोरा के कैलाश नाथ मंदिर का निर्माण भी करवाया और राजा राज प्रथम शिव का अनन्य उपासक के रूप में जाने गए राजराजेश्वर का शिव मंदिर भी इन्होंने बनवाया। इन्होंने अपनी राजधानी में बृहदेश्वर मंदिर भी बनवाया और चोल शासक भी शैव के उपासक थे और इस प्रकार धर्म का प्रचार प्रसार होता रहा और शैव मत के अनुयायियों ने अपार तिरुज्ञान शिव की सुंदर मूर्ति एवं पल्लव राजा महेंद्र बर्मन ने भी शैव धर्म में ही दीक्षा ली। अनेक आचार्यो ने शास्त्रार्थ में शिव की सुंदर मूर्ति को ईश्वर मिश्र की उपाधि भी दी गई। अनेक भक्तों में निम्न वर्गीय लोग ब्राह्मण एवं महिलाएं भी शामिल है। निम्न जाति के साधारण मनुष्य भी शिवके उपासक थे।

तिस्मुदई नामक ग्रंथ में शिव के अनेक पद संकलित है जिसमें विभिन्न शैव संप्रदायों का विश्लेषण और निरूपण किया गया। इससे स्पष्ट पता चलता है कि सिंधु कल में भी विभिन्न रूपों में भगवान शिव को पूजा गया और उनकी उपासना की गई। इसी क्रम में आगे हम शैव संप्रदाय को और स्पष्ट रूप से देखते हैं और हम पाते हैं कि प्राचीन काल में शैव संप्रदाय का प्रभुत्व था।

पाशुपत शैव संप्रदाय – यह शैव संप्रदाय सबसे प्राचीनतम संप्रदायों में से एक है। इसकी उत्पत्ति के विषय में ईसवी पूर्व दूसरी शती मानी जाती है। इसके संस्थापक लकुलिश थे। उस समय यह एक बहुत ही लोकप्रिय संप्रदाय था। महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है जिसमें सांख्य योग पंचरात्र के साथ–साथ हुआ। उमापति, भूतनाथ, शिव, श्रीकंठ ने पशुपत ज्ञान की शिक्षा दी अर्थात इस मत का संस्थापक कोई साधारण मानव नहीं था। वह एक योगी रूप था इसी संदर्भ में भंडारकर महोदय ने पौराणिक एवं अभिलेखीय तथ्यों के आधार पर शिव के 28 में अवतार लकुलिश को इस मत का संस्थापक माना, इस संप्रदाय के प्रमुख मंदिर नेपाल के काठमांडू में स्थित पशुपतिनाथ का मंदिर है। वायु पुराण और लिंग पुराण के आधार पर भी भंडारकर महोदय का यह विचार रहा कि महान शैव संप्रदाय महान संत श्री लक्ष्मी महेश्वर के अंतिम अवतार ही थे जिन्होंने कायावरोहण अथवा कयावतार कर लिया था। उनको उनके अन्य शिष्यों के साथ जिनका नाम कुशिक, गार्ग्य, मैत्रेय और कौरुष्य था। इसी प्रकार से शैव संप्रदाय में चालुक्य नरेश सारंग देव ने चिन्ह प्रशस्ति भी मिलती है और मूल रूप से यह काठियावाड़ के सोमनाथ मंदिर में स्पष्ट उत्कीर्ण चिन्ह प्राप्त होते है। यह लकुलिश के चार शिष्य थे। कौशिक, गार्ग्य, कौरुष्य और मैत्रेय इन चारों ने पशुपत मत के चार भिन्न–भिन्न संप्रदायों की स्थापना की।

महर्षि पतंजलि ने शिव भागवत का कई स्थानों पर उल्लेख किया है दूसरी ओर लकुलिश का समय द्वितीय शताब्दी के आसपास प्रारंभिक वर्षों में माना गया जो कि पाशु पत मत के संस्थापक थे। पाशुपत मत से मिलता जुलता शैव संप्रदाय का अस्तित्व लकुलिश के आने के पूर्व में भी मौजूद था। लकुलिश ने तत्कालीन शैव मत एक सैद्धांतिक व्यवस्था प्रदान की और इस प्रकार उन्हें शैव संस्थापक के रूप में माना गया। महाभारत काल में भी पशुपति को शिव का रूप माना गया इसी क्रम में अर्जुन ने भगवान शंकर की उपासना की और उनसे अविजय पशुपति प्राप्त किया। महाभारत मैं भी एक संदर्भ में महाराज दक्ष प्रजापति द्वारा शिव की उपासना की गई और शिव जी ने प्रसन्न होकर दक्ष को पशुपत व्रत धारण करने के लिए कहा था।महाभारत काल में पंच रात्र की तरह पाशुपत मत कि भी मान्यता थी महाभारत में पाशुपत मत तथा पंच रात्र दोनों धर्मों के उपाख्यान वर्णित है इसी क्रम में पाशुपत व्रत के महत्व का वर्णन करते हुए उसे समस्त वर्णों तथा आश्रमों के लिए मोक्षप्रद बताया गया।महाभारत काल में ही वैष्णव संप्रदाय की तरह शैव संप्रदाय भी चारों वर्णों के लिए एक ही क्रम में अपनी द्वार खोले हुए था शूद्र भी शैव मत के अनुयायी थे। महाभारत में चारों वर्णों और सभी जनों को भगवान महादेव की स्तुति एवं सूक्त पाठ करने की संपूर्ण स्वतंत्रता थी और वह सभी शिव की उपासना करते थे।

शैव संप्रदाय वैदिक कालीन साहित्य को देखें तो उससे ज्ञात होता है कि शैव संप्रदाय के पुराण साहित्य में पशुपति मत का अस्तित्व बहुत ही पुराना है अनेक ऋषि मुनियों ने इस मत को धारण किया था। अगस्त्य, दधीचि, विश्वामित्र, सतानंद, दुर्वाषा, गौतम, उपमन्यु और बादरायण व्यास शिवोंपासक थे, बादरायण व्यास ने केदारखंड की तपोभूमि में महाज्ञानी योगी घंटाकर्ण से पाशुपत धर्म कि दीक्षा ली घंटाकर्ण उनका नाम इसलिए प्रचलित हुआ क्योंकि उनके दोनों कानों के पास दो घंटे बंधे हुए थे वह इतने कट्टर शिव भक्त थे कि अन्य किसी शब्द को अपने कानों में जाने ही नहीं देते थे और अपना सिर हिला देते थे जिससे कि घंटों की ध्वनी से शिव के नाम के अतिरिक्त और कोई दूसरा शब्द उनके कानों में न पडे। परम शिव ज्ञानी घंटाकर्ण से दीक्षा प्राप्त कर बादरायण व्यास काशी में जाकर बस गये थे और शैव संप्रदाय का प्रचार एवं प्रसार किया।

निष्कर्ष– कह सकते हैं कि शैव संप्रदाय भारत के सबसे प्राचीन संप्रदायों में से एक है कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी है स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मौर्य काल में शिव की पूजा का प्रचलन था और गुप्त काल में चंद्रगुप्त द्वितीय का प्रधानमंत्री वीर सेन भी शैव संप्रदाय का ही अनुयाई था और उदयगिरि की पहाड़ियों पर से गुफा दर्शन भी प्राप्त होता है भूमरा का शिव मंदिर एवं रचना कोठार का पार्वती मंदिर निर्मित किया गया इस काल में पुराणों में कुछ लिंग पूजा का भी उल्लेख मिलता है संभवत शिव के रूप में वह सारी लिंग के रूप में शिव पूजा का प्रचलन गुप्त काल में भी था। बाणभट्ट के हर्षचरित्र में भी यह स्पष्ट होता है

कि थानेश्वर के प्रत्येक घर में शिव की ही उपासना की जाती थी और हर्षवर्धन काल में चीनी यात्री ह्वेनसॉन्ग वाराणसी को शैव धर्म का प्रमुख केंद्र के रूप में बताया उन्होंने स्पष्ट किया कि शिव की पूजा की जाती है राजपूत काल में भी शैव धर्म उन्नति के शिखर पर था इसमें चंदेल शासको ने भी कंदरिया महादेव के मंदिर का निर्माण कराया कालिदास महाकवि भवभूति सुबन्धु एवं बाणभट्ट जैसे संस्कृत साहित्य के महान विद्वानों ने भी शिव की ही उपासना की और शैव धर्म के उपासक के रूप में जाने जाते हैं। भगवान शिव कि उपासना भारत वर्ष में प्रागैतिहासिक युग से प्रारम्भ होकर अन्त तक विकसित होती चली आ रही है वर्तमान समय में भी शिव पूजा भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण स्तम्भ वन गयी है आज भी भारत में विभिन्य स्थानों पर स्थित 12 ज्योतिर्लिंगों की स्थापना शैव धर्म का महत्व पूर्ण उदाहरण के रूप में हमारे सम्मुख है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अद्भुत भारत, ए.एल. वाशम, प्रकाशन– शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी 2020।
2. भारत का इतिहास, रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन।
3. शिव पुराण (विशेषांक) गीता प्रेस गोरखपुर।
4. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव, प्रकाशन– यूनाइटेड बुक डिपो।
5. पाणिनी शिक्षा,संपादक प्रमोद वर्धन, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी, प्रथमाव्रत्ति 1998।
6. डेवलपमेंट ऑफ हिंदू आईकोनोग्राफी, जे.एन.बनर्जी, पृ० 456–57।
7. Hymns of the Rigveda– टी. एच. ग्रफीथ, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस, प्रथमाव्रत्ति,1964, वाराणसी।
8. मथुरा म्यूजियम कैटलॉग पृ० न० 652, 770, 899.।
9. डेवलपमेंट ऑफ हिंदू आईकोनोग्राफी, जे एन बनर्जी पृ० 457।
10. अर्ली इन्सक्रिप्सन्स ऑफ मथुरा ए स्टडी,कल्याणी दास, पृ० 86।
11. सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन्स, डी.सी.सरकार, पृ०338 ।

■

पर्यावरणीय असंतुलन

डॉ. अंगद यादव *

हम भारतीय अपनी प्रकृति संरक्षण वाली जीवन शैली त्याग कर उपभोक्तवादी जीवनशैली की ओर अग्रसर हो रहे हैं। पिछले 200 वर्ष में पश्चिमी देशों की विकास की अंधी दौड़ ने धरती के तापमान को 0.9^0 से0 बढ़ा दिया है। अगर अभी से वैश्विक स्तर पर प्रभावी ठोस कदम नहीं उठाए गए तो धरती का तापमान 3 से 3.5^0 से0 तक बढ़ जाएगा। आज लगभग 1^0 से0 तापमान बढ़ने पर कहीं बाढ़ की विभीषिका कहर बरपा रही है तो कहीं सूखे और अकाल, पानी की एक–एक बूँद के लिए लोगों को तरसा रहे हैं।[1]

बिहार में साल दर साल बढ़ती गर्मी ने बहुत कुछ सोंचने को मजबूर किया है। ग्रीष्म ऋतु में मौतों की प्रशासनिक स्तर पर पुष्टि हो या न हो यह तो हर श्मशान घाट पर दिखता है कि अपेक्षाकृत शवों की संख्या कितनी बढ़ गयी है। सरकार अपने स्तर से इन मौतों की जाँच करवाती है। यह जरूरी भी है कि कारण स्पष्ट हो। ये प्रक्रियागत व्यवस्था है, लेकिन विचार इस पर भी होना चाहिए कि ऐसे हालात क्यों बनते हैं। राज्य के कई हिस्सों में भूगर्भ जल स्तर लगातार नीचे जा रहा है साल दर साल तापमान शिखर की ओर बढ़ रहा है। जिसके कारण पर्यावरणीय असंतुलन की ऐसी स्थिति हो रही है इस पर शोध कार्य जरूरी है। वर्ष 2023 में बिहार राज्य को देश में राष्ट्रीय जल पुरस्कार में तीसरा स्थान मिला।[2] जाहिर है, इस दिशा में काम हो रहा है, लेकिन किस गति से यह देखने की भी जरूरत है। पर्यावरण असंतुलन का बिहार ने जल–जीवन–हरियाली के रूप में निदान ढूँढ़ लिया है, लेकिन जब तक यह जन अभियान नहीं बनता, हालात पर काबू नहीं पाया जा सकता जिसका जीता जागता उदाहरण हम वर्तमान में देख रहे हैं।

विषय प्रवेश : एक सीमा तक प्रकृति उस नुकसान की भरपाई स्वयं कर सकती है, लेकिन जब उसकी स्वतः पूर्त्ति की सीमा समाप्त हो जाए तो पर्यावरण असंतुलित हो जाता है। आज का मुनष्य लालच के वशीभूत होकर प्रकृति का दोहन कर रहा है। इसकी अति–उपयोगवादी प्रकृति के कारण प्रकृति को इतना नुकसान पहुँच चुका है कि प्रकृति की मूल संरचना ही विकृत हो गई है। प्राकृतिक असंतुलन

❖ संपर्क : सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, श्री अरविंद महिला कॉलेज, पटना (बिहार)
मो : 6201422691, ई–मेल : 2angadyadav@gmail.com

से ग्लोबल वार्मिंग का खतरा बढ़ रहा है। यदि समय रहते हम सभी नहीं चेते तो आने वाले दिनों में संकट उत्पन्न हो सकता है। पर्यावरण प्रदूषण का असर तो साफ दिखने लगा है। बेहिसाब गर्मी, बेहिसाब ठंड यह सब दूषित हो रहे पर्यावरण का ही असर है।[3]

शोध का उद्देश्य : वर्तमान परिप्रेक्ष्य को देखते हुए बिहार में पर्यावरणीय असंतुलन से होने वाले कुप्रभाव का आकलन कर सरकार को बताना तथा लोगों को जागरूक करना। साथ ही साथ मानव एवं पर्यावरण के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करना आदि।

शोध प्रविधि : शोध विधि तंत्र में दो प्रकार की विधियों का प्रयोग किया गया है। क्षेत्र निरीक्षण, अन्तर्वीक्षा, अनुसूची और प्रश्नावली, प्रारंभिक तथा द्वितीयक आँकड़े के स्त्रोत है समाचार, पत्र–पत्रिकाएँ, इन्टरनेट, प्रमण्डलीय तथा जिला गजेटियर द्वारा द्वारा आँकड़े प्राप्ति के आधार हैं साथ ही पर्यावरण असंतुलन के बढ़ते कदम एवं इससे पड़ने वाले प्रभाव के विश्लेषण का मुख्य स्त्रोत का उपयोग किया गया है।

बिहार में पर्यावरण संबंधी समस्याएँ राज्य के निवासियों को असंतुलन के कारण खतरे में डाल रही है। लगभग 33.23 प्रतिशत मौतें प्रदूषित हवा में सांस लेने के कारण होती है प्रदूषण और स्वास्थ्य पर लैंसेट आयोग के अनुसार, लगभग 21. 81 प्रतिशत स्वास्थ्य मामलों में विभिन्न प्रकार के प्रदूषण के दुष्प्रभावों के कारण विकलांगता होती है।[4] रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि हवा में पाए जाने वाले अति सूक्ष्म कण पीएम 2.5 को सांस के जरिए अंदर लेने से कई तरह की स्वास्थ्य संबंधीत समस्याएँ हो सकती हैं हालांकि, राज्य हर दिन स्वच्छ हवा में सांस लेने के लिए संघर्ष कर रहा है, बल्कि बढ़ते पर्यावरणीय मुद्दों से भी जूझ रहा है।

पर्यावरणीय असंतुलन ने हाल में बिहार के तापमान, हवा की गति और दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव किया है। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते प्रदूषण के खिलाफ बिहार को बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ कई पर्यावरणीय समस्याएँ हैं जो चिन्ताजनक है।[5] इन समस्याओं से निपटने के लिए तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है।

भूगर्भ जलस्तर की स्थिति : जलस्तर को समृद्ध बनाने में तालाब, ताल–तलैया और सोख्तों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पटना जिले को ही लें, 1008 तालाबों में आधे से अधिक बदहाल हैं। कई में पानी भी नहीं हैं। पटना शहरी क्षेत्र में 27 तालाब हैं। हालांकि मानिकचंद तालाब, कच्ची तालाब गर्दनीबाग, बीएमपी तालाब, कृषि तालाब मीठापुर सहित 17 से अधिक तालाब अच्छी स्थिति में हैं। बेगूसराय में 33 तालाबों व पोखरों का जीर्णोद्धार कराया गया है, लेकिन पानी की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की जा सकी है। अमृत सरोवर योजना के तहत चुने गए सिवान में 81 में से 56, बक्सर में 124 में 72, अरवल में 76 में 25, कैमूर में 92 में 62, वैशाली में 120 में 88, औरंगाबाद में 75 में 66, रोहतास में 86 में 75 के कार्य पूर्ण कर लिए गए हैं। राज्य में अधिकांश तालाब व पोखर अतिक्रमण के शिकार हैं। अरवल के 310 छोटे–छोटे तलाबों में 60 प्रतिशत अतिक्रमण के

शिकार हैं। गोपालगंज के तीन हजार से अधिक छोटे–छोटे तलाबों में 80 प्रतिशत तक में अतिक्रमण है।[6]

भागलपुर में 1975 सरकारी व 1287 निजी तालाब हैं। किशनगंज में 195 निजी और 35 सरकारी तालाब हैं। इनमें से अधिक तालाब मृतप्राय स्थिति में हैं। कटिहार में 480 निजी तालाब हैं। मनरेगा योजना से 32 नए तालाब की खुदाई की गई है। जमुई में मनरेगा अथवा अन्य योजनाओं से बनाए गए अधिकतर तालाब सूख चुके हैं। मुंगेर में कुल 189 तालाब हैं। अमृत सरोवर योजना के तहत 75 तालाबों को संरक्षित किया गया है। 107 तालाब अतिक्रमित हैं। लखीसराय में ग्रामीण विकास विभाग द्वारा 656 और अन्य विभाग का 57 सहित कुल 713 तालाब चिह्नित हैं। जल–जीवन–हरियाली योजना के तहत अब तक 192 तालाब का जीर्णोद्धार कराया गया है। मधेपुरा में मत्स्य विभाग के अंतर्गत 150 तालाब हैं। वहीं, करीब 550 निजी तालाब हैं। जल जीवन हरियाली अभियान में 75 तालाब मनरेगा योजना से तैयार किए गए हैं। यदि वन क्षेत्र की बात करें तो राष्ट्रीय मानक के अनुसार 33 प्रतिशत क्षेत्र में हरियाली होनी चाहिए। बिहार में 15 प्रतिशत हरियाली है। पटना जिले के भौगोलिक क्षेत्र 3202 वर्ग किलोमीटर के 0.88 प्रतिशत में हरियाली है, जबिक वन क्षेत्र शून्य है।

क्यों हो रही समस्या : सड़कों के चौड़ीकरण के नाम पर विशाल पेड़ काटे जा रहे हैं। पेड़ों के महत्व को समझना होगा। पटना में तो हरियाली की कोई संभावना नहीं दिखती। योजनाबद्ध तरीके से कालोनियाँ बसाई जानी चाहिए। गंगा किनारे फोर लेन बनने के बाद सरकार उस क्षेत्र में हरियाली बढ़ाने की योजना बना रही है। यह सड़क निर्माण के समय ही बन जाना चाहिए था। पेड़ कट रहे है। बड़े पैमाने पर खनन के कारण नदिया सूख रही है। वर्षा कम हो रही है। अत्यधिक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण अधिक गर्मी पड़ रही है। इससे बचने के लिए अधिक से अधिक पेड़ लगाएं। हमारे समतल क्षेत्र का ज्यादा से ज्यादा भाग हरित पटल हो, तभी हरियाली ग्रीन हाउस गैसों को अपने में अवशोषित कर सकेंगी।[7] अगर समय रहते नहीं सावधान हुए तो आने वाले समय में संपूर्ण जीव जगत संकट की स्थिति में पहुंच जाएगा। अगर यही हाल रहा तो पेयजल की विकट समस्या उत्पन्न हो जाएगी। जरूरी है वर्षा जल का अधिक से अधिक संचयन किया जाए, ताकि भूजल स्तर में सुधार हो सके। लोगों को वाटर हार्वेस्टिंग प्रक्रिया को अपनाते हुए सोख्ते का निर्माण कराना होगा।

और बढ़ेगी समस्या : मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के तीव्र गति से दुरुपयोग के कारण दिन प्रतिदिन पृथ्वी पर तापमान बढ़ता जा रहा है। पानी की कमी होने के कारण आमतौर पर रक्त गाढ़ा हो जाएगा। इससे हृदयघात और चर्म रोग जैसी बीमारियों में काफी तेजी से बढ़ोतरी होगी। पारिस्थितिकी तंत्र में जल चक्र पर विपरीत प्रभाव पड़ने के कारण अत्यधिक गर्मी पड़ेगी। प्राकृतिक संसाधनों के बेतरतीब दोहन से भूजल का स्तर दिन प्रतिदिन नीचे चला जा रहा है। यह खतरे की घंटी है। लू लगने से अथवा गर्मी के चलते मनुष्य के साथ ही अन्य जीव भी मर रहे हैं।[8]

पेड़–पौधे देते राहत : कुछ क्षेत्रों में पर्याप्त पेड़–पौधों के कारण गर्मी का असर कम हो जाता है। पटना के संजय गांधी जैविक उद्यान में घने पेड़–पौधे होने के कारण आसपास के क्षेत्र में 2^0 तक कम तापमान रहता है।[9] पटना में बख्तियारपुर से मोकामा तक जाने वाली पुरानी सड़क (एनएच–31) के दोनों तरफ पेड़ों के कारण वहां कम तापमान रहता है। पटना के खगौल में डीआरएम आफिस तथा दानापुर में दानापुर कैंट के आसपास घने पेड़ गर्मी में भी ठंड का एहसास कराते है। हालांकि, सड़कों के चौड़ीकरण के कारण कई विशाल पेड़ कट गए है। पश्चिम चंपारण में वन आच्छादन संतुलित होने के कारण स्थिति राहत भरी है। वाल्मीकि टाइगर रिजर्व और शहरी क्षेत्र के अधिकतम तापमान में आठ से 10^0 से0 तापमान का अंतर दर्ज किया गया है। जंगली क्षेत्र में रहनेवाले लोगों की परेशानी कुछ कम है। मधुबनी के अधिकांश वैसे क्षेत्र जहां अत्यधिक मात्रा में तालाब, कुआँ, नदी तथा बगीचे हैं। उन जगहों पर चापाकलों में सामान्य से पानी की मात्रा थोड़ी कम जरूर हुई है. लेकिन वे सूखे नहीं है। जमुई के झाझा प्रखंड के सिमुलतला क्षेत्र में काफी संख्या में पेड़–पौधे मौजूद हैं। इस क्षेत्र को मिनी शिमला के नाम से भी जाना जाता है। इस क्षेत्र में पूरे जिले की अपेक्षा कम गर्मी पड़ती है। शाम को इस क्षेत्र का मौसम बहुत ही खुशनुमा हो जाता है। मुंगेर के धरहरा प्रखंड के घटवारी वन क्षेत्र के कारण रात में शहर की तुलना में उमस कम रहती है। तापमान में भी ज्यादा उतार–चढ़ाव नहीं होता। बांका जिले में कटोरिया, चांदन और बेलहर तीनों प्रखंड में वन क्षेत्र का भूभाग सबसे अधिक है। यहां बसे आदिवासी गांव के लोग आज भी बिना एसी, पंखा और कूलर के रह रहे हैं।[10]

राज्य में हरित आवरण बढ़ाने के लिए वर्ष में 4.41 करोड़ पौधे लगाने का संकल्प लिया गया। इनमें से जीविका दीदी का कोटा एक करोड़ पौधों का था। ग्रामीण विकास विभाग मनरेगा योजना से 1.06 करोड़ पौधे लगाएगा। कृषि वानिकी समेत अन्य योजनाओं के तहत पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन विभाग द्वारा हरियाली बढ़ायी जाएगी।[11] पिछले साल में मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और उस समय के उप मुख्यमंत्री तेजस्वी प्रसाद यादव के नेतृत्व में राज्य का हरित आवरण 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 17 प्रतिशत पर लाने का कार्य चला। पौधारोपण अभियान एक जुलाई से शुरू हुआ और 30 सितंबर तक चला।

ग्लोबल वार्मिंग चिंता का विषय है। पेरिस समझौते में गर्म हो रही धरती के औसत तापमान की वृद्धि को 1.5 डिग्री के स्तर तक सीमित रखने के लक्ष्य को पूरा करने में बिहार बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रहा है। जल जीवन हरियाली योजना काफी कारगर साबित हो रही है। 133 आर्द्रभूमि में से 28 का स्वास्थ्य कार्ड तैयार किया गया है।[12] जलस्तर को भी बनाए रखने की चुनौतियां हैं। सिंगल यूज प्लास्टिक पर रोक लगायी गई है। कृषि वानिकी योजना के तहत 10 रुपये में किसानों को पौधे उपलब्ध कराए जा रहे हैं। तीन वर्ष तक पौधे को बचाने पर प्रति पौधे 10 रुपये सिक्यूरिटी मनी वापस करने के साथ और 60 रुपये सहायता राशि के रूप में दी जा रही है।[13]

इस वर्ष प्रचंड गर्मी से ग्लोबल वार्मिंग के कुप्रभाव को समझा जा सकता है। विभाग के अधिकारी और कर्मचारी राज्यभर में पौधारोपण के लिए अभियान चलाएंगे। पर्यावरण एवं वन विभाग रेलवे, पारा मिलिट्री पुलिस, एनजीओ, विद्यालयों एवं महाविद्यालयों सहित कई विभागों से समन्वय स्थापित कराकर पौधारोपण कराया जा रहा है।

निष्कर्ष : जब हम तमाम प्राकृतिक संसाधनों को धन के स्त्रोत रूप में देखते हैं और अपने स्वार्थ की खातिर उनका अंधाधुंध दोहन करते हैं तो यह नहीं सोचते कि हमारे बच्चों को स्वच्छ वृतांत पर्यावरण मिलेगा या नहीं। वर्तमान स्थितियों के लिए मुख्य रूप से हमारी कथनी और करनी का फर्क ही जिम्मेदार है। एक ओर हम पेड़ों की पूजा करते हैं तो वहीं उन्हें काटने से भी ज़रा नहीं हिचकते। हमारी संस्कृति में नदियों को माँ कहा गया है पर इन्हीं माँ स्वरूपा गंगा–यमुना की हालत किसी से छिपी नहीं है। इनमें हम शहर का खारा जल–मल, कूड़ा–करकट, हार–फूल यहाँ तक कि शवों को भी बहा देते हैं। हमें यह सोंच बदलनी होगी कि नियम तो बनाए ही तोड़ने के लिए। पर्यावरणीय नियमों का न्यायालय या पुलिस के डंडे के डर से नहीं बल्कि दिल से सम्मान करना होगा। हमें ध्यान रखना होगा कि हम प्रकृति से हैं, प्रकृति हमसे नहीं। बढ़ती जनसंख्या, कटते पेड़, बढ़ते उद्योग–धंधे वाहनों का प्रयोग, जानकारी का अभाव, बढ़ती गरीबी ने पर्यावरण असंतुलन को बढ़ाया है। पर्यावरण के प्रति जागरूक होकर हम इस पर्यावरण असंतुलन को कम कर सकते हैं।

संदर्भ सूची :

(1) अताउल्लाह एवं मुसलीमुद्दीन (2002) : बिहार का आधुनिक भूगोल, ब्रिलियंट प्रकाशन, पटना। पृष्ठ सं0–101

(2) वही, पृष्ठ सं0–102 / (3) वही, पृष्ठ सं0–103

(4) अवस्थी, डॉ0 नरेन्द्र मोहन (2007), पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ सं0–20 / (5) वही, पृष्ठ सं0 – 21

(6) चन्द्रप्पा, रमेश एवं रवि डी0 आर0 (2009) : पर्यावरणीय समस्याएँ, विधि और प्रौद्योगिकी, भारतीय परिप्रेक्ष्य, रिसर्च प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0–20

(7) जनसत्ता चौपाल, समाचार पत्र, पटना, 06 जून 2023, पृष्ठ सं0–06

(8) दैनिक जागरण समाचार पत्र, पटना, 22 जून 2023, पृष्ठ सं0–11

(9) पांडे, एम0 के0 (2014) : पटना में सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट, नेशनल सॉलिड वेस्ट एसोसिएशन ऑफ इंडिया, पृष्ठ सं0–12

(10) वही, पृष्ठ सं0 – 13

(11) सिंह, डॉ0 यू0 बी0 (2022) : पर्यावरणीय भूगोल, राजीव प्रकाशन, मेरठ (उ0प्र0), पृष्ठ सं0–25 / (12) वही, पृष्ठ सं0 – 26

(13) हिन्दुस्तान समाचार पत्र, पटना, 25 जून 2023, पृष्ठ सं0–02

■

हिन्दी नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन

चाँदनी प्रकाश *

महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण पुस्तक में डॉ. रामविलास शर्मा ने सर्वप्रथम 'हिन्दी नवजागरण' शब्द को स्थापित किया। इसके पूर्व भी 'बंगाल नवजागरण' के रूप में भारत में नवजागरण की चर्चा होती रही है। हिन्दी नवजागरण से तात्पर्य प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद हिन्दी पट्टी में हुए राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से है। हिन्दी में नवजागरण कुछ देरी से आया, क्योंकि यह बंगाल से होते हुए आया। 1757 ई0 में ही बंगाल अंग्रेजी राज के अधिकार में आ गया। स्वभावतः उनकी समृद्ध पूँजीवादी संस्कृति, शिक्षा, साहित्य से भी उनका संपर्क हुआ। इसलिए 'नवजागरण' सर्वप्रथम बंगाल में ही आया। वस्तुतः हिन्दी नवजागरण मुख्य रूप से अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे शोषण के खिलाफ में विद्रोह था, सिर्फ सांस्कृतिक, सामाजिक या धार्मिक आंदोलन नहीं था। बल्कि यह 19वीं सदी में साहित्य में वृहत् स्तर पर यूरोपीय संस्कृति का प्रभाव दिखता है, यही नवजागरण का सूचक है। यूरोप के मध्यकाल एवं आधुनिक काल के बीच के संक्रांति युग का बोधक 'नवजागरण' है। नवजागरण में आत्म–परिष्कार एवं आत्म–आलोचना भी पनपती है, क्योंकि कुछ नई चीजें बाहरी संस्कृति से आत्मसात् की जाती हैं, स्वयं की कमियों को पहचानकर।

हिन्दी नवजागरण की केन्द्रीय विशेषता हिन्दी प्रदेशवासी में स्वातंत्र्य की चेतना का पनपना है। हिन्दी नवजागरण के तीन चरण माने गये हैं, पहला चरण 1857 की क्रांति, दूसरा भारतेंदु–काल और तीसरा द्विवेदी युग।

1857 की क्रांति मुख्यतः हिन्दी पट्टी क्षेत्र में लड़ी गयी, इसलिए इसे हिन्दी नवजागरण के प्रथम चरण से जाना गया। यह लड़ाई हिन्दुओं एवं मुसलमानों ने मिलकर लड़ी थी। यह युद्ध हम सभी का जातीय संग्राम था, और भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भी। 1857 की क्रांति के बाद ही पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी व्यवस्था की शुरूआत होती है, इसलिए यहीं से आधुनिक काल की शुरूआत मानी जाती है। डॉ. नगेन्द्र नवजागरण की प्रक्रिया के बारे में कहते हैं– ''वैसे 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्य–समाज, ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल सोसायटी तथा इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म

* संपर्क : शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, कंकड़बाग, पटना–800020 मो.–7654162831

और समाज के पुनरूत्थान की प्रक्रिया आरम्भ हुई। हिन्दी पट्टी में 1857 की क्रांति के बाद भारतेंदु युग में नवजागरण को विस्तृत फलक मिला जिसमें नवजागरण की अवधारणा और मजबूत हुई। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत हैं, उनपर 'बंगाल नवजागरण' का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बंगाल की यात्रा की थी एवं 'ईश्वरचंद्र विद्यासागर' से उनकी घनिष्ठता से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। उनके भीतर स्त्री शिक्षा को लेकर चेतना एवं झुकाव बंगाल नवजागरण के कारण ही हुआ। यहीं से प्रेरणा पाकर उन्होंने स्त्रियों के लिए पहली पत्रिका 'बालाबोधिनी' निकाली। स्त्रियों की शिक्षा के प्रति गहरे झुकाव के कारण ही भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कलकत्ता के 'बेथून कॉलेज' की लड़कियों के लिए साड़ियाँ भिजवायीं थीं और तत्कालीन गवर्नर की पत्नी ने अपने हाथों से उन साड़ियों को वितरित किया था। भारतेंदु युग का नवजागरण पूर्व के लोक जागरण का ही विकसित रूप है।

भारतेंदु युग में भिन्न–भिन्न धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का व्यापक प्रभाव था, तो दूसरी ओर सामंतवाद एवं पूंजीवाद में टकराहट भी वृहत् स्तर पर थी। इस द्वंद्व के फलस्वरूप ही हिन्दी नवजागरण एवं भारतेंदु युग के साहित्य का विकास हुआ। रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''तुलसीदास ने भक्ति के रूप में वहीं नई परिस्थितियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र के राष्ट्रीय आत्मसमान के रूप में विकसित हुआ।[2] देशभक्ति की जो भावना बाद में मैथिलीशरण गुप्त कृत ''भारत भारती'' में लक्षित हुई। उसकी प्रेरणा–भूमि भारतेंदु, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि की कविताएं ही हैं।[3]

भारतेंदु युग मुख्यतः दो संस्कृतियों की टकराहट का काल है जिसमें आम जनता में सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन के लिए वातावरण भी तैयार करना था। साहित्य के माध्यम से देश में बढ़ते असंतोष को प्रकट करना भर ना था, अपितु सदियों से चले आते समाज की हड्डियों में बसे हुए सामंती विकारों से भी मोर्चा लेना था।[4] महारानी विक्टोरिया के घोषणा के बाद भी जब देश की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ तो उनके मन में रोष एवं क्षोभ उत्पन्न हुआ। उन्हें लगा कि अब शुद्ध राजभक्ति से काम नहीं चलेगा और उन्होंने राष्ट्रीयता की अवधारणा की शुरूआत अंग्रेजी राज की व्यापक आलोचना से की, जिसका आधार उन्होंने वर्त्तमान पर क्षोभ एवं भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम अतीत को बनाया। भारतेंदु की 'विजयनी विजय वैजयंती', प्रेमघन की 'आनंद अरूणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' और 'नया संवत' तथा राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कविताएं देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त हैं। इस संदर्भ में उन्होंने अपने प्रतिपाद्य को कहीं व्यंग्योक्तियों के माध्यम से प्रकट किया है, तो कहीं अतीत के प्रेरणादायी प्रसंगों की चर्चा द्वारा नवयुवकों को पुनर्जागरण का मंत्र दिया है।[5] भारतेंदु युग के दूसरे बड़े लेखक बालकृष्ण भट्ट राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार को सबसे बड़ा धर्म मानते हुए लिखते हैं– 'जिस काम को करने से 'नेशनलिटी हमारे में आवे, हमको अपनी स्वत्व रक्षा का ज्ञान हो, वही मूल धर्म है।[6] 'भारतेंदु युग में जनता के बीच स्वदेशी भाव को जागृत करने का प्रयास किया

गया। महात्मा गाँधी के द्वारा जो स्वदेशी आंदोलन चलाया गया था, उसका प्रारंभिक रूप भारतेंदु युग में दिखाई पड़ता है, जिसमें अंग्रेजी सरकार का विनाश दिखने लगा था।

''अपना बोया आप की खावै, अपना कपड़ा आप बनावै
माल विदेशी दूर भगावै, अपना चरखा आप–चलावै।''

रामविलास शर्मा ने लिखा है– ''हिन्दी भाषी जनता इस बात पर गर्व कर सकती है कि उसके नवजागरण के वैतालिक हरिश्चंद्र ने 24 वर्ष की अवस्था में स्वदेशी के व्यवहार की एक गंभीर प्रतिज्ञा की थी, उस दिन तरूण हरिश्चंद्र ने न केवल हिन्दी प्रदेश के लिए वरन् समूचे भारत के लिए नए युग का द्वार खोल दिया था। उस दिन राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पावन उद्देश्य से हिन्दी साहित्य का अटूट गठबंधन हो गया था। उस दिन हरिश्चंद्र की कलम से भारतीय जनता ने अंग्रेजी राज्य के नाश का वारंट लिख दिया था।''[7] 1857 की क्रांति में हिन्दी नवजागरण की जो अखंड ज्योति जली थी, उसकी अखंडता को भारतेंदु युग के पश्चात् बनाए रखने का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को जाता है, जिनके काल को हम द्विवेदी युग के नाम से जानते हैं। उन्होंने नवजागरण का संदेश पत्रकारिता के माध्यम से दिया। इस युग की प्रतिनिधि पत्रिका 'सरस्वती' थी, जिसके संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इसी पत्रिका के माध्यम से मुख्य रूप से जनसमुदाय तक नवजागरण का संदेश पहुँचाया गया एवं उनमें स्वातंत्र्य चेतना जागृत की गयी। बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरूत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी–युग की प्रधान भावधारा थी। अतः तत्कालीन कविता का मुख्य स्वर भी राष्ट्रीयता ही है।[8] बालगंगाधर तिलक एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी हमेशा एक–दूसरे के सम्पर्क में रहे। उन्होंने विस्तृत फलक पर 'नवजागरण' का संदेश फैलाया, जैसे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक आदि क्षेत्रों में लेकिन इनके युग में भी नवजागरण का केंद्रीय संदेश स्वातंत्र्य चेतना को ही बढ़ावा देना था। कितने विश्वास के साथ भारत–भारतीकार भारतवर्ष की श्रेष्ठता की घोषणा करता है–

'भू लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला–स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।।'

इन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हिन्दी–भाषी जनता को इस दिशा में उन्मुख होने के लिए प्रेरित किया। भारतेंदुकालीन साहित्यकार, जहाँ 'भारत दुर्दशा' पर दुःख प्रकट करके रह गया था, वहाँ द्विवेदीकालीन कवि–मनीषियों ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ–साथ देश वासियों को स्वतंत्रता–प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। उन्होंने आत्मोसर्ग एवं बलिदान का मार्ग भी दिखाया।[10] महावीर प्रसाद द्विवेदी हमेशा नवीन चेतना जागृत करने वाले के पक्षधर थे, जिसके कारण ही उनकी पत्रिका 'सरस्वती' में नवीन उपमान वाली कविताएँ भी छपने लगी थीं।

इन कवियों में श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जैसे विशिष्ट कवि भी थे, जो राष्ट्र चेतना को नवचेतना प्रदान करने की कोशिश कर रहे थे। इन कवियों ने देश की हीन दशा– धैर्य, शौर्य तथा कला–कौशल के अभाव पर भी क्षोभ व्यक्त किया है। ठाकुर गोपालशरण सिंह की ये काव्य–पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

'वह धीरता कहाँ है, गम्भीरता कहाँ है?
वह वीरता हमारी है, वह कहाँ बड़ाई?
क्या हा गयीं कलाएँ कौशल सभी हमारे?
किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई?'

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदुस्तान की दयनीय अर्थव्यवस्था, किसानों की लचर स्थिति, अंग्रेजी राज की साम्राज्यवादी व्यवस्था, जैसे गंभीर विषयों पर चोट की। 'सरस्वती' पत्रिका की विवेचना के केन्द्र में हिन्दुस्तान की निर्धन जनता है और इनकी निर्धनता की मुख्य वजह अंग्रेजी सरकार थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार शास्त्र वह है, जो मनुष्य की व्यावहारिक परेशानियों को व्यक्त करें। वे उस शास्त्र को बेकार मानते थे जो पढ़ने वालों को इस प्रश्न के प्रति भी जागृत नहीं करता कि देश की जनता गरीब क्यों है और इसे दूर करने का उपाय क्या है?

'सरस्वती' पत्रिका में 'वंदे मातरम्' गीत को संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया था। इस गीत का प्रकाशन देशवासियों में स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना को पुनः जागृत करने के लिए ही किया गया था। वैसे अंग्रेजी कविता जो देशवासियों में स्वतंत्रता की भावना जागृत करने वाली हो, उसका भी हिन्दी अनुवाद 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित किया गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी की नवीन सोच के कारण ही सन् 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में हीराडोम रचित 'अछूत की शिकायत' कविता छपी। 'सरस्वती' के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके द्वारा बनाए गए साहित्यकारों के दल ने हिन्दी नवजागरण को जन–जन तक पहुँचाया एवं वे उनमें स्वातंत्र्य चेतना का भाव जागृत करने में सफल रहे।

हिन्दी नवजागरण एवं स्वतंत्रता आंदोलन परस्पर एक–दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि हिन्दी नवजागरण का मुख्य संदेश ही 'स्वातंत्र्य' चेतना है। हिन्दी नवजागरण कुछ देरी से आया जबकि बहुत पूर्व ही यह समय की मांग हो गयी थी। अंग्रेजों की देश की संस्कृति, शिक्षा, सभ्यता, यहाँ तक कि भारतीयता पर ही बुरी दृष्टि थी एवं वे इन्हें बर्बाद करने पर तुले थे। इसलिए भी नवजागरण का संदेश जरूरी हो गया था। हिन्दी नवजागरण में कुछ समस्याएँ भी आईं, जिनमें साम्प्रदायिकता की समस्या प्रमुख है जिसका सामना अंग्रेजी सरकार की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के कारण करना पड़ा। 'पृथक निर्वाचन मंडल' मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति का प्रमाण है। हिन्दी उर्दू भाषा को धर्म से जोड़कर न सिर्फ भाषा में खाइयाँ पैदा की गयीं, बल्कि सांप्रदायिकता को भी बढ़ावा दिया गया। हिन्दी नवजागरण पर

प्रतिकूल प्रभाव राष्ट्रभाषा के सवाल के कारण भी पड़ा, क्योंकि हिन्दुस्तान बहुभाषी राष्ट्र है और प्रत्येक अलग–अलग भाषा – भाषी यही चाहते थे कि उनकी भाषा ही प्रत्येक हिन्दुस्तानी के मानस–पटल पर राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित हो। चूँकि अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी संविधान स्वीकृत नहीं है, यह जन–समुदाय के मानस द्वारा दिया हुआ अपनी भाषा के प्रति सम्मान है। कुछ समस्याओं के बावजूद हिन्दी नवजागरण का गहरा प्रभाव हिन्दी पट्टी के जन–समुदाय पर पड़ा एवं जनता में स्वातंत्र्य–चेतना जागृत और सशक्त करने में यह सफल रहा।

संदर्भ सूची–

1. त्रिवेदी, सुशील. पत्रकारिता के युग निर्माता महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. –9, प्रभात प्रकाशन, 2010
2. डॉ. नगेन्द्र. डॉ. हरिदयाल (सं.). हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं.–440, मयूर पेपरबैक्स, 1973
3. शर्मा, रामविलास. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास परम्परा, पृ. सं.–14, राजकमल प्रकाशन
4. वही
5. डॉ. नगेन्द्र. डॉ. हरदयाल (सं.). हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं.–440, मयूर पेपरबैक्स, 1973
6. भट्ट. बालकृष्ण, निबंध संग्रह, पृ. सं.–5, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
7. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, पृ. सं. –74, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004.
8. डॉ. नगेन्द्र. डॉ. हरदयाल (सं.). हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं.–477, मयूर पेपरबैक्स, 1973
9. वही
10. सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. सं.–10, राजकमल प्रकाशन, नइ दिल्ली
11. डॉ. नगेन्द्र. डॉ. हरदयाल (सं.). हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं.–477, मयूर पेपरबैक्स, 1973

■

हिमाचली लोकगीत

लामण का स्वरूप और विश्लेषण

निर्मल सिंह / डॉ. आशुतोष कुमार *

लोक में लोकगीतों के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। विभिन्न पर्व–त्योहारों पर निर्वहित होने वाली लोक परंपराएं लोकगीतों में छविमान होती हैं। श्रमरत जनमानस इन गीतों को गाकर ही थकान दूर करता है। प्रेमी हृदय की उमंग एवं तड़प गीतों में ही अनुभूत होती है। लोक के धार्मिक संस्कार एवं मेले–उत्सव लोकगीतों की स्वरलहरियों से गूंजायमान होते हैं। लोकजीवन में लोकगीतों का वितान अत्यंत विस्तृत है। हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी लोकपरिवेश की जीवंत एवं यथार्थ झांकी यहां प्रचलित विभिन्न गीतों में उपलब्ध होती है। प्रकृति के सान्निध्य में जीवन यापन करने वाला हिमाचली जनमानस गीत–गाथाएं गाता हुआ हिमालय के दूरस्थ अंचलों में विचरण करता है। यहां लोकगीतों की विविध शैलियां प्रचलित हैं जिनमें नैणी, झूरी, रिलू–बामणू, भौंरू एवं लामण इत्यादि प्रमुख हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य हिमाचल प्रदेशविशेषतः, कुल्लू जनपद में प्रचलित लामण लोकगीतों के विविध रूपों का अध्ययन करना तथा उनका सामाजिक–सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। इस शोध पत्र में कुल्लू जनपद में प्रचलित लामण गायन शैली के विशेष संदर्भ में हिमाचली लामण गीतों को श्रेणीबद्ध करके उनका विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा।

लोकगीत किसी समाज की सांस्कृतिक धरोहर स्वीकृत हैं। लोकमानस के चिरसंचित अनुभवों, विश्वासों, एवं मान्यताओं की अजस्र थाती लोकगीतों के रूप में संचित रहती हैं। लोक के सामाजिक जीवन एवं सांस्कृतिक वैभव के प्रतिदर्शन हेतु उस समाज के लोकगीतों का विश्लेषण अवश्यंभावी है। वस्तुतः भावों एवं अनुभूतियों का सहज उद्रेक जिस अकृत्रिम सांगीतिक आवरण में ढ़ल गया लोक ने उसे गीत के रूप में स्वीकार कर लिया। लोकजीवन के संस्कार, मूल्य एवं आदर्श लोकगीतों में छविमान होते हैं। लोकगीत किसी भी समाज की जीवन शैली को सहजता से जानने के प्रभावी कारक के रूप में प्रतिष्ठापित हैं। इस संबंद्ध में सुरेश गौतम लिखते हैं, ''किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रस स्रोत लोकगीत ही होते हैं। यदि हम किसी राष्ट्र की अन्तर्भावना,

* **संपर्क** – शोधार्थी : हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–171005 / सहायक आचार्य (हिन्दी), सांध्यकालीन अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–171001, मो–8219149886

सिद्धांतमूलक जीवन–पद्धति का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं तोहमें इस लोक संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करना होगा। यह ज्ञान हमें मुख्य रूप से लोकगीतों द्वारा ही प्राप्त होता है।'' लोक के पर्वोत्सवों की गमक, उत्साह, रोमांच एवं आनंद इन गीत सरणियों द्वारा ही महसूसा जा सकता है। लोकगीतों में अभिव्यक्त लोकमन के आनुभूतिक सत्य का सारल्य मानवी चेतना को परिपूरित करता दृश्यमान होता है।

हिमाचल प्रदेश हिमालय की पार्वती उपत्यकाओं में बसी पूज्य भूमि है। यहां का लोकजीवन प्रकृति के सान्निध्य में अपने देवी–देवताओं के साथ विचरण करता है। ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से यहां के लोकगीतों का महात्म्य सदियों से रहा है। देवी–देवताओं के प्रति भक्ति भाव, प्रेमी का प्रणय निवेदन तथा प्रेमी मन की पीर लोकगीतों में मुख्य रूप से निबद्ध रहता है। हिमाचल प्रदेश में प्रणय गीतों का समृद्ध कोष है। यहां के प्रणय गीतों में लामण, नैणी, झूरी आदि गीतों का प्राधान्य है। यदि कुल्लू जनपद के संदर्भ में बात करें तो यहां लामण, नैणी आदि गीतों के साथ रिलू, बामणू, भौंरू गीत भी प्रणय गीतों की कोटि में समादृत हैं। भाव साम्य होते हुए भी इन गीतों में शैलीगत वैभिन्न्य रहता है। मूल विषय प्रणय होने पर भी शिल्प की दृष्टि से ये गीत परस्पर भिन्नता रखते हैं। प्रणयपरक गीतों में भी सर्वाधिक लोकप्रचलित लामण गीत हैं जिनका गायन विवाह, मेलों अथवा अन्य सामाजिक समारोहों में होता है। प्राचीन काल में लामण गीतों का गायन शारीरिक श्रम करते हुए बहुतायत होता था। अतएव इन गीतों को प्रणयपरक श्रम गीतों की संज्ञा भी निर्विवाद दी जा सकती है।

हिमाचल प्रदेश के अतिरिक्त लामण उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में भी अनेक अवसरों पर गाए जाते हैं। मूल रूप से लामण वाद्य रहित एकल गायन की विधा है। कव्वाली गायन के अनुरूप लामण गायन में भी गायक एक हाथ कान पर रखता है तथा दूसरे हाथ से गीत में अनुस्यूत भावानुरूप चेष्टाएं करता है। शैली की दृष्टि से लामण द्विपदी मुक्तक गीत है जिसमें प्रथम पंक्ति तुकबंदी के लिए प्रयुक्त होती है तथा द्वितीय पंक्ति में मुख्य भाव की अभिव्यक्ति होती है। ओम चंद हांडा इस संबंध में लिखते हैं,''पहाड़ी लोकगीतों में दोपदी मुक्तकों का स्थान सर्वोपरि है। दोपदी मुक्तकों में भी ''लामण'' गीत भाव–प्राचुर्य और लयात्मक गुणों के कारण सर्वप्रिय हैं।'' लामण दोहा छंद की भांति में दो पंक्तियों में रचित मुक्तक गीत है जिसका मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम है तथापि नीति एवं सदाचारण का भाव भी इनमें अनुस्यूत रहता है। व्यक्ति के पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों की व्याख्या करने में भी लामण महनीय भूमिका निभाते हैं।

कुल्लू जनपद के लामण गीतों में भाव एवं विषयगत वैविध्य है। प्रेम, नीति, सदाचार, सामाजिक व्यवहार, दैनंदिन जीवन की स्थितियां लामण गीतों में अभिव्यंजित होती हैं। शृंगार के साथ नीति, धर्म, सदाचार एवं लोक–व्यवहार की शिक्षा का भाव लामण गीतों में प्रमुखता के साथ रहता है। कुल्लू जनपद के बाह्य सराज क्षेत्र में प्रचलित लामण गीतों का विश्लेषण अधोलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

शृंगारिक लामण : साहित्य में शृंगार निरूपण साहित्य रसिकों के आह्लाद का प्रभावी स्रोत है। मानव मन की प्रधान वृत्ति प्रेम का सरल–सहज परिपाक शृंगार के रूप में होता है। नर–नारी का एक दूसरे के प्रति रति भाव शृंगाररस में परिणत होता है। स्त्री–पुरूष का परस्पर आकर्षण इस भाव को जागृत करता है। रामदेव शुक्ल शृंगार के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं,"सृष्टि की सृजन–परंपरा को अनवरत चलाते रहने के लिए शृंगार अर्थात नर–मादा के बीच का प्रबल आकर्षण एक अदम्य भाव के रूप में प्रकृति द्वारा दिया गया है। मनुष्य अपनी विकास यात्रा में उस आकर्षण को निरंतर बढ़ाता गया।" प्राणी हृदय के आदिम भाव प्रेम को नर–मादा के परस्पर कामाकर्षण तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसके वितान संतान–सहोदरों के प्रति वात्सलय से लेकर ईश्वरीय रति तक विस्तृत हैं। यह सत्य है कि कवियों ने नायक–नायिका की रति को कविता में गूंथने में अपेक्षाकृत विशेष रूचि दिखाई है। प्रत्येक युग में काव्य सर्जक शृंगार भावना को काव्य रचना का मुख्य उत्प्रेरक मानकर इस ओर उन्मुख हुए हैं। यह स्पष्ट है कि काव्य जगत के शिखर व्यक्तित्वों ने अन्य बातों की तरह शृंगार निरूपण की प्रेरणा भी लोक से ही ग्रहण की होगी। लोक साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति ही जनमन के अकृत्रिम भावों का सहज प्रकाशन करना है जिसमें प्रेम सर्वोपरि है। लोक की शृंगार चेतना लामण गीतों में परिपक्वता प्राप्त करती दृष्टिगत होती है। कुल्लू जनपद में प्रचलित लामण गीतों में अनुस्यूत संयोग एवं वियोग शृंगार के छींटे श्रोता को आह्लिदत करते हैं।

संयोग शृंगार प्रधान लामण : लामण गीतों में प्रेमी हदयों की आनंद तरंगें श्रोता के चित को मथने का अनुपम सामर्थ्य रखती हैं। प्रणय की विविध स्थितियों जैसे प्रेमी का प्रणय निवेदन, प्रेमिका का प्रणय स्वीकरण, प्रेमी चित्त की पीड़ा, प्रेमी–प्रेमिका का रूठना–मनाना, हास–परिहास आदि लामण गीतों में निबद्ध रहता है। कुल्लू जनपद के बाह्य सराज क्षेत्र में प्रचलित संयोग शृंगार प्रधान लामण गीतों का विश्लेषण प्रस्तुत लामणों के परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता हैः
'चिठी टोपाली बुणौ लाहुली बोटै/गपा ती मारनी झूरिए, धैले गेऐ कातके छोटै।'

प्रस्तुत लामण गीत में नायक नायिका को संबोधित करता हुआ कहता है कि मेरा मन तुमसे बात करने का है लेकिन कार्तिक माह के दिन छोटे होने के कारण ऐसा संभव नहीं है। संभवतः नायिका को दिन ढ़लने से पूर्व घर लौटना है जिसके कारण नायक एक लामण के माध्यम से अपनी मनःस्थिति व्यक्त कर रहा है।

'गेठैभौकदी आगा, छापरै निकड़ौ धुंऔ/सौंग नै चोड़नौझूरिए, जौग लोड़ी वैरी हुऔ।'

प्रस्तुत लामण में नायक प्रेम के बंधन को सुदृढ़ बनाने के लिए नायिका को संबोधित करता हुआ कहता है कि हम अपना साथ कभी नहीं छोडेंगे भले ही पूरा संसार हमारा शत्रु क्यों न हो जाए। अपने प्रेम के लिए नायक पूरी दुनिया से शत्रुता लेने को भी प्रस्तुत है। प्रेम पथ पर अविचल एवं अडिग रहने वाले सच्चे

प्रेमी का संकल्प लामण गीत में अभिव्यक्ति पाता है– 'बिजिए गैणिए जुगु लागै मुगुलै तारै/लोगु दैए बोलणै, सौंग नैई चोड़नौ म्हारे।'

इस लामण में भी प्रेमी हृदय का समर्पण एवं संकल्पशक्ति अभिव्यक्त हुई है। प्रेमी प्रियतमा से अपने प्रेम की विश्वसनीयता कायम रखने का आह्वान करता हुआ कहता है कि लोग हमारे प्रेम पर कुछ भी लांछन लगाएं अथवा अभद्र टिप्पणियां करें लेकिन हम एक–दूसरे का साथ नहीं छोडेंगे। लोक प्रवाद हमारे संबंध को विच्छिन्न नहीं कर सकते। सच्चा प्रेम लोकप्रवादों की चिंता न करते हुए प्रेमपथ पर अडिग रहते हैं।

वियोग शृंगार प्रधान लामण : प्रियतम की प्रतीक्षा में उपजी हृदय की वेदना शृंगार रस को परिपूर्णता प्रदान करती है। काव्य रसिकों ने विछोह के क्षणों की भावभूमि को विप्रलंभ अथवा वियोग शृंगार की संज्ञा प्रदान की है। प्रेम में मिलन के क्षण आह्लादकारी अवश्य होते हैं किंतु वह आनंद क्षणिक है। प्रेम तो वियोग की पीड़ा से ही अमरत्व प्राप्त करता है। वियोग वर्णन में प्रेम का जो परिमार्जित रूप दृश्यमान होता है वह संयोग के क्षणों में दुर्लभ है। लामण गीतों में वियोग शृंगार के सरस चित्र उपलब्ध होते हैं। इन गीतों में प्रेमी चित की वेदनाजनित आहें, प्रेम की पीड़ा से उपजा करूण क्रंदनपाषाण हृदय को विदीर्ण करने का सामर्थ्य रखता है। इस प्रवृत्ति के कतिपय लामण प्रस्तुत हैं– 'बशलेउ निकड़ी बादड़ी, मधैणी निकड़ो तारौ/सूरज बिछड़ौ चौंद्रा, संग बिछड़ौ म्हारौ।'

प्रस्तुत लामण में वियोग वेदना से पीड़ित नायक अत्यंत कारूणिक स्वर में कहता है कि सूरज एवं चंद्रमा जिस प्रकार से बिछडे हैं उसी भांति हमारा साथ भी बिछड़ गया है। सूरज एवं चांद जैसे प्रतीकों से अपने मन के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करना लामण गीतों के वैशिष्टय को उजागर करता है।

'सारौ नांहौ शाउणा, सारौ नांहौ भौद्रो म्हीनौ
दुखिओ बोला सुखिओ, चिठी ना कागजू दीनौ।'

प्रस्तुत लामण में नायक कहता है कि श्रावण एवं भाद्रपद महीने समाप्त हो चुके हैं लेकिन मेरे प्रियतम ने अपने सुख–दुख के क्षणों से संबंधित कोई भी पत्र अथवा संदेश मुझे नहीं भेजा है।

'हौरी नगाड़ा रा किड़दू, शुकी नगाड़ा री नौदी
लोभी डेउऔ दूरा देशा लै, हैबै सौ मिलणौ कौदी।'

प्रस्तुत लामण में वियोगिनी नायिका कहती है कि मेरा प्रियतम कहीं दूसरे देश चला गया है अब न जाने हमारा पुनर्मिलन कब हो पाएगा!

शृंगारिक लामण गीतों में प्रेम की विविध दशाओं का अंकन सहजता से होता है। संयोग एवं वियोग के मर्मस्पर्शी चित्र इनमें उभरते हैं जिससे श्रोता के चित में भावों एवं संवेदनाओं का उद्रेक होता है। प्रेम मार्ग के कष्टों एवं पीड़ाओं को प्रेमी लामण गीतों में व्यक्त करता है। लोक के दैनदिन जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं, प्रकृति के विविध उपादानों तथा अनेक लोक प्रचलित प्रतीकों एवं

उपमानों का आधार ग्रहण करके लामणकार प्रेमी हदय की बात को सरल भाषा में कहता है। अपने आसपास के जीवन में प्रयोग होने वाली वस्तुओं को लामण की प्रथम पंक्ति में पिरोकर लामणकार अद्‌भुत तुकबंदी करते हुए अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय देता है। शृंगारिक लामणों से लोक की जीवन शैली, रहन–सहन आदि का भी परिचय प्राप्त होता है। 'हौरी नगाड़ा रा किड़टू, शुकी नगाड़ा री नौदी' लामण में प्रयुक्त वस्तुएं लोकजीवन से ग्रहण की गई हैं। हिमाचल के ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बांस की प्रजाति का नगाल नामक एक पौधा पाया जाता है जिसकी लकड़ी को छीलकर किलटे, टोकरियां आदि निर्मित की जाती हैं। कुल्लू जनपद में हरी नगाल से किलटे तथा टोकरे आदि बनाए जाते हैं वहीं यदि नगाल सूख जाए तो उससे एक नली बनायी जाती है जिसका प्रयोग हुक्का पीने के लिए किया जाता है। नगाल बांस से बनी इस नली को 'नौदी' कहा जाता है। वियोग वर्णन में चौमासा की अवधारणा लामण गीत में दृष्टिगत होती है। 'सारौ नांहौ शाउणा, सारौ नांहौ भौद्रो म्हीनौ' लामण में वर्षाकाल में नायिका वियोग वेदना से पीड़ित है। काव्य में वर्षाकाल के चतुर्मास में वियोग निरूपण की समृद्ध परंपरा है। लोकगीतों में वर्षा ऋतु के चतुर्मास में वियोग शृंगार का निरूपण लोक की साहित्यिक विद्वता एवं मनोवैज्ञानिक समझका द्योतक है।

लोक देवी–देवताओं संबंधी लामण : हिमाचल प्रदेश देवी–देवताओं की पुण्य भूमि है। यहां के विभिन्न जनपदों में पूजितदेवी–देवताओं का संबंध प्राचीन ऋषियों एवं पुराण वर्णित देवी–देवताओं से है जबकि कुछ विशुद्ध लोक देवता भी हैं। लोकजीवन के धार्मिक एवं सांस्कृतिक सरोकार लोक देवताओं से अंतर्संबंधित रहतेहैं। देवी–देवताओं की पूजा पद्धति, उनकी उपासना संबंधी विविध संस्कार, विश्वास, देवाचार एवं देव परंपराएं आदि लोक साहित्य में अभिव्यक्ति पाती हैं। कुल्लू जनपद में देवी–देवताओं की देव शक्तियों का आह्वान, स्तुति एवं प्रशस्ति गान में लामण गीतों का अन्यतम स्थान है। शृंगार प्रतिपादन लामण का मूल विषय है। इसी शृंखला में भगवद् विषयक रति को लामण गीतों में अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। जब भक्त अपने आराध्य देवता की आराधना में लीन हो जाता है तो जिस भाव की उत्पत्ति होती है उसे भगवद् विषयक रति कहा जाता है। देवी–देवताओं संबंधी लामण गीतोंमें इसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। कुल्लू जनपद के बाह्य सराज में लोक देवी–देवताओं को समर्पित लामणों का अक्षय कोष है जिन्हें गाकर लोग अपने हृदय की भावुक पुकार को अपने इष्ट देवता तक संप्रेषित करते हैं। कतिपय लामण उद्धृत हैं :

'हुंदी बौसा महामाई, उजी नातड़ी नागा
इनारी पीठिए, डौर कौसीए न लागा।'

प्रस्तुत लामण में कुल्लू जनपद की छोटी काशी कहे जाने वाले निरमंड नगर की अधिष्ठात्री देवी माता अंबिका एवं नातली नाग की स्तुति हुई है। इस लामण की प्रथम पंक्ति का अर्थ यह है कि नीचे माता अंबिका महामाई का तो ऊपर पहाड़ी

पर नातली नाग का वास है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में लामण गायक कहता है कि इन दोनों देव शक्तियों के आर्शीवाद स्वरूप लोग निशंक, निडर एवं निर्भीक होकर जीवन यापन करते हैं। प्रस्तुत लामण गीत में देवताओं के प्रति लोक की ध ार्मिक आस्था को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है वहीं इसमें निरमंड के भौगोलिक परिदृ श्य की झलक भी दृष्टिगत होती है। माता अंबिका का मंदिर निरमंड नगर में स्थापित है वहीं नातली नाग का मंदिर पहाड़ी के शीर्ष पर स्थापित है।

नीति संबंधी लामण : लामण का प्रधान विषय शृंगार निरूपण है तथापि इनमें नैतिक शिक्षा का भाव भी अनुस्यूत रहता है। लोक में ऐसे लामण गीतों का बाहुल्य दृश्यमान होता है जिनमें नीति एवं उपदेशात्मकता का स्वर ध्वनित होता है। लोक को नीति, सदाचार, लोकव्यवहार एवं मानव मूल्यों की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही ऐसे लामण गीतों का प्रणयन हुआ है। जिन लामणों में सत्य, ईमानदारी, करूणा, प्रेम, मानवीय सद्भाव, सदाचरण जैसे गुणों का उपदेश दिया जाता है उन्हें नीति संबंधी लामणों में सूचीबद्ध किया जा सकता है। नीति संबंधी लामण लोक के शिक्षक हैं। सदियों से लोक ने इन लामण गीतों से ही जागतिक व्यवहार एवं मानवीय गुणों को आत्मसात करने की प्रेरणा प्राप्त की है। आधुनिक युग में भी ये लामण अत्यंत सधी हुई सरल–सहज लोकभाषा में जगत के अबूझ सत्य का साक्षात्कार कराते हैं जो लोगों को सहजता से ग्राह्य होता है। जो शिक्षा व्यक्ति शास्त्र एवं पोथियों की शुष्क एवं नीरस भाषा से ग्रहण नहीं कर पाता उसे वह लामण से अत्यंत सहज रूप में प्राप्त कर लेता है। कुल्लू जनपद में लामण लोक को नैतिक शिक्षा प्रदान करने में सदियों से प्रासंगिक है। जनपद के बाह्य सराज क्षेत्र में प्रचलित नीतिपरक लामणों के विश्लेषण से इनके वैशिष्ट्य एवं वर्तमान प्रासंगिकता का आंकलन किया जा सकता है। इस श्रेणी के कतिपय लामण प्रस्तुत हैं :

'झौरी नैभाउणी, झौरीओ लागा झरेऔ
झौरी शोटे पोरी, शाह डाहे पाथरा जेहौ।'

प्रस्तुत लामण में आलस्य एवं चिंता के दुष्परिणाम तथा आलस एवं चिंता त्यागकर जीवन में आगे बढ़ने का पवित्र संदेश अनुस्यूत है। लामण की प्रथम पंक्ति का अर्थ है कि मनुष्य को जीवन में कभी आलस नहीं करना चाहिए क्योंकि आलस्य भीतर ही भीतर कुंठा का रूप लेता है जिससे व्यक्ति निराशावादी बन जाता है और अनेक मानसिक एवं शारीरिक रोगों से ग्रसित हो जाता है। दूसरी पंक्ति में लामणकार कहता है कि आलस्य को त्यागकर अपने चित्त को कठोर बनाकर जीवन में कर्म करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

'सोचणौ नै सोठणौ, लागणौ नै आशुऐ रोंदै
लिखौ नै टौलदौ, सोचे मौने नै हौंदे।'

प्रस्तुत लामण में भी व्यर्थ की चिंता न करने का उपदेश निहित है। लामणकार कहता है कि जीवन में पल–प्रतिपल सोच में डूबकर व्यर्थ की चिंता करते

हुए अश्रु नहीं बहाने चाहिए। क्योंकि विधि का लिखा कभी नहीं टलता है इसलिए मनुष्य जैसा सोचता है वैसा जीवन में घटित नहीं होता है। चिंता त्यागकर अपने कर्म में प्रवृत्त होने का संदेश उपदेशात्मक लामणों में विन्यस्त रहता है।

'चौंद्रा–सूरजाजोथा ग्रौहणा लागा
सौबीपौड़ा विपदा, सौबीए रोणा भागा।'

प्रस्तुत लामण में सांसारिक दुःखों, पीड़ाओं एवं कष्टों का अत्यंत भावुक भाषा में वर्णन हुआ है। लामणकार कहता है कि यह संसार दुःखों का घर है। जब तक प्राणी इस नश्वर जगत में है तब तक उसे कष्टों एवं पीड़ाओं को झेलने के लिए तत्पर रहना पड़ेगा। सूरज एवं चांद भी ग्रहण के रूप में विपदा झेलते हैं। समस्त प्राणियों को भी इस संसार में आकर विपत्तियों का सामना करता है। यह संसार दुःखों का घर है जहां सबके भाग्य में रोना लिखा है। कष्टों एवं पीड़ाओं से भरे संसार की सत्यता को यह लामण सरल भाषा में व्यक्त करता है।

'जोथ लागी चानणी, लागीदेउरे नासै
माणू पछैणिया नीति कै, फूल पछैणिया बासै।'

प्रस्तुत लामण में मनुष्य की नैतिकता, सद्व्यवहार, एवं सद्गुणों को ही उसकी वास्तविक पहचान बताया है। लामणकार कहता है कि जिस प्रकार एक फूल की पहचान उसकी सुगंध से होती है उसी प्रकार मनुष्य की पहचान उसका नीतिसम्मत आचरण होता है। फूल अपनी सुगंधि से ही जग में ख्याति पाता है उसी प्रकार मनुष्य अपने सदाचरण से जग में महानता प्राप्त करता है। नीति संबधी लामण लोक के पथप्रदर्शक हैं। उपदेशात्मकता इनकी प्रधान प्रवृत्ति है। लोक व्यवहार का ज्ञान लामणों से सुलभ है। समाज में मनुष्य सम्मत व्यवहार न करने वाल व्यक्ति सदैव निंदित होता है। सदाचारण एवं सम्यक व्यवहार से व्यक्ति समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा का अधिकारी बनता है। नीति विषयक लामण लोक को जागतिक व्यवहार कुशलता का पाठ पढ़ाते हैं। लामण कांता सम्मत उपदेश देते हैं जिसे लोक कभी अस्वीकार नहीं करता।

जागतिक सत्यता एवं पारिवारिक संबंध विषयक लामण : लोक शास्त्र ज्ञान को नहीं जानता और न ही वह पोथियों का अध्येता है। सभ्यता के आविर्भाव से अब तक उसने जो देखा, महसूसा और अनुभव किया उन अनुभवों को सीधी एवं सरल भाषा में अभियक्ति प्रदान कर दी। जागतिक एवं सामाजिक सत्यों से लोक का जो साक्षात्कार होता है वह लोक साहित्य में अभिव्यंजित होता है। सांसारिक रीति–नीति, नियम–कायदे, समाज में व्यक्ति के रिश्ते–नातों की महता, व्यक्ति–व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों की सत्यता, पारिवारिक संबंधों का ताना–बाना लामण गीतों में प्रादुर्भूत होता है। लामण गीतों द्वारा सांसारिक सत्यता एवं पारिवारिक संबंधों का परिचय सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। जो बात शुष्क उपदेश से समझाना दुष्कर होता है उसे लामण जैसे द्विपदी गीत में भावुकता से गाकर व्यक्ति को आत्मसात कराना अत्यंत सरल है। लोक में इस कारण भी लामण गीतों का महत्व अक्षुण्ण है।

'धाना मांही काउणी, काउणीमांहे चीणा
भाई लोड़ी आपणौ, लोगा नै लागदी झीणा।'

भारतीय समाज में रक्त संबंधों की घनिष्ठता जगप्रमाणित है। सहोदर संबंधों की प्रगाढ़ता का द्योतन लामण गीत करते हैं। भाई के रिश्ते की महता को उजागर करता हुआ लामणकार कहता है कि भाई अपना होना चाहिए लोगों से वह अपनत्व प्राप्त नहीं होता जो अपने भाई से मिलता है। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार में पनपती विघटन की स्थिति एवं एकल परिवार के बढ़ते चलन ने सहोदर संबंधों को छिन्न–भिन्न कर दिया है। पारिवारिक विघटन के इस त्रासद समय में लामण सहोदर संबंधों की महता से लोक को अवगत कराते हैं।

'लोहेमौनशी, पीतलो लाणौ जौंदौ
डौरै नै जीउणौ, जेबी तैंई बापुओ बौंदौ।'

भारतीय समाज में पिता का सान्निध्य किसी भी व्यक्ति के लिए सौभाग्य प्रदाता है। जब तक पिता का साया बच्चों के सिर पर रहता है तब तक बच्चे भी अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों से मुक्त रहते हैं। पिता के सान्निध्य में बच्चा निशंक एवं निर्भीकता के साथ जीवन यापन करता है। लामणकार कहता है कि जब तक पिता जीवित हो तब तक किसी भी व्यक्ति को डरकर जीवन यापन नहीं करना चाहिए। रक्त संबंधों की श्रेष्ठता एवं महत्व लामण गीत उजागर करते हैं। पारिवारिक संबंधों की गुरुता, रिश्ते–नातों की प्रगाढ़ता एवं सांसारिक रीति–नीति का ज्ञान लामण गीतों द्वारा सुलभ होता है।

निष्कर्ष – हिमालयी क्षेत्रों में लामण गीतों के गायन की एक सुदीर्घ परंपरा लक्षित होती है। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू, मंडी, शिमला एवं सिरमौर जनपद के साथ उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में लामण गीतों की भावधारा सदियों से अविरल प्रवाहित है। प्रेमी हृदय की उमंगें एवं विषाद लामणों में उजागर होता है। लोक को नैतिक शिक्षा का पाठ लामण गीतों से प्राप्त होता है। भाई–बहन के स्नेह की किलक, देवर–भाभी एवं जीजा–साली का हास–परिहास, सास–बहू एवं ननद–भाभी की चुहलबाजियां लामण गीतों में अभिव्यक्त होती हैं।लामण गीत काव्य सौष्ठव भी अनुपम है। दोहे से साम्यता रखने वाला लामण अपनी अद्भुत तुकबंदी के कारण कविता जैसी गुरुता का आभास कराता है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण अलंकारों की अद्भुत छटा लामण गीतों के काव्योत्कर्ष को बढ़ाते हैं। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जनपद में लामण प्रणय गीतों की श्रेणी में समादृत होने वाले श्रमगीत हैं। प्राचीन समय में शारीरिक श्रम करते हुए लामण गीतों का गायन किया जाता था। कृषि कार्यों जैसे फसल बोआई, निराई एवं कटाई करते समय लामण गीत गाये जाते थे जिनके माध्यम से लोग भरपूर मनोरंजन करते थे। वन में गोचारण करते हुए, लकड़ी–घास का कटान करते हुए ऊंचे स्वर में लामण गीत गाये जाते थे जिसमें प्रकृति भी सम्मिलित होती थी। प्रायः दो पक्षों के मध्य प्रश्नोत्तर शैली में लामण गीत गाये जाते थे। स्थिति के अनुसार भावावेग में लामण गीतों की रचना होती थी।

लामण तत्कालीन लोगों की काव्य प्रतिभा एवं काव्य रसिकता से भी परिचय कराते हैं। संभवतः मनोविनोद के साधनों के अभाव ने ही लामण गीतों की परंपरा को उर्वर एवं जीवंत बनाया था। वर्तमान समय में श्रम गीतों के रूप में लामण गायन की परंपरा क्षीण होती दृष्टिगत होती है। वर्तमान समय में विवाह, मेलों एवं अन्य सामाजिक समारोहों के अवसर पर अवश्य लामण गीत सुनने को मिलते हैं किंतु लामण की स्वरलहरियां अब उस रूप में सुनाई नहीं पड़ती जैसे बीसवीं शताब्दी के अंत तक सुनाई देती थी। यदा कदा बड़े–बुजुर्ग लामण गाते अब भी गांव में दृष्टिगत होते हैं। प्रश्नोत्तर शैली में लामण गाने की परंपरा क्षीण होती दृष्टिगत होती है। कुल्लू जनपद के बाह्य सराज में लामण विशेष रूप से विवाह समारोहों पर गाये जाते हैं। इंटरनेट एवं सोशल मीडिया के इस युग में लामण लोकमनोरंजन के मुख्य साधन अब नहीं रह गए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सुरेश गौतम, लोक साहित्य, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृ. 65
2. ओम चंद हांडा, पश्चिमी हिमालय की लोक कलाएं, इण्डस पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण : 1981, पृ. 43
3. शंभुनाथ (सं.) हिंदी साहित्य ज्ञानकोश–6, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2019 पृ. 3786
4. श्रीमती देवकी देवी गांव बूटीधार डाकघर घाटू तहसील निरमंड जिला कुल्लू (हि.प्र.) से भेंटवार्ता द्वारा
5. लामण गीत के मूलपाठ का संकलन, दिनांक 12 जनवरी, 2023

6–8. वही

9. श्रीमती रीमा ठाकुर गांव चौहणी डाकघर खुन्न तहसील आनी जिला कुल्लू (हि.प्र.) से भेंटवार्ता द्वारा लामण
10. गीत के मूलपाठ का संकलन, दिनांक 14 जुलाई, 2024

11–13. वही

14. श्री देशराज ठाकुर गांव नाली डाकघर जाओं तहसील आनी जिला कुल्लू (हि.प्र.) से भेंटवार्ता द्वारा लामण गीत के मूल पाठका संकलन, दिनांक 20 अगस्त, 2024

15–17. वही

18. दीपक शर्मा निवासी निरमंड जिला कुल्लू (हि.प्र.) से भेंटवार्ता द्वारा लामण गीत के मूल पाठ का संकलन, दिनांक 20 जून, 2021

19–20. वही

■

अलगावबोध : अवधारणा, स्वरूप और चुनौतियाँ

डॉ. दीक्षा मेहरा *

'अलगाव' मनुष्य में विद्यमान एक ऐसा भाव है जो मनुष्य को अपने आस–पास, सगे–संबंधियों, अपने देश, समाज आदि से अलग कर देता है। इसमें मनुष्य स्वयं को कटा हुआ और अकेला महसूस करता है। लक्ष्मीसागर जी का मानना है कि– "अकेलापन या घर के प्रति आकर्षण न होना आधुनिकता की ट्रेजडी है या युद्धोत्तरकालीन यूरोप के जीवन की भयानक विसंगति है।"[1] वस्तुतः व्यक्ति समाज का एक अभिन्न अंग होता है, वह जिस समाज में रहता है उस समाज की उससे कुछ अपेक्षाएँ होती हैं। जब किसी कारणवश व्यक्ति उन अपेक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पाता, तो उसके भीतर हीन भावना बलवती होने लगती है, इसी कारण कभी–कभी वह सामाजिक उपेक्षा का शिकार भी हो जाता है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति समाज से विघटित होने लगता है, वह दूसरों से अलग और एकाकी रहना अधिक पसंद करने लगता है। ऐसे में वह अन्य व्यक्तियों से भावनात्मक, विचारात्मक रूप से विलग होता चला जाता है। अक्सर ऐसी स्थिति में व्यक्ति का समाज से सामांजस्य स्थापित नहीं कर पाता, साथ ही अकेलेपन और तनाव के कारण वह मानसिक रोगी तक बन जाता है। आदिकालीन समाज में इस अवस्था को 'पागलपन' के अंतर्गत लिया जाता था, किंतु वर्तमान में यह स्थिति मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में सामने आती है। वर्तमान समय में मनुष्य के भीतर 'अलगावबोध' की उत्पत्ति के लिए विविध कारणों, घटनाओं, परिस्थितियों और बदलते समाज को जिम्मेदार ठहराया जाता है। अलगावबोध के फलस्वरूप व्यक्ति महसूस करने लगता है कि समाज को उसकी कोई आवश्यकता नहीं है और न ही उसे समाज की कोई आवश्यकता है। इसी कारण वह धीरे–धीरे समाज से दूर होने लगता है और स्वयं को सामाजिक संबंधों से मुक्त करने का प्रयास करने लगता है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में कई ऐसे कारण विद्यमान हैं जिनके कारण मनुष्य अकेलेपन का शिकार होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं को असुरक्षित, बेसहारा और अकेला अनुभव करने लगता है। इस संदर्भ में मणि मधुकर का कथन अत्यंत समीचीन है– "आज का आदमी कुछ ऐसे माहौल में घिरा

* संपर्क : असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, डी. एस. बी. परिसर, नैनीताल, मो.– 9759739015

है जिसमें वह एडजस्ट नहीं कर पा रहा है। जिसे आप अलगाव कहते हैं, वह व्यक्ति की समाज और व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया है। यह प्रतिक्रिया बड़ी तीव्र है।"[2]

'अलगाव' लगाव न होनी की स्थिति है। यह अलगाव स्वयं से, अपने परिचितों से, अपने गाँव, अपने देश, अपनी भाषा, अपनी व्यवस्था, किसी व्यक्ति विशेष आदि किसी के प्रति भी हो सकता है। इसी को अंग्रेजी में 'ऐलिनेशन' कहा जाता है। 'डिक्सनरी ऑफ इंग्लिस लैग्वेज' के अनुसार– "ऐलिनेशन की अवधारण ऐसे व्यक्ति से है जो जन्म से ही एक देश के प्रति लगाव तथा अन्य से बिलगाव की प्रवृत्ति के साथ रहता है।"[3] इस प्रकार का अलगाव तब महसूस होता है जब व्यक्ति अपने देश, क्षेत्र आदि से किसी कारणवश दूर दूसरे देश या क्षेत्र में जन्म लेता है। 'डिक्सनरी ऑफ सोसियोलॉजी' के अनुसार– "अलगावबोध का अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है, जो स्वयं अपने को अजनबी मानता है और अपने में विरसित है।"[4] अर्थात् मनुष्य की ऐसी स्थिति जब वह किसी घटना या अन्य कारणों से स्वयं (अपने–आप) से भी कटा हुआ महसूस करने लगता है। विभिन्न शब्दकोशों में अलगाव के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'एलियनेशन' के भिन्न–भिन्न अर्थ दिए गए हैं। सभी विद्वानों ने मनुष्य की कुछ अवस्थाओं को अलगावबोध के अंतर्गत लिया है, मनुष्य के अलगाव की अवस्था को अलग–अलग नामों से परिभाषित करने की कोशिश की है। जिसमें 'विरक्ति', 'परकीयकरण', 'विघटन', 'अन्यार्पण' या 'स्वामित्व हस्तांतरण', 'विसंबंधन', 'मनमुटाव', 'विरसता', 'वैरस्य', 'वियोजन', 'पृथक्करण', 'मनोविकार', 'चित्तविभ्रम आदि। इस प्रकार 'अलगावबोध' से अभिप्राय मनुष्य की उस स्थिति से है जब एक समूह या समाज से उसके संबध टूट जाते हैं, व्यक्ति–व्यक्ति की बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है। जिस समूह और समाज का वह हिस्सा था या जिस देश में वह पैदा हुआ था और जो परिवेश उसका अपना था किन्हीं घटनाओं, कारणों या परिस्थितियों आदि की वजह से वह उससे छूट जाता है। वह समाज और परिवेश जिसे वह पहले अपना समझता था, अब उसे वह पराया लगने लगता है, और जिस नए परिवेश में वह कदम रखता है उसे भी वह अपना नहीं पाता। इसी कारण वह यह महसूस करता है कि इस संसार में उसके विषय में सोचने वाला कोई नहीं है, वह दुनिया की भीड़ में एक अकेला और निरीह प्राणी मात्र रह गया है। इन विविध स्थितियों को देखते हुए कतिपय विद्वान, मनोवैज्ञानिक, साहित्यकार मनुष्य के अकेलेपन, पार्थक्य, आत्म निर्वासन, अजनबीपन, सामाजिक संबंधों में बिखराव, एकाकीपन, परायापन, कुण्ठा, निराशा, संत्रास, विरक्ति, विमुखता, उदासीनता आदि का प्रयोग अलगाव के संदर्भों में करते आए हैं।

वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन और समाज विस्तृत और जटिल हो गया है। सामूहिकता का स्थान वैयक्तिकता ने ले लिया है। आत्मीय संबंधों का स्थान स्वार्थ के जैसे भावों ने लिया है। इस प्रकार मानव जीवन के क्रमिक विकास का इतिहास अलगावबोध का इतिहास भी बन जाता है। एरिक कोहलर लिखते हैं–'The History of man could very well be written as the history of the Alienation

of the man.[5] अर्थात् मानव का इतिहास मानव के अलगाव के इतिहास के रूप में अच्छी तरह लिखा जा सकता है। एडम सैफ ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि संसार में आज तक पाए जाने वाले सभी प्रकार के समाजवादी समाज में किसी न किसी रूप में 'अलगावबोध' देखा गया है।

इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो प्राचीन काल से ही 'अलगावबोध' प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहा। जब–जब मनुष्य में विरोध का भाव प्रबल हुआ, तब–तब उसमें 'अलगाव' संदर्भित भावनाओं का उदय हुआ। भारतीय मानव इतिहास में आर्य–अनार्य जाति का संघर्ष इसका सबसे प्राचीन उदाहरण माना जा सकता है। मानव इतिहास में जब–जब मनुष्य ने धर्म, परिवार, समाज, संस्था आदि द्वारा बनाए गए नियमों का उल्लंघन करने की कोशिश की या इनका विरोध किया तब–तब उसका 'अलगावबोध' मुखरित हुआ है। इसके अतिरिक्त भाषा संबंधित अलगाव भी प्राचीन समय के समाज में विद्यमान था। विभिन्न उदाहरणों से पता चलता है कि उस समय बोली जाने वाली प्रमुख भाषा 'संस्कृत' केवल सृजन और कुछ विशिष्ट जनों की भाषा थी। उस समय भी आर्थिक रूप से संपन्न लोग अपने बनाएं दुर्ग में रहते थे तथा विद्वतजन अपनी भाषा रूपी गुफा में। आर्थिक रूप अभावग्रस्त लोगों का जीवन कष्टमय होता था।

प्राचीन भारतीय इतिहास में महाभारत का युद्ध अलगावबोध, मूल्य विघटन, अपूर्णता, भटकाव आदि प्रश्नों को स्वयं उद्घाटित करता है। इस युद्ध से पता चलता है कि किस प्रकार एक ही कुल में अलगाव की गहरी रेखा खींच जाती है, भाई–भाई के बीच रागात्मक संबंध खत्म हो जाते हैं, अपनों के बीच लगाव–अलगाव की द्वंद्वात्मक स्थिति पैदा हो जाती है, जो युद्ध का कारण बनती है। युद्ध में जीवन के उदात्त मूल्य तिरोहित हो जाते हैं, उदाहरण स्वरूप– जब छलपूर्वक पिता की मृत्यु से अश्वत्थामा का व्यक्तित्व विघटित हो जाता है, उसे मूल्यों में कोई विश्वास, कोई श्रद्धा नहीं रह जाती है। अश्वत्थामा अस्तित्वहीनता और मूल्यहीनता की स्थिति में भटकने लगता है। उसके भीतर की सामाजिक और नैतिक भावनाएँ मर जाती हैं, यहाँ तक की वह अपने आप से भी लगाव नहीं रखता है। धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' में अश्वत्थामा के उद्गारों के माध्यम से इस स्थिति का सफल चित्रण किया है–

"आत्मघात कर लूँ/इस नपुंसक अस्तित्व से/छुटकारा पाकर....."[06]

इस प्रकार अनास्था, संशय, कुण्ठा, अलगाव, अनिश्चय, संत्रास आदि महाभारत काल के वतावरण में चारों ओर विद्यमान थे।

साहित्य के क्षेत्र में 'अलगावबोध' पर विचार–विमर्श उन्नीसवीं शताब्दी के आस–पास से देखा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी से ही यूरोप में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिनके कारण यूरोपीय देश उद्योग प्रधान हो गए। यूरोप में नए–नए उद्योगों के आविर्भाव से औद्योगिक शहरों की स्थापना हुई। मानव इतिहास में आज तक का सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास के कारण मानवीय शक्ति के स्थान पर बड़े–बड़े मशीनों का अविष्कार हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि बड़ी–बड़ी औद्योगिक ईकाइयों, कारखानों

में सैकड़ों की संख्या में लोग बिना एक–दूसरे को जाने–पहचाने और बिना अपने स्वामी (मालिक) से परिचित हुए काम करने लगे। मनुष्य के पास मशीनों को चलाने और नियंत्रित करने के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं रह गया। वास्तव में यह एक युगांतकारी परिवर्तन था। जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार– "जब श्रमिक अपने कार्य के प्रति अलगाव महसूस करते हैं तो वे विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी असंतोष व्यक्त करते हैं।"[07] विज्ञान, प्रौद्योगिकी और भौतिक पदार्थों की अतिशयता के कारण ही मनुष्य के जीवन में असुरक्षा और अलगाव के भाव पैदा होने लगे। वह अपने को अजनबी, अकेला महसूस करने लगा। ज्ञान–विज्ञान और मनुष्य के मानसिक विकास ने धर्म, नीति, परंपरागत विचारधाराओं को कमजोर बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य अपनी धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक और परंपरागत जड़ों से अलग होता चला गया। भौतिक विकास से जन्मी यांत्रिक सभ्यता ने व्यक्ति को भी एक वस्तु के रूप में देखा और विशालकाय मशीनों के बीच मनुष्य का स्थान भी पुर्जा मात्र तक सीमित रह गया। डेविड रीजमैन के अनुसार– "इस उत्पादन प्रणाली और जन संस्कृति (मास कल्चर) ने आदमी को भीड़ के मध्य अकेला कर दिया है।"[08]

भारतीय साहित्य में अलगावबोध का सर्वप्रथम निरूपण आधुनिक भावबोध के अंतर्गत हुआ है, भारत में जन्में अलगाव, अकेलेपन, अजनबीपन, विरक्ति आदि की समस्याओं पर एक सीमा तक पश्चिमी विचारधाराओं, मार्क्सवाद, अस्तित्ववादी चिंतनों का प्रभाव माना जा सकता है। किन्तु ऐसा नहीं है कि अलगावबोध की भावना विदेशी है और भारतीय परिवेश से उसका कोई संबंध नहीं है, भारतीय परिवेश में भी प्राचीन काल से ही अलगाव का भाव विद्यमान रहा है। इस संदर्भ में डॉ. रघुनाथ जैन का कथन समीचीन है– "यह नहीं कहा जा सकता कि अलगाव की धारणा विदेशी है और देश की मिट्टी एवं गंध से उसका कोई संबंध नहीं है। यह कहना भी कि भारतीय साहित्य में अलगाव को ढूढ़ना, पाश्चात्य दृष्टिकोण को भारतीय साहित्य पर थोपना है, तर्क संगत नहीं है। वस्तुतरू कोई विशिष्ट धारणा किसी विशिष्ट साहित्य की बपौती नहीं होती तथा वे धारणाएँ अपनी परिस्थितियों के अनुरूप विशिष्टताएँ रखती हैं। इसलिए यह तर्क देना कि भारतीय समाज में ऐसी जटिल परिस्थितियाँ ही नहीं हैं कि व्यक्ति को संत्रास, अलगाव या निरर्थकता से जूझना पड़े, यथार्थ से आँखें मूंद लेना है।"[9] भारत में अलगावबोध की समस्याएँ अधिकतर नगरीय जीवन से संबंधित रही हैं, क्योंकि विज्ञान और तकनीकी के विकास से ही शहरीकरण के विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। औद्योगिकरण के विकास के साथ महानगरों में जनसंख्या की भीड़ बढ़ने लगी और इस भीड़ में मनुष्य की पहचान गायब होती चली गई। व्यक्ति भीड़ के बीच रहकर भी अकेला, असहाय महसूस करने लगा और मानवीय संबंध टूट गए। महानगरों में व्यक्ति का जीवन अत्यधिक यांत्रिक हो गया। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए देवेन्द्र इस्सर लिखते हैं– "लोग सड़कों और मनोरंजन स्थलों में एक दूसरे के करीब हो रहे हैं, लेकिन मानसिक तौर पर उनका फासला बढ़ता जा रहा है। भीड़ में खोये हुए लोग जितना एक दूसरे के करीब हो रहे हैं उतना ही उनके

निजी जीवन का संकट बढ़ रहा है। नगरों की सभ्यता में पले लोग एक दूसरे को बन्धुत्व का सहारा नहीं दे सकते– वे सब गुमनाम, बेनाम, बेचेहरा लोग हैं। उनका न कोई निजी अस्तित्व है न कोई हमदम न बन्धु और वे तनहाई की अन्धी गलियों में सहमें हुए भटक रहे हैं।"[10]

भारत में 'अलगावबोध' महसूस कराने वाली विभिन्न परिस्थितियाँ स्वतंत्रता के पश्चात् उत्पन्न हुई। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज कृषि–प्रधान था और इस कृषि–प्रधान समाज में संयुक्त परिवारों का प्रचलन था। स्वातंत्र्योत्तर समाज में तीव्रता से औद्योगीकरण का विकास हुआ। संयुक्त परिवार के सदस्य रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने लगे। शहरों में आने के बाद व्यक्ति को कई प्रकार के संघर्षों का सामना करना पड़ा। निजी संघर्ष के चलते वह अपने परिवार से कटता चला गया। जहाँ एक ओर उस व्यक्ति का परिवार अलगावबोध से पीड़ित हुआ वहीं स्वयं वह व्यक्ति भी परिवार के अभाव में अकेलापन महसूस करने लगा। धीरे–धीरे स्वतः आपसी संबंधों की घनिष्ठता कमजोर पड़ने लगी। इसके अतिरिक्त देश की आजादी और उसके विभाजन के समय जो भीषण नरसंहार हुआ, मारकाट हुई और जिस प्रकार लोग विस्थापित हुए उसने लोगों को बीच के एकता और सौहार्द के संबंधों को तोड़ दिया। वर्षों से एक साथ जीवन यापन कर रहे विविध समुदायों के लोगों में एक–दूसरे समुदाय के प्रति असुरक्षा का भाव पैदा हो गया। प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य को संदेह की दृष्टि से देखने को विवश हो गया। उस समय ऐसा बहुत कुछ घटित हुआ जिसने लोगों के बीच अलगाव का भाव पैदा कर दिया। इस संदर्भ में कमलेश्वर का कथन समीचीन हैं– "विभाजन में कत्ल, बलात्कार और अत्याचार ही नहीं हुए थे बल्कि ऊपर से साबुत दिखाई पड़ने वाला आदमी भी भीतर से पूरी तरह चटख गया था और उसके सारे विश्वास और मूल्य बर्बरता की आंधी में उड़ गए थे"[11] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी देश के कई भागों में सांप्रदायिक विद्वेष और दंगे हुए जिसने मानव के सह–अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिए। डॉ. शशिभूषण सिंहल के अनुसार–"सह–अस्तित्व की बात भले ही निरंतर दोहरायी जाती रहे, किंतु उसे मानसिक स्वीकृति हम नहीं दे पाते हैं। फलतः बात–बात पर विद्वेष की भभक, आए दिन फूट पड़ती है और भीषण मारकाट का अनायास रूप धारण कर लेती है। अपने ही देश में रहते हुए, क्या बहुसंख्यक और क्या अलपसंख्यक, सभी अजीब तनाव की स्थिति में जी रहे हैं। यह संत्रास की स्थिति नहीं है तो और क्या.....इनके कारण स्वतंत्र देश में स्वाभाविक आत्मबल नहीं जाग सका है। उल्टे लोग अपने आप में सिमटकर अधिक आशंकित, स्वार्थी और बेईमान हो गए हैं। ऐसी अवस्था के बीच व्यक्ति का घबराकर असहाय और अकेला हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।"[12]

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज और परिवेश एक ओर आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, पाश्चात्य संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित हुआ है, तो दूसरी ओर स्वातंत्र्योत्तर मनुष्य की जीवन दृष्टि भी अस्तित्ववादी, मार्क्सवादी एवं मनोविश्लेषणवादी विचारधाराओं से प्रभावित हुई है। स्वातंत्र्योत्तर समाज में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, जिसने मानवीय रिश्तों को

कमजोर कर दिया। परंपरागत विचाराधाराओं, मान्यताओं आदि से आधुनिक मानव का टकराव अलगाव की हद तक बढ़ गया है। इसी कारण आज व्यक्ति अपने आप से, अपने परिचितों से, अपने परिवेश से अलग होता जा रहा है। आज के समाज में चारों ओर रिश्तों की औपचारिकता, संबंधों में जटिलता, ऊब, विवशता, बेगानापन, दिखाई देता है। मध्यमवर्गीय लोग जीवन यापन की जटिलताओं के कारण भौतिकवादी युग में यांत्रिक होते जा रहे हैं, तो उच्च वर्गीय समाज में अर्थ की प्रधानता के कारण मानवीय मूल्य गौण हो गए हैं। दूर्षित पर्यावरण के कारण मनुष्य व्याधिग्रस्त होता जा रहा है। माता–पिता और बच्चों के रिश्तों में आपसी मन–मुटाव, प्रेमी–प्रमिका से संबंधों में अनिश्चितता, पति–पत्नी के संबंधों में अलगाव, नवीन और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष आदि वर्तमान समाज की आम बात बनती जा रही है। वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप व्यक्ति उपभोग के साधनों से संपन्न तो हुआ है साथ ही घर की चारदीवारी में भी कैद होकर रह गया है। वैयक्तिक अकेलेपन के संदर्भ में सुरेन्द्र मोहन खोसला लिखते हैं– "अकेलापन समाज के संपर्क विहीन होने की स्थिति है। यह सही रूप में न समझे जाने की पीड़ा से उद्‌भूत अलगाव संबंधी भाव है। समाज में रहता हुआ व्यक्ति स्वयं को समाज में अकेला पड़ गया अनुभव करता है। अथवा अकेला रहना उसकी पसंद बन जाता है। इस प्रकार अकेलेपन के दो रूप हैं– परिस्थितिजन्य अकेलापन एवं स्वभावगत अकेलापन। परिस्थितिजन्य अकेलापन व्यक्ति की विवशता है, जबकि स्वभावगत अकेलापन उसका चयन।"[13]

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा पर यदि विचार करें तो यह खंडित रूप में विकसित हुई। राष्ट्रवाद हिंदू राष्ट्रवाद एवं मुस्लिम राष्ट्रवाद के रूप में उभरा। भारतीयता पूरी तरह से गौण हो गई या कहे कि भुला दी गई। भारतीय मुसलमानों ने एक अलग राष्ट्र में अपने सुनहरे भविष्य का दिवा स्वप्न देखा तो हिंदू राष्ट्रवाद ने अपने व्यवहार से मुस्लिम राष्ट्रवाद की चिंगारी को दावानल में बदलने का भरसक प्रयास किया। स्वार्थ के वशीभूत होकर उन्होंने इन राष्ट्रवादी तत्वों द्वारा माँगी माँगों को सहज स्वीकार कर लिया। समाज के लोग जो विभाजन के विरोधी थे उनकी माँगों को सिरे से खारिज कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि अलगाव की खाई और चौड़ी होती गई। आज भी देश के राजनीतिक दलों एवं शासक वर्ग से 'वैमनस्य' कम करने की अपेक्षा रखना बेमानी सा लगता है। इतने वर्षों में शासक वर्ग और राजनीतिक दलों ने इस वैमनस्य को घटाने के स्थान पर बढ़ावा ही दिया है। इसलिए वैयक्तिक स्तर पर ही 'वैमनस्य' कम करने हेतु शुरूआत करनी होगी। तभी 'अलगावबोध' जैसी जटिल परिस्थितियों से उभरा जा सकता है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विविध परिस्थितियों ने भारतीय परिवेश में स्तरीय भेदभाव, संघर्ष, स्पर्धा, तनाव, कुण्ठा और अलगावबोध को जन्म दिया। यह अलगावबोध, पहले अस्थिरता, आत्मपीड़ा के रूप में था, तत्पश्चात् व्यक्ति संवेदनशून्य होता चला जाता है, और फिर शुरू होती है अंतहीन अजनबीपन की खाई। आज के भौतिकवादी युग में जहाँ पूंजी ही मूल्य बन गयी है, और समाज

में मान–प्रतिष्ठा प्राप्त करने की होड़ में लगा प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे का प्रतिद्वंद्वी बन बैठा है, वहाँ लगाव, प्रेम, करूणा, सहानुभूति, संवेदनशीलता जैसे नैतिक मूल्य खण्ड–खण्ड होकर बिखर गए हैं। इसी कारण आज 'अलगावबोध' जनित परिस्थियां अत्यंत सोचनीय बन गई हैं। इस पर सार्थक बहस साहित्य, समाज, मनोविज्ञान आदि स्तरों होनी चाहिए जिसके आने वाले समय में व्यक्ति परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित कर सार्थक जीवन जी सके।

संदर्भ :

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियॉ, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 1970, पृ. 27
2. अरोरा विनिता, साठोत्तरी कहानी में मानवीय मूल्य, नमन प्रकाशन दिल्ली, संस्करण– 1999, पृ. 169
3. Laurence Urdang (Ed)– Dictionary of English Language, college 1972 page–12
4. Henery Pratt Fairchild (Ed)– Dictionary of Sociology and Related Sciences, 1961, page–9
5. Erich Kohler, Tower and the Abyss, Page– 45
6. धर्मवीर भारती, अंधायुग, किताब महल इलाहाबाद, 1976, पृष्ठ–71
7. प्रो. एल.एल. गुप्ता, डॉ. डी.डी. शर्मा, समकालीन भारत में सामाजिक समस्या, साहित्य भवन आगरा, 2021, पृ.–447
8. सत्यमित्र दूबे, दिनेश शर्मा, समाजशास्त्र एक परिचय, एनसीआरटी, 2022, पृ.– 206
9. रघुनाथ जैन, अलगाव की दृष्टि से नवगीत का अध्ययन, लखनऊ कात्यायन प्रकाशन, 1979, पृ.–21
10. देवेन्द्र इस्सर, साहित्य और आधुनिक युगबोध, अजमेर : कृष्णा ब्रदर्स, संस्करण– 1973, पृष्ठ–02
11. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–1969, पृष्ठ–69
12. डॉ. शशिभूषण सिंहल, समकालीन हिन्दी उपन्यास, हरियाणा ग्रंथ अकादेमी, 2000, पृष्ठ–146–147
13. डॉ. सुरेन्द्र मोहन खोसला, हिन्दी कहानी में व्यक्ति विघटन स्वरूप एवं विश्लेषण, पब्लिकेशन ब्यूरोचण्डीगढ़, 1993 पृष्ठ–61
14. राजीव रंजन गिरी, परस्पर भाषा–साहित्य आंदोलन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 2020, भूमिका से
15. असगर अली इंजीनियर, भारत में साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव, इतिहासबोध प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण– 2004, पृष्ठ–13

■

साहित्यिक पत्रिकाओं का वर्तमान

संगीता कुमारी ❖

हिंदी साहित्य के विकास में पत्र–पत्रिकाओं का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। पत्र–पत्रिकाएँ वह साधन है जिनके माध्यम से साहित्य का प्रसार तीव्र गति से दूर–दूर तक होता हैं। साहित्यिक विधाओं के स्वरुप निर्माण और व्यापक प्रचार की दृष्टि से पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। हिंदी जगत में साहित्य की नवीन प्रवृतियों, उसमे होने वाले प्रयोगों और नूतन दृष्टिकोणों को प्रबुद्ध पाठकों एवं समीक्षकों तक पहुँचाने का कार्य प्रायः हिंदी की साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं ने ही किया हैं। इतना ही नहीं हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं, मनीषी संपादकों ने हिंदी भाषा और साहित्य को एक सम्यक दिशा प्रदान कर उसे स्वस्थ स्वरुप प्रदान करने का अत्यंत कठिन और महत्वपूर्ण कार्य किया हैं।

पत्र–पत्रिकाएँ अपने समय और समाज का दर्पण कही जाती हैं। यह आम जनमानस की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम होती है। अर्थात् जैसा समाज, जैसी परिस्थितियाँ उसको रूपायित करती वैसी ही पत्रिकाएँ। परंतु यह भी सत्य हैं कि पत्र–पत्रकाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में समाज की मानसिकता का निर्माण भी करती हैं। तभी तो हेराल्ड बेंजामिन, 'पत्रकारिता शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली माध्यम है।' यही कारण हैं कि भारत में पत्रकारिता की शुरुआत से लेकर अद्यतन इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

साहित्यिक पत्रकारिता को समझने से पहले साहित्य और पत्रकारिता के अंतर्संबंधों को समझना आवश्यक हैं। साहित्य और पत्रकारिता हमेशा से ही परस्पर एक–दूसरे की पूरक रही हैं। डॉ. अरुण तिवारी के शब्दों में, "साहित्य और पत्रकारिता एक दूसरे के पूरक हैं। मानव जीवन और प्रकृति से संबंधित स्थितियां, घटनाएँ साहित्य का प्रादुर्भाव करती हैं जिनसे कहानी कविता का सृजन होता हैं, वहीं पत्रकारिता द्वारा वे समाचार का जनक बनती हैं। जहाँ साहित्य में संवेदना होती हैं, एक अदृश्य तारतम्य होता हैं, वहीं समाचार में सपाटबयानी होती हैं, वस्तुस्थिति को जस का तस प्रस्तुत करने की बाध्यता होती हैं परंतु यदि संपादक

❖ संपर्क : शोधार्थी, (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), द्वारा–जवाहर भगत, ग्राम*पोस्ट–सढ़वारा, जिला–दरभंगा, बिहार–847106, मो.–9899109011

का नजरिया साहित्यिक है तो वह उस समाचार की भाषा और उसके शीर्षक से परिलक्षित होता हैं, तथा पत्र–पत्रिकाओं की सामग्री में भी दिखाई देता हैं। पहले एक कहावत प्रचलित थी कि अच्छा साहित्यकार, अच्छा पत्रकार हो सकता हैं पर अच्छा पत्रकार, अच्छा साहित्यकार नहीं हो सकता।"[1]

साहित्य और पत्रकारिका का अटूट संबंध है, या यों भी कह सकते हैं कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पत्रकारिता के विविध रूपों में से एक साहित्यिक पत्रकारिता भी है। साहित्यिक पत्रकारिता में वे साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ आती हैं, जिनमें साहित्य की विविध विधाओं का प्रकाशन, नवीन पुस्तकों का सृजन, पुस्तकों की आलोचना, साहित्यिक संगोष्ठियाँ, पुस्तक प्रदर्शनी, लोकार्पण, पुरस्कार, कला एवं साहित्य से जुड़े समाचार आदि समाहित रहते हैं।

भारत में प्रथम प्रकाशित पत्र 1780 ई. में 'हिक्कीज गजट' था जो कि अंग्रेजी भाषा में था। भारत में हिंदी पत्रकारिता की शुरूआत 30 मई 1826 ई. में पं. जुगलकिशोर के अथक प्रयासों के द्वारा साप्ताहिक पत्र से होती है। लेकिन हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता का प्रारंभ भारतेंदु युग की 1868 ई. में प्रकाशित पत्रिका 'कविवचन सुधा' से माना जाता है।

भारतेंदु–युग से लेकर अब तक अनेक साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं मैदान में उतर चुकी हैं। कुछ परिस्थितिवश उसी धूल भरे मैदान में ओझल हो गईं और कुछ पत्रिकाएं उसी मैदान में संघर्ष करती हुई बदलते वक्त की करवटों के साथ–साथ पाठकों की बदलती रुचि के साथ अपना तालमेल बैठाया और आज उत्कृष्टतम स्थान पर हैं। इन पत्रिकाओं ने समाज के अक्स को खुद में उतारते हुए, समाज की दुखती नब्ज से लेकर दहकते मुद्दों को नवीन दृष्टिकोण और नित नूतन प्रयोगों के माध्यम से अपने पाठकों के सामने पेश किया। इनमें प्रमुख हैं–'कविवचन सुधा', 'सुधावर्षण', 'हिंदी प्रदीप', 'सरस्वती', 'हंस', 'इंदु', 'चाँद', 'नया प्रतीक', नई धारा', 'कहानी', 'माया', 'नया ज्ञानोदय', 'सारिका', 'कथादेश', 'यू.एस.एम.', 'तद्भव', 'प्राची', 'वर्तमान साहित्य' और 'आलोचना' आदि हैं। साहित्यिक पत्रकारिता का स्वरुप आम पत्रकारिता से अलग होता हैं। यह सृजनात्मक पत्रकारिता होती है, चेतना एवं चिंतन की पत्रकारिता होती हैं। रमेश दवे जी ने इसे भुत ही सुन्दर ढंग से समझाने का प्रयास किया हैं– "वास्तव में साहित्यिक पत्रकारिता सूचना या समाचारों की पत्रकारिता नही हैं। वह खबरों से लड़ा अखबार न होने के कारण आम पाठकों से अलग पाठकों की पत्रकारिता हैं। वह आकर में भी अलग हैं, और प्रकार में भी अलग। साहित्यिक पत्रकारिता संस्कार, संकल्प और सृजन की पत्रकारिता हैं, वह चेतना और चिंतन की पत्रकारिता हैं और साथ ही वह भाषा की समृद्धि और व्यापकता की पत्रकारिता हैं। इसलिए राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक और वैज्ञानिक पत्रकारिता से बड़ी चुनौती साहित्यिक पत्रकारिता के समक्ष हैं। उसके पास किताबों के प्रकाशन और लेखकों के परिचय या पुरस्कार–सम्मान के अलावा कोई खबर नही होती। इसलिए खबरें साहित्य की पत्रकारिता नही बनाती।"[2]

साहित्यिक पत्रिकाएं ही, चाहे वे प्रिंट में हों या डिजिटल, ताजा बौद्धिक गतिविधियों के आखिरी मंच हैं। दोनों माध्यमों की उपयोगिता है। ध्यान में रखने की जरूरत महसूस हो सकती है कि भारतीय भाषाओं के पाठक अभी इतने स्मार्ट नहीं हैं कि वे ऑनलाइन पर लंबी रचनाएं, लेख, कहानियां, उपन्यास आदि तल्लीनता से पढ़ सकें। निकट भविष्य में भी यह संभव नहीं दिखता, क्योंकि पत्रिका हो या किताब कुछ भी हाथ में लेकर पढ़ना एक अलग तरह का आनंद है।

इस तथ्य की ओर भी ध्यान जाना चाहिए कि इतनी चुनौतियों के बावजूद चार लेखक बैठकर साहित्यिक पत्रिकाओं की समस्याओं को दूर करने का उपाय नहीं सोचते। अच्छी साहित्यिक पत्रिकाओं को लेखक से रचनात्मक सहयोग के अलावा कुछ नहीं मिल पाता, जबकि बदले परिदृश्य में किसी सजग रचनाकार का दायित्व सिर्फ लिखने तक सीमित नहीं हो सकता। कुछ लोग सिर्फ लिखें और कुछ व्यक्ति सिर्फ पत्रिका निकालें और आयोजन करें, उस युग का अवसान हो चुका है। आखिरकार भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमचंद जैसे लेखक कैसे लोग थे? क्या वे हमलोगों से ज्यादा आय वाले थे? चार–पांच दशक पहले तक ऐसे लेखक थे जो लेखन कर्म के साथ अपनी गांठ से पैसे निकाल कर पत्रिका निकालते थे। वे देश–दुनिया की निष्क्रिय चिंता में डूबे रहने वाले लोग नहीं थे। आज भी ऐसे कई लेखक हैं। यह जरूर अफसोसजनक है कि 21वीं सदी में ऐसे लेखकों की संख्या बढ़ रही है जो अपने घोंघेपन में ही बसंत देख लेते हैं। निश्च य ही यह परिघटना वैश्विक बौद्धिक क्षय का हिस्सा है।

डिजिटल के प्रचार के बावजूद टीवी अप्रासंगिक नहीं हुआ। रेडियो ने फिर अपनी प्रासंगिकता बना ली। समाचार पत्र एक ही पद्धति की जगह नए तरीके अपना रहे हैं। इसी तरह मुद्रित पत्र–पत्रिकाओं को एक बंद अध्याय मान लेना आत्मघात है। इसकी जगह उन्हें नई जीवनशक्ति की जरूरत है। साहित्य यदि प्रिंट में मर गया, तो वह ऑनलाइन में भी बच नहीं सकता। इससे प्रिंट माध्यम में साहित्य का महत्व समझा जा सकता है। एक बात और, प्रिंट में साहित्य क्षणभंगुर नहीं होता।

साहित्यिक पत्रकारिता ने भारत के इतिहास को सुनहरा बनाने में अपना विशेष योगदान दिया है। सालों से साहित्यिक पत्रकारिता द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर आजादी दिलाने तक, हिंदी भाषा का मानकीकरण और उसका प्रचार–प्रसार, साहित्य की विविध विधाओं के संवर्धन और संरक्षण, नए रचनाकारों के जन्मदात्री, हिंदी को विश्वविद्यालयों में स्थान दिलाना, स्वाधीन चेतना का संचार, अधिकारों की लड़ाई आदि अहम् कायरें में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ. नगेंद्र जी के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि "अभी तक हिंदी को विश्वविद्यालय में स्थान नहीं मिला था। इसीलिए उसे ज्ञान के साहित्य का माध्यम बनाने की दिशा में जो कुछ किया गया, वह इन संस्थाओं और सरस्वती जैसी कुछ पत्रिकाओं द्वारा ही किया गया। साहित्य का स्वर क्रमशः गम्भीर हुआ

और उसमें दायित्वबोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने के योग्य समझा जाने लगा और सब मिलाकर हिंदी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।"[3]

आज भी साहित्यिक पत्रकारिता की प्रासंगिकता कई मायनों में बरकरार है। आज भी विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता का पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। विश्वविद्यालयों में अध्यापन–कार्य के लिए प्रकाशन अंकों की अनिवार्यता भी इसकी प्रासंगिकता का पुख्ता सबूत है। वेब–पत्रिकाओं के पाठकों और सदस्यों की संख्या भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है. भले ही इसके माध्यम का स्वरूप बदल गया हो, प्रिंट से डिजिटल हो गया हो। आज भी छापेखानों पर ताला नहीं जड़ा गया है, बल्कि अनेक प्रकाशन संस्थानों की संख्या बढ़ी है।

इसकी प्रासंगिकता को बरकरार रखने के लिए इसको आर्थिक रूप से भी मजबूती प्रदान करनी होगी। किसी भी संस्था को निरंतर अबाध गति से आगे बढ़ाने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है, यही कटु सचाई है। धनाभाव के कारण ही 'उद्दंतमार्तण्ड' 11 दिसम्बर 1827 ई. में ही बंद हो गया। साहित्यिक पत्रकारिता को घूसखोरी, भ्रष्टाचार और राजनीतिक कूटनीतियों से बचाना होगा ताकि कलम के सिपाहियों की कलम दम न तोड़ जाए, इसके लिए संपादक और पत्रकारों को अपनी सम्पूर्ण निष्ठा, परिश्रम, बिना पक्षपात, ईमानदारी और निडरता से कार्य करना होगा जो आज के गिने चुने ही संपादकों एवं पत्रकारों में ही रह गई है। डॉ. नगेंद्र जी इसकी और भी संकेत करते हैं– 'परिणाम की दृष्टि से तो स्वतंत्रता के बाद हमारी पत्र–पत्रिकाओं ने प्रगति की है, किंतु गुणात्मक दृष्टि से उनका ह्रास हुआ है। पराड़कर जी, सप्रे जी, गर्दे जी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि पत्रकारों का उत्कर्ष, लगन और सेवाभाव आज के संपादकों में कहाँ दृष्टिगोचर होता है।'[4] आज इंटरनेट के इस दौर में बहुतायत स्तर पर आइ.एस. एस.एन. पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, जिनमें से अनगिनत उत्कृष्ट ई–पत्रिकाएं भी हैं। नए–नए रचनाकारों का उदय हो रहा हैं तथा नए–नए युवा संपादक, उप–संपादक, पत्रकार, समीक्षक इत्यादि बन रहे हैं। इसी प्रकार अलग–अलग साहित्यिक विधाओं से संबंधित दर्जनों वेब पेज हैं जहाँ साहित्यिक विधाओं से संबंधित लेखन हो रहा हैं। अनगिनत साहित्यिक ई पत्रिकाएं साहित्य के पाठक और लेखक दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। आज हिंदी की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं का ई संस्करण भी प्रकाशित हो रहा हैं।

आज के इस वैश्वीकरण, बाजारीकरण, पूंजीवादी–व्यवस्था एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के दौर में साहित्यिक पत्रिकाएं कहीं–न–कहीं पिछड़ती हुई नजर आ रही हैं। इसके सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ आ कड़ी हुई हैं। इसकी निष्पक्षता एवं उत्कृष्टता कम होने लगी हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं में भी विचार विशेष का हस्तक्षेप होने लगा हैं। इसमें साहित्य के अत्यंत पिछले रूप तक परोसे जाते हैं। समकालीन साहित्यिक पत्रकारिता जिस प्रकार से व्यावसायिक होती चली जा रही है, यह साहित्यिक पत्रकारिता के लिए अत्यंत संकट का विषय हैं। व्यावसायिक

पत्रकारिता के मूल में फैशन, मनोरंजन, विज्ञापन तथा सनसनीखेज फैलाना हैं , जिनकी मांग भी समाज में खूब हैं। वहीं साहित्यिक पत्रिकाओं को नई–नई असुविधाओं से जूझना पद रहा हैं। इस संदर्भ में डॉ गोपाल राय जी का कथन विचारणीय हैं, वे कहते हैं – 'मैं अनु भाव करता हूँ की हमारी वर्तमान व्यवस्था साहित्यिक पत्रकारिता को न केवल कोई महत्व देती हैं वरन् अपने लिए खतरा भी समझती है। क्या कारण है की व्यवसायिक पत्रिकाएं चलती हैं? साहित्यिक पत्रिकाएं जब व्यवसायिक बना दी जाती है, तो उन्हें कोई आर्थिक कठिनाई नहीं होती। पर शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ संकट से जूझते–जूझते समाप्त हो जाती है।'

साहित्यिक पत्रिकाओं का स्थान अब उन पत्रिकाओं ने ले लिया है, जो पूंजीवादी व्यवस्था की दृष्टि से कार्य करती हैं, जिसका मुख्या उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना होता हैं। लेकिन ये पत्रिकाएं समाज का वैचारिक संपोषण नहीं कर पाती हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं ने हिंदी भाषा और अन्य क्षेत्रीय भाषाओँ एवं उनके साहित्य को नयी ऊंचाई प्रदान किया हैं। वर्तमान समय में जब पत्रकारिता अपने नैतिक मूल्यों और उद्देश्यों से हट रही हैं, ऐसे में साहित्यिक पत्रिकाओं की आवश्यकता और महत्वपूर्ण हो हाई हैं।

वर्तमान समय में (हालके कुछ वर्षों से) यह देखा जा रहा हैं कि हिंदी की कई साहित्यिक पत्रिकाओं में विचारधारा का हस्तक्षेप अधिक हो रहा हैं। उनमें साहित्य के स्थान पर विचारधारा ही छाप रही हैं। यदि विचारधारा से शुन्य होना एक प्रकार का आभाव हैं तो विचारधारा का आच्छादन भी एक प्रकार का अतिवाद हैं। किसी एक खास राजनैतिक दल से सम्बद्धता भी साहित्यिक पत्रकारिता के लिए घटक हैं। वैचारिक दुराग्रह से मुक्त होकर साहित्यिक पत्रिकाएँ अधिक कारगर ढंग से अपना कर्तव्य निभा सकती हैं। इन सारी परिस्थितियों के बावजूद हिंदी की वर्तमान साहित्यिक पतकारिता अभावग्रस्त होने के साथ–साथ संघर्षशील भी हैं, जिसके कारण उसमें विकास की अपार संभावनाएँ दिखाई देती हैं।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि हिंदी की वर्तमान साहित्यिक पत्रिकाएँ अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझने के बावजूद, वो गुणवत्ता के स्तर पर हो, आर्थिक स्तर पर हो या पठनीयता के स्तर पर, या फिर प्रकाशन के स्तर पर इन सब के बावजूद, अपने विकासपथ पर संघर्षशील एवं कार्यरत हैं।

संदर्भ सूची :

1. तिवारी, अरुण, साहित्यिक पत्रकारिता का परिदृश्य, प्रेरणा पब्लिकेशन, भोपाल, पृष्ठ सं.–10
2. वही, पृष्ठ सं.–38
३. सं. डॉ. नागेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास . पृष्ठ सं.–513
४. वही, पृष्ठ सं. – 513

■

माता–पिता के असफल
दाम्पत्य संबंध से अभिशप्त बालमन

निधि चन्द्र *

परिवर्तन संसार का नियम है एवं हर बदलाव एक नई चुनौती एवं संभावना साथ लेकर आती है। समय के साथ हर क्षेत्र में बदलाव देखने को मिलता है। आज का आधुनिक समाज अपने जटिल सम्बन्धों एवं ताने–बाने से सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहा है। पुरुष प्रधान समाज में आधुनिक शिक्षा ने स्त्रियों को काफी सबल बनाया है। आर्थिक स्वावलम्बन के कारण महिलायें अपने अधिकारों के प्रति मुखर हुई है जिसके कारण स्त्री–पुरूष संबंधों में बदलाव आया है। परिवर्तन की बयार हर वर्ग के लोगों को प्रभावित किया है। इन सब के बावजूद समाज में विवाह नामक संस्था में लोगों का व्यापक विश्वास बना हुआ है। हालांकि परिवार का दायरा न्यून जरूर होता गया है। आज परिवार से तात्पर्य पति–पत्नी एव नाबालिक बच्चों तक सीमित होता जा रहा है।

आधुनिक युग में माता–पिता के दाम्पत्य सम्बन्ध में बदलाव के सबसे बड़े शिकार बच्चे हो रहे हैं। स्त्री–पुरुष सम्बन्ध हमेशा से एक व्यापक चिंतन एवं बहस का विषय रहा है। स्त्री–पुरुष का संबंध अनादिकाल से नैसर्गिक रूप से एक–दूसरे का पूरक रहा है। इसे समझने की आवश्यकता हर दम्पति को है। जब युवा दम्पति माता–पिता बनते हैं तो उन्हें अनेक स्तरों पर सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। बच्चे इस संसार के सबसे मासूम प्राणी होते हैं। वह कच्ची मिट्टी के समान होते हैं जिसे माता–पिता कुम्हार की तरह सार्थक आकार दे सकते हैं। बच्चे को माता–पिता के रूप में पहला शिक्षक एवं परिवार के रूप में प्रथम पाठशाला प्राप्त होता है। यहीं से बच्चे सीखना प्रारंभ करते हैं। बच्चों के लिए माता–पिता का व्यवहार ही प्रथम शिक्षा है। यदि माता–पिता के सम्बन्ध में कटुता या कड़वाहट रहेगी, तो उनका व्यवहार सहज नहीं होगा। अतः बच्चों पर उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। जब बुनियाद ही कमजोर होगी तो मकान कैसे मजबूत हो सकता है। माता–पिता के सम्बन्धों का असर बालमन पर किस प्रकार पड़ता है इससे संबंधित हिन्दी साहित्य में अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में इसे उकेरने का प्रयास किया है। आज आर्थिक उदारीकरण के इस युग में स्वार्थपूर्ति हेतु व्यक्ति जिस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है वह चिंतनीय है। संवेदना का

* **संपर्क** –शोधार्थी, (हिन्दी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना), ग्राम–महादेव मंठ, पोस्ट–सलखुआ बाजार, सहरसा–852126, मो.–9155240660

ह्रास इस हद तक हो जाना कि अपने ही अंश की संवेदना से रिक्त हो जाना हमारे समक्ष अनेकानेक प्रश्न उपस्थित कर देता है।

बाल मनोविज्ञान पर आधारित साहित्यिक रचनाएँ भविष्य में आने वाली अत्यंत गंभीर समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है, जिसके लिए हमें आज से ही सजग होना होगा। अतएव आज के आधुनिक परिवेश में दिनों–दिन बदलते स्वरूप को देखते हुए, आवश्यकता है इस गंभीर समस्या को समझने की और उसका निदान सोचने की। अब प्रश्न उठता है बाल मनोविज्ञान है क्या? ष्बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है। जो बच्चों की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन गर्भाधान से लेकर परिपक्कता तक विकासात्मक दृष्टिकोण से करता है। बाल मनोविज्ञान केवल सामान्य बच्चों का ही अध्ययन नहीं करता अपितु असामान्य बच्चों के असंतुलित व्यवहार का भी अध्ययन करता है। बाल मनोविज्ञान के द्वारा ही हम यह जान सकते हैं कि बच्चों का व्यक्तित्व विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास इत्यादि समुचित ढंग से कैसे हो सकता है।"[1]

किसी बच्चे के लिए परिवार उसका आश्रय होता है। माता–पिता उस आश्रय के मुख्य हिस्से होते हैं, बच्चे जब माता–पिता के बीच असहमतियाँ देखते हैं, तो उनकी पूरी दुनियाँ डगमगा जाती है। यह बात उन्हें भावनात्मक और सामाजिक स्तर पर प्रभावित करती है। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। जब माता–पिता बच्चों के सामने बहस करते हैं, तो इससे बच्चे खुद को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। उनमें एकाग्रता की कमी होने लगती है। उनकी पढ़ाई या अन्य महत्वपूर्ण कार्य में एकाग्रता भंग होने की संभावना बनी रहती है। वो अपराध बोध से ग्रसित रहते हैं और आत्मविश्वास की कमी भी रह सकती है। दरअसल बच्चा यह सोचने लगता है कि इन झगड़ों का कारण कहीं वह तो नहीं है। इससे अपराध बोध की भावनाएँ पैदा होती है। उसके आत्मसम्मान को भी चोट पहुँचती है। जिससे खुद पर उसका भरोसा कम होने लगता है। ऐसे हालात में बच्चे माता–पिता के झगड़ों से बचने के लिए तरह–तरह के उपाय सोचने लगते हैं, जैसे झूठ बोलना। जब बच्चे अपनी वर्तमान वास्तविकता से असहज होते है, तो वे उससे बचने या भागने के रास्ते तलाशने लगते हैं। कई बच्चों का स्वभाव विद्रोही हो जाता है। बच्चों की सही परवरिश के लिए माता–पिता दोनों का साथ, प्यार व दुलार की जरूरत होती है। माता–पिता के बीच अलगाव उसके कोमल मन को अंदर से तोड़ देता है। माता–पिता के बीच आई दूरी को बच्चे आसानी से सहन नहीं कर पाते और अवसादग्रस्त हो जाते हैं। बच्चे माता–पिता दोनों के गहन संवेदनात्मक स्तर पर जुड़े हुए और अति संवेदनशील होते हैं। जीवन के प्रारंभिक चरण में ही माता–पिता के असहज अथवा असफल दामपत्य संबंधों के कारण बच्चे मानसिक, सामाजिक व सांवेगिक तनाव का शिकार होते हैं। उनके व्यक्तित्व, व्यवहार, चरित्र तथा सम्पूर्ण आगामी जीवन पर ऐसी स्थितियों का अत्यन्त गहन व नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। डॉ० हेरी एम. जॉनसन का कथन है– 'कोई भी यह नहीं सोचता कि प्रभावित बच्चों के लिए तलाक हितकर रहा?

पर यह कोई नहीं जानता कि क्या अप्रसन्न और लड़ते रहने वाले माता–पिता के साथ रहने की तुलना में यह स्थिति और भी खराब है, न कोई यह भी जानता है कि बच्चे तलाक के कारण अत्यधिक यातना भोगते हैं अथवा उस संघर्ष से अधिक भोगते हैं जिसके कारण कि तलाक लिया गया।"[2]

वैश्विकरण के इस युग में एक ओर जहाँ नारी अपनी अस्मिता बनाने हेतु आकाश की ऊँचाईयों को छू रही है, वहीं इस पुरूष प्रधान सामाज में स्त्रियों की आत्मनिर्भरता कभी–कभी पति–पत्नी के बीच विच्छेद का कारण के रूप में उभर कर सामने आता है। जिसका प्रभाव सबसे ज्यादा बच्चों की मानसिकता पर पड़ता है, फलस्वरूप एक मासूम सा बचपन मुरझा कर रह जाता है। 'बीसवीं सदी कई दृष्टियों से एक बेरहम सदी है, लेकिन यही वह सदी भी है जिसमें शोषण और अन्याय के सभी रूपों के प्रति चेतना भी पैदा हुई है और उनके खिलाफ संघर्ष का माहौल भी बना है। यह स्वाभाविक है कि स्त्री के साथ–साथ बच्चे का सवाल भी उभर कर आये। स्त्री तो अपना सवाल खुद उठा सकती है, पर बच्चे की सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि वह अपनी पीड़ा को स्वयं नहीं बता सकता। अतः यह दायित्व दूसरों का हो जाता है।"[3]

बड़ों की महत्वाकांक्षाओं का भार ढ़ोते हुए बच्चे किस तरह का जीवन जीने के लिए विवश हो रहे हैं यह अब विश्व चिंता का विषय है और इसी संदर्भ में बच्चों के मनोविज्ञान का सवाल उठता है और इसी बाल मनोविज्ञान पर आधारित मन्नू भंडारी की रचना 'आपका बंटी' का महत्वपूर्ण स्थान है। मन्नू भंडारी हिंदी साहित्य जगत की एक ऐसी समर्थ लेखिका है जो कथा के माध्यम से जीवन के कर्म को अभिव्यक्त करने में सफल रही हैं। बच्चे की चेतना में बड़ों के इस संसार को मन्नू भंडारी ने पहली बार पहचाना था। जहाँ माता–पिता के बीच का प्रेम बच्चों के विकास का आधार बनता है, वहीं दामपत्य जीवन में आए तनाव बच्चों के लिए त्रासदी उत्पन्न करते हैं और उसी त्रासदी का शिकार बंटी होता है। बंटी के माता–पिता शकुन और अजय एक–दूसरे को न झेल पाने के कारण तलाक के विकल्प को ढूंढ़ लेते हैं, परन्तु बंटी दोनों को एक करने के प्रयास में विफल होने के कारण अर्तमुखी हो जाता है और यह प्रवृत्ति इस हद तक बढ़ जाती है कि वह असामान्य (एबनार्मल) की स्थिति तक पहुँच जाता है। पति–पत्नी के द्वंद में सबसे ज्यादा पिसता है बंटी, जो एकदम, निर्दोष, निरीह और असुरक्षित है। बच्चों के मन में बढ़ों के इस संसार को पहली बार मन्नू भंडारी ने पहचाना। जाने–अनजाने माता–पिता द्वारा अपने कर्तव्य से च्युत होने के फलस्वरूप उत्पन्न बच्चे की मानसिकता का हृदयस्पर्शी चित्र उकेरा है, मन्नू भंडारी ने। शकुन–अजय के संबंधों की टकराहट में सबसे अधिक दुष्प्रभाव और हानि बंटी के हिस्से में आती है। शकुन और अजय तो आपसी तनाव की असहनीयता से मुक्त होने के लिए एक–दूसरे से मुक्त हो जाते हैं. लेकिन बंटी क्या करे? वह तो समान रूप से दोनों से जुड़ा है, पानी खंडित–निष्टा उसकी नियति है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव ने लिखा है 'मंन्नू ने आपका बंटी में इन तीनों को लिया है– टूटते वैवाहिक सम्बन्धों में संतान की मनोवैज्ञानिक स्थिति, वैवाहिक संबंध भी टूटने जोड़ने की प्रक्रिया

से गुजरेंगे और इस असुरक्षित दुनिया में स्त्री अपने मानसिक प्रलय की कथाएं भी खुलकर बयान करेंगी। मगर इन सबकी मनोवैज्ञानिक दहशत भुगतनी होगी बंटी यानी संतान को।"[4]

बाल मनोविज्ञान की विभिन्न धारणाओं से ग्रसित बंटी की मनोदशा का पता इस उपन्यास में चलता है। बंटी अपनी सारी प्रतिक्रिया इन्हीं धारणाओं से व्यक्त करता है। जैसेरू तनाव, मनोग्रस्तता, बाध्यता, क्रोध एवं आक्रामकता, कुंठा, दुविधा, अकेलापन, अवसाद। बंटी भी अपने माता–पिता से योग्यता और अहं की भावना वंशानुक्रम के कारण ही प्राप्त करता है और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण ही वह असामान्य स्थिति तक पहुँच जाता है। टीटू की माँ के व्यंग्यबाण से आहत बंटी सदैव मम्मी–पापा की दोस्ती करवाने के उपाय ढूंढ़ते रहता था। बंटी को सदैव जिज्ञासा रहती है कि मम्मी उसे पापा की कोई बात क्यों नहीं बताती तथा मम्मी–पापा की लड़ाई आखिर क्यों हुई ? इतने बड़े लोग लड़ते क्यों हैं और इस लड़ाई में दोस्ती क्यों नहीं हो सकती 'मम्मी कभी पापा की बात नहीं करती। पापा आते हैं तो सर्किट हाउस में ठहरते हैं। मम्मी को बुलाते भी नहीं, मम्मी की बात भी नहीं करते। क्या इतने बड़े–बड़े लोग भी लड़ते हैं? ऐसी लड़ाई, जिसमें कभी दोस्ती ही न हो।"[5]

मम्मी को डॉ० जोशी के साथ अनैतिक रूप में देखकर वह अपराध बोध से भर उठता है। मम्मी को खो देने के कारण उत्पन्न कुंठा उसे पापा की ओर खींचती है।

एडलर का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति में थोड़ी बहुत हीन भावना होती है जो क्षति पूर्ति के लिए उसे सदैव प्रेरित करती रहती है। यही कारण है कि टीटू के साथ लड़ाई हो या उसकी माँ का व्यंग्यबाण से आहत बंटी स्वयं को उपेक्षित समझने लगता है जिसकी पूर्ति वह मम्मी–पापा के प्रति एकाधिकार में प्राप्त करना चाहता है और उसमें असफत होने के कारण विद्रोही और आक्रामक स्वभाव का बन जाता है। माँ से आहत बंटी को पिता से भी अपनापन महसूस नहीं होता और उसके दिमाग में सदैव गूंजता रहता है श्तीसरा बच्चा फालतू बच्चा, तीसरा बंटी फालतू बंटी '।

बंटी किन्हीं दो– एक घरों में नहीं आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है। अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग स्थितियों में। यह उपन्यास आज के आधुनिक समाज की उस व्यवस्था से पर्दा उठाता है जिसमें लोग अपनी स्वार्थपरकता हेतु बच्चों की भावनाओं को अनदेखा ही नहीं करते उनकी अवहेलना करने से भी गुरेज नहीं करते। असफल दाम्पत्य जीवन के परिणामस्वरूप बंटी जैसा पात्र हमारे भारतीय समाज में भी यत्र–तत्र बिलखता, सिसकता, सहमा सा दिख पड़ता है।

आधुनिक गद्य साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें व्यक्तिगत और अनुभूत सत्य की प्रामाणिकता को बरकरार रखकर, सामाजिक परिवेश और समय के बड़े सत्य को भी व्यंजित करने का प्रयास किया जा रहा है। मेहरून्निसा परवेज जो आधुनिक हिंदी साहित्य की लेखिकाओं में बहुचर्चित नाम है, उन्हें भी

अपना बचपन कड़वाहट में गुजारना पड़ा। आम बच्चों की तरह उन्हें अपने घर में वह प्यार, वह शांति नहीं मिली जो दूसरे परिवारों में पायी जाती है। अपने माता–पिता के दामपत्य–सम्बन्धों की कटुता बचपन से ही बालिका (मेहरूत्रिसा) सहमी आँखों से देखा करती थी। स्वयं मेहरुन्निसा जी कहती है– "हर दिन, हर रात, हर बात पर घर में झगड़े होते और झगड़े भी ऐसे कि सारे मोहल्ले में आवाज गूँजती और हम दो भाई बहन घर के किसी सूने कमरे में, अंधेरे में एक दूसरे से चिपटे हुए रोते रहते। जब से होश संभाला अपने घर में शीशे के टुकड़े, खून और आँसू ही देखे। औरों के घर से हमारे घर का वातावरण इतना भिन्न क्यों है, समझ में नहीं आता।"[6]

'एक और जिंदगी' नामक कहानी में भी कोर्ट में अभिभावकों द्वारा तलाक के कागजात पर हस्ताक्षर करते समय चिड़ियां के बच्चे पंखे से कट जाने के प्रतीक के माध्यम से उस बच्चे की आगामी दुर्दशा का स्पष्ट संकेत मिलता है – कोर्ट में हस्ताक्षर करते समय छत के पंखे से टकराकर एक चिड़ियां का बच्चा नीचे गिरा। पंखे ने इसे काट नहीं दिया' 'काट दिया होता तो बल्कि अच्छा था। अब इस तरह लुंज पंखों से बेचारा क्या जिएगा।"[7]

निष्कर्ष : हमारा समाज सांस्कृतिक और सामाजिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, परन्तु आधुनिकीकरण का जो स्वरूप आज हमारे समक्ष आ रहा है, उसमें लोग अधिक से अधिक आत्मकेन्द्रित होते जा रहे हैं। यह आत्मकेन्द्रित अहं को जन्म देती है। यही अहं जब दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करता है तो इसका सीधा असर बच्चों पर पड़ता है। बच्चे जो कुछ देखते, सुनते, महसूस करते एवं सीखते हैं वही तय करता है कि वे किस तरह बड़े होंगे और क्या बनेंगे।

कई बार माता–पिता अपने बच्चों के सामने ही झगड़ना शुरू कर देते हैं और यह महसूस नहीं करते कि इसका बच्चों के दिल–दिमाग पर कितना गंभीर असर पड़ रहा है। किसी भी दंपत्ति के जीवन में बच्चों के भविष्य से बढ़कर किसी भी चीज को प्राथमिकता नहीं मिलनी चाहिए। अगर बच्चों को जन्म दिया गया है तो उनका उचित ढंग से पालन–पोषण करना माता–पिता का कर्तव्य है। मांता–पिता के अहं की टकराहट के कारण बच्चे दोनों के प्यार से वंचित रह जाते हैं। किसी भी बच्चे के लिए माता–पिता दोनों का समान रूप से होना अनिवार्य है। बच्चा केवल एक के साथ नहीं रह सकता। क्योंकि वह जन्म के उपरांत ही प्रत्यक्ष रूप से दोनों से जुड़ा रहता है और ये हर बच्चे का मानवीय अधिकार भी है। इस तरह की बातों को सामने लाने से बालमन की संवेदनाओं और भावनाओं की रक्षा हेतु जागरूक करने का प्रयास किया जा सकेगा। पति–पत्नी के अहं की टकराहट से बच्चों के मन पर पड़ने वाले कुप्रभाव से बच्चों को बचाने का प्रयास हो सकता है। ताकि बच्चों की जिंदगी त्रासद होने से बच सके। माता–पिता को अपने कर्तव्यों का बोध होना चाहिए। दाम्पत्य जीवन में बढ़ती समस्या हमारे नैतिक स्वास्थ्य में गिरावट का सूचक है, प्रत्येक व्यक्ति को इसके प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है। दाम्पत्य जीवन से जुड़े किसी भी फैसले में जल्दबाजी

(शेष पृष्ठ 146 पर)

जनजातीय समुदाय पर

'विद्यालयों के विलय' का प्रभाव

डॉ. अभय सागर 'मिंज'/ दीक्षा सिंह/विमल कच्छप *

भारत के पहले शिक्षा आयोग, 'कोठारी आयोग' ने शिक्षक और शिष्य के बीच के रिश्ते के महत्व पर जोर दिया। शिक्षक और शिष्य मिलकर एक "सीखने वाला समाज" बनाते हैं। यह समाज किसी भी तरह के बाहरी दबाव से मुक्त होना चाहिए और किसी भी हित–धारक के लिए उत्कृष्टता, रचनात्मकता और समग्र शैक्षणिक विकास को आगे बढ़ाने के लिए इनके पास पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिए (पूर्णिमा, 2020)।

वर्ष 2009 भारत की शिक्षा नीति के इतिहास में एक मील का पत्थर था जब शिक्षा का अधिकार अधिनियम एक कानूनी ताकत के रूप में लागू हुआ। शिक्षा का अधिकार अधिनियम अनुच्छेद 21A के तहत भारत के नागरिकों के लिए महत्वपूर्ण मौलिक अधिकारों में से एक बन गया। इस अनुच्छेद ने 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित की (दुबे, 2010)। इससे पहले, 1990 के दशक की शुरुआत में, भारत ने शिक्षा को जोरदार तरीके से बढ़ावा दिया, जहाँ कई शैक्षिक संरचनाएँ और मानव संसाधन स्थापित किए गए। इस अधिनियम के आगमन के बाद, अनेक छोटी बड़ी, सुदूर कस्बों में भी बुनियादी प्राथमिक विद्यालय खुल गये। छात्रों के लिए मुफ्त मध्याह्न भोजन के परिणामस्वरूप उच्च नामांकन दर और एक सम्मानजनक साक्षरता दर देखने को मिली। इस तरह के प्रयास से सुदूर और हाशिए पर पड़े समुदायों, विशेषकर भारत के अनुसूचित जनजातियों को बहुत लाभ हुआ।

इतने बड़े एवं सकारात्मक प्रयासों के बावजूद, शिक्षा की गुणवत्ता अभी भी एक बड़ी चिंता का विषय बनी हुई है। वर्ष 2016 में, एक नई दृष्टिकोण और प्रयास ने आकार लेना शुरू किया, जिसमें एक नई शिक्षा नीति का निर्माण किया जा रहा था। नई शिक्षा नीति के ड्राफ्ट में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और व्यावसायिक पहलुओं पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया। इसे 1947 में अपनी स्वतंत्रता के बाद से भारत की शैक्षिक नीति में एक आदर्श बदलाव लाने के प्रयास के रूप में देखा गया। समकालीन वैश्वीकृत और बाजार–उन्मुख समाज के प्रति कई प्रावधानों, आकांक्षाओं और अभिविन्यास के साथ, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक जटिल

* **संपर्क** – डॉ. अभयसागर मिंज : मानव विज्ञान विभाग, डी.एस.पी.एम.यू., राँची (झारखंड)/ दीक्षा सिंह : शोधकर्ता मानव विज्ञान विभाग, डी.एसपी.एम.यू., राँची (झारखंड)/विमल कच्छपः मानव विज्ञान विभाग, एस.एस.जे.एस.एन. कॉलेज, गढ़वा (झारखंड), मो.–8409409988

संरचना थी। एक प्रावधान के अनुसार सुदूर विद्यालयों को निकट के ज्यादा कार्यात्मक और बेहतर ढंग से स्थापित विद्यालयों के साथ विलय किया जाना था। यह आदिवासी समुदायों के लिए एक बड़ा झटका था, जो कम आबादी वाले गांवों और बस्तियों में रहते थे। इसके अलावा, अनेक आदिवासी क्षेत्र घने एवं दुर्गम जंगल वाले इलाके में उपस्थित थे। विद्यालयों के इस विलय के कारण बहुत ज्यादा ड्रॉप–आउट हुए और आदिवासी समाज की शैक्षिक आकांक्षाओं पर बुरा असर पड़ा। कई लोगों के लिए, यह उनकी पहली या दूसरी पीढ़ी थी जिसने पहली बार विद्यालय की संरचना देखी थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ड्राफ्ट 2020 : जुलाई 2017 में, मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने "बेहतर दक्षता के लिए भारतीय राज्यों में छोटे विद्यालयों के युक्तिकरण" पर दिशा–निर्देशों का एक दिशानिर्देश जारी किया था। युक्तिकरण का विचार एक निजी परामर्श समूह द्वारा प्रस्तावित किया गया था जिसे NITI (नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) आयोग द्वारा नियुक्त किया गया था। इन्होंने भारत भर के विभिन्न राज्यों में विद्यालयों के विलय के लिए प्रस्ताव पारित किया और इसकी अनुशंसा की। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के ड्राफ्ट को अंततः केंद्रीय मंत्रिमंडल ने मंजूरी दे दी और 31 जुलाई, 2020 को इसकी घोषणा की गई (अग्निहोत्री, 2022)।

सरकार काफी समय से सुदूर छोटे विद्यालयों को चलाने की लागत से असहज थीं। इसलिए, एनईपी के ड्राफ्ट में इस संरचनात्मक अपव्यय की जांच करने के लिए एक विचार आया। उन्होंने छोटे विद्यालयों को बंद करने की योजना बनाई क्योंकि वे आर्थिक रूप से अव्यवहारिक थे। किसी भी कक्षा के 30 से कम छात्रों वाले विद्यालयों को धीरे–धीरे बंद कर दिया जाना था और निकट के किसी बड़े विद्यालय में उसका विलय कर दिया जाना था। नीति आयोग स्वतंत्र रूप से उन राज्यों के साथ समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर करने लगा जो अपनी शिक्षा प्रणालियों के पुनर्गठन में सहायता चाहते थे। नीति आयोग ने सुधारों को लागू करने के लिए बोस्टन कंसल्टिंग ग्रुप (BCG) को शामिल किया। पहले चरण में 10 से कम विद्यार्थियों वाले विद्यालयों और दूसरे चरण में 30 से कम विद्यार्थियों वाले विद्यालयों को निकट के प्राथमिक या उच्च प्राथमिक विद्यालयों में मिला दिया गया।

विडंबना यह है कि विद्यालय शिक्षा पर एकीकृत जिला सूचना (यू–डीआईएसई) के अनुसार देश के 40 प्रतिशत से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में 30 से कम बच्चे नामांकित हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के 70 प्रतिशत से अधिक गांवों की जनसंख्या 2,000 से कम है। यदि इन गांवों की जनसंख्या को जोड़ दिया जाए तो यह ग्रामीण आबादी का लगभग 42 प्रतिशत है। 500 से कम आबादी वाले बहुत छोटे गांव 37.5 प्रतिशत और 1,000 तक की आबादी वाले 22 प्रतिशत हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि छोटे आकार के विद्यालयों का प्रतिशत 41 प्रतिशत है (के, 2021)। यदि आप उन्हें बंद कर देते हैं तो आप कम से कम 60 प्रतिशत गांवों से वह बदहाल प्राथमिक विद्यालय भी छीन लेंगे।

क्या छोटे विद्यालय पठन पाठन के दृष्टि से व्यवहार्य नहीं हैं? ये छोटे

विद्यालय कहाँ स्थित हैं? ये सभी पहाड़ी, दुर्गम जंगल और कम घनत्व वाले इलाकों में स्थित हैं, जहाँ परिवहन की सुविधा नहीं है और जो सदियों से विभिन्न प्रकार की बाधाओं से जूझ रहे हैं। क्या ऐसे स्थानों पर रहने वाले बच्चे शिक्षा के अधिकार अधिनियम के दायरे से बाहर हैं? सबसे अधिक प्रभावित समुदाय भारत के आदिवासी समाज हैं। वे अभी भी सबसे दुर्गम क्षेत्रों में स्थित हैं। पूरे राष्ट्रीय शिक्षा नीति ड्राफ्ट में आदिवासी शिक्षा का हाशिए पर होना चिंता का विषय प्रतीत होता है। इसमें आदिवासियों के महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक संवैधानिक प्रावधानों और अधिकारों का भी अभाव है। जाति–आधारित भेदभाव और उत्पीड़न का मुकाबला करने के लिए ड्राफ्ट में कोई अनुच्छेद नहीं है। वास्तव में, 'जाति' शब्द का उपयोग शायद ड्राफ्ट में केवल दो बार किया गया है और वह भी श्रेणियों की एक औपचारिक सूची में। यह भारत में 21वीं सदी में भी हाशिए पर पड़े समुदायों को बहुत प्रभावित करेगा।

देश भर में एक लाख से अधिक विद्यालयों के विलय या बंद करने और सार्वजनिक वित्त पोषित उच्च शिक्षा संस्थानों में सीटों में कटौती के माध्यम से सरकारी विद्यालयों के "तर्क–संगतीकरण" के लिए इसी तरह की योजनाओं के साथ विद्यालय और उच्च शिक्षा दोनों के लिए बजटीय आवंटन में भारी कटौती की गई है। यह "विलय" शिक्षा के अधिकार अधिनियम के 2009 में लागू होने के बमुश्किल एक दशक बाद हुआ है, जिसने सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा की गारंटी दी थी। सरकार का दावा है कि विद्यालयों को "विलय" किया जा रहा है ना कि बंद। "पुनर्गठन" का उद्देश्य सभी बच्चों को पूरी तरह कार्यात्मक निकट के विद्यालयों तक पहुँच सुनिश्चित करना और बच्चों के सर्वोत्तम हित के लिए संसाधनों को समेकित करना है। यह एक दिखावा प्रतीत होता है। विलय से प्रभावित लोगों के लिए, विद्यालय बंद होने के बराबर हैं। इस परिवर्तन ने कई छोटे बच्चों के जीवन को तबाह कर दिया है। नीति का ऐसे में राज्य के पैसे को "बचाना" प्रतीत होता है और वह भी बिना उन लोगों की बात सुने, जो सबसे अधिक प्रभावित होंगे।

शिक्षा समवर्ती सूची के अंतर्गत आती है और केंद्र शिक्षा को निर्धारित करने या विनियमित करने में राज्यों की शक्तियों को खत्म नहीं कर सकता है। यह राज्य सरकारों और विधान सभाओं का विशेषाधिकार है, जो अंततः संबंधित राज्य के लोगों के प्रति जवाबदेह हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और स्वतंत्रता के बाद पहले शिक्षा मंत्री मौलाना आजाद समाज का मात्र तकनीकी परिवर्तन और उत्थान ही नहीं चाहते थे, बल्कि भारतीय समाज का सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन भी उनका मुख्य उद्देश्य था। उनके लिए शिक्षा सभी जाति और जातीय सीमाओं को पार करते हुए समाज की समग्र स्थिति को बदलने का एक साधन था। यह भारत में पारंपरिक स्तरीकरण को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की शैक्षिक नीति में एक बड़े बदलाव के साथ–साथ 1992 के कार्य योजना ने एक बड़ा बदलाव पैदा किया। शिक्षा के अधिकार अधिनियम की धारा 6 में एक गांव से एक किलोमीटर की दूरी पर एक

प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की परिकल्पना की गई थी। यह अधिनियम निर्दिष्ट करता है कि यदि किसी गांव या बस्ती में 20 से कम बच्चे हैं, तो सरकार को प्राथमिक विद्यालय जाने वाले बच्चों को पहाड़ी क्षेत्रों में 1 किमी और मैदानी इलाकों में 3 किमी के भीतर स्थित विद्यालय में दाखिला दिलाना चाहिए। 2000 के दशक की शुरुआत में सार्वभौमिक शिक्षा योजना के तहत खोले गए कई नए प्राथमिक विद्यालयों को अब पास के बड़े विद्यालयों में मिला दिया गया है (अय्यर, 2018)। झारखंड, छत्तीसगढ़, केरल, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, तेलंगाना आदि राज्यों में विद्यालयों का यह विलय बहुत अधिक हुआ है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों की अनुपस्थिति एक समस्या है। अनेक जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम अध्ययनों से पता चला है कि एकल और दो–शिक्षक वाले विद्यालयों में यह बहुत अधिक गंभीर समस्या है, लेकिन जब कम से कम तीन शिक्षक और एक प्रधानाध्यापक होते हैं, तो अनुपस्थिति कम हो जाती है। तो सबक क्या है? गुणवत्तापूर्ण शिक्षकों की आपूर्ति बढ़ाएँ। दुर्गम क्षेत्रों में हमेशा कम आबादी, संचार की कमी और जोखिम भरे इलाके होते हैं। ऐसे में यदि एक बार विद्यालयोंका विलय हो गया, तो कई लोगों के लिए शिक्षा का सपना उसी दिन मर जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि पूरी कवायद का उद्देश्य संसाधनों के एकत्रीकरण के माध्यम से सरकार के लिए कुछ सौ करोड़ धन का बचाना ही मुख्य उद्देश्य है।

कम नामांकन दर वाले छोटे प्राथमिक विद्यालयों को बड़े विद्यालयों के साथ विलय करने से सरकार के पैसे बच सकते हैं, लेकिन इसने दूर दराज के क्षेत्रों के बच्चों के शैक्षिक जीवन पर गहरा दुष्प्रभाव होगा, जिनके लिए अपने घर से नए विद्यालयों में आने–जाने के लिए संसाधन नहीं के बराबर हैं। अनेक शोध में पता चला है कि ऐसे क्षेत्र जहां विद्यालयों का विलय हुआ है वहाँ अब आमतौर पर बच्चे सुबह उठते हैं और बाकी दिन इधर–उधर घूमते रहते हैं। कभी–कभी अपने परिवार के दैनिक कामों में मदद करते हैं। पहले छात्र अपना अधिकांश समय विद्यालय में मुफ्त मध्याह्न भोजन के साथ पढ़ना–लिखना सीखने में बिताते थे।

दार्जिलिंग के सुखिया पोखरी के प्लुंगडुंग जूनियर हाई स्कूल का केस अध्ययन : वर्तमान शोध पत्र में लेप्चा जनजाति के एक दुर्गम गाँव के विद्यालय का जिक्र है जिसे बंद कर के निकट के तीन किलोमीटर दूर के बड़े विद्यालय में विलय कर दिया गया। पुलुंगडंग लेप्चा जनजाति बहुल गाँव है। घने जंगल, ऊबड़–खाबड़ इलाका, खड़ी चढ़ाई, खराब सड़कें, कम आबादी, संघर्षरत विद्यालय जैसी विशेषता के कारण अध्ययन के लिए इसका चयन किया गया। विलय के बाद, कई लोगों को सुखिया पोखरी में एक विद्यालय में शामिल होने के लिए कहा गया, जो उनके घर से एक घंटे की पैदल की दूरी पर था। पहाड़ी इलाके में यह आवागमन आसान नहीं है। ये जनजातियाँ जंगल के अंदर रहती हैं, बिना किसी समुचित आय के साधन के ये अनेक प्रकार के विषमताओं से पीड़ित हैं। नए विद्यालय की सड़क के दोनों ओर घने जंगल हैं। एक प्राथमिक विद्यालय के बच्चे के लिए, यह शायद ही एक सुरक्षित यात्रा है। पुराने विद्यालय में मुश्किल से दो कमरे थे, पाँच कक्षाओं के लिए एक शिक्षक, कोई काम करने

वाला अतिरिक्त सहयोग नहीं था। शौचालय, मध्याह्न भोजन के लिए रसोईघर नहीं थी और ना ही बिजली थी। अधिकांश छात्रों के लिए, दिन में एक बार भोजन की गारंटी और कुछ घंटों की व्यस्तता का वादा ही उन्हें वहाँ ले कर आता था।

विलय की सूचना के बाद भी, पास के विद्यालयों में प्रवेश के लिए सरकार की ओर से कोई सहायता नहीं प्रदान की गई थी। इसलिए कई लोग दूसरे विद्यालय में प्रवेश की कठिन प्रक्रिया को पूरा नहीं कर पाए। किसी ने मदद के लिए कदम नहीं बढ़ाया और इसका नतीजा यह हुआ कि बच्चे जल्दी ही विद्यालय छोड़ दिये। स्थानीय विद्यालय के बंद होने के बाद अब माता–पिता अपने छोटे बच्चों को विद्यालय भेजने में अक्षम हैं। नए विलय किए गए विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का वादा भी पूरा नहीं किया गया है। पास के विद्यालय में शामिल होने वाले कुछ छात्रों ने बतलाया कि नया विद्यालय उनके घर के बगल वाले विद्यालय से बहुत अलग नहीं है। वहां भी बिजली नहीं है और पुराने दिनों की तरह एक ही कमरे में दो से ज्यादा कक्षाएँ चलती हैं।

छात्र–शिक्षक अनुपात, जो आदर्श रूप से प्राथमिक विद्यालय के लिए प्रत्येक 30 विद्यार्थियों के लिए 1 शिक्षक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों के लिए प्रत्येक 35 विद्यार्थियों के लिए 1 शिक्षक का प्रावधान था, उसका कभी भी अनुपालन नहीं हुआ है। केवल 28.3 प्रतिशत विद्यालय ही मानदंड का अनुपालन करते हैं और विलय से कोई मदद नहीं मिली है। बिजली, पानी, शौचालय और अन्य मुख्य बुनियादी ढांचे के मुद्दे अनसुलझे हैं। पैरा–शिक्षक जेन शेरिंग लेप्चा ने स्वीकार किया कि बंद होने से बच्चों के लिए रोजाना विद्यालय जाना मुश्किल हो गया है। उन्होंने बताया कि ज़्यादातर माता–पिता प्रवासी मजदूर और दिहाड़ी मजदूर हैं, जो काम छोड़कर बच्चों को रोज विद्यालय लाना ले जाना नहीं कर सकते, और इसलिए कई बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते हैं। उन्होंने कहा, 'ऐसे परिस्थितियों में बच्चों को विद्यालय में पढ़ाना मुश्किल है, क्योंकि माता–पिता को जीवन यापन के लिए आमदनी करनी होती है। ठीक विपरीत, ऐसे में बच्चों को पढ़ाई छोड़ कर दूसरे कामों की ओर धकेला जाता है। विद्यालयों के विलय से यह और भी जटिल हो गया है।' इस तरह विलय ने कई लोगों के लिए शिक्षा की उम्मीद को खत्म कर दिया है। लेकिन सिर्फ नामांकन के आधार पर विद्यालयों को बंद करना एक बुरा विचार है।

निष्कर्ष : शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने इस देश में कई लोगों के लिए शिक्षा तक समान पहुँच के प्रति कुछ राजनीतिक प्रतिबद्धता दिखाई थी। हालाँकि, अब विद्यालयों को बंद करना इस बात पर संदेह पैदा करता है कि राज्य इस कानून के बारे में कितना गंभीर है।

सरकार का यह दावा बार–बार दोहराया जा रहा है कि विद्यालयों को बंद नहीं किया जा रहा है बल्कि उनका "विलय" किया जा रहा है। "पुनर्गठन" का उद्देश्य "सभी बच्चों की पूरी तरह से कार्यात्मक पड़ोस के विद्यालयों तक पहुँच सुनिश्चित करना और बच्चे के सर्वोत्तम हित के लिए संसाधनों को समेकित करना" है। फिर भी, विलय से प्रभावित लोगों के लिए, विद्यालय बंद होने के

बराबर हैं। व्यवस्थित रूप से कम वित्त पोषण के कारण कई सार्वजनिक वित्त पोषित संस्थानों का स्व–वित्तपोषित पाठ्यक्रमों पर निर्भरता बढ़ाकर व्यवसायीकरण किया गया है। शिक्षकों की संख्या में वृद्धि और बुनियादी ढांचे की मात्रा छात्र नामांकन के साथ तालमेल नहीं रख पाई है। नामांकन केवल परीक्षाओं में शामिल होने और डिग्री हासिल करने तक सीमित रह गया है।

संदर्भ :

1. अग्निहोत्री, ए. (2022). राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020. चौपमैन और हॉल/सीआरसी ई–बुक्स में (पृष्ठ 153–170).
2. अय्यर, आर.वी. (2018)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का संशोधन, 1986। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ई–बुक्स
3. के, एम.एस. (2021)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 बनाम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 – एक तुलनात्मक अध्ययन। एडवांस्ड साइंस हब पर अंतर्राष्ट्रीय शोध जर्नल, 2 (विशेष अंक ICAMET 10S), 127–131।
4. दुबे, एम. (2010). बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009. सामाजिक परिवर्तन, 40(1), 1–13.
5. पूर्णिमा, एम. (2020)। कोठारी आयोग की रिपोर्ट (1964–66)। रूटलेज ई–बुक्स में (पृष्ठ 108–125)।

■

(पृष्ठ 140 का शेष)

नहीं करनी चाहिए और अहं को बीच में कभी नहीं लाना चाहिए, क्योंकि इससे केवल दो पक्ष ही प्रभावित नहीं होते हैं, तीसरा पक्ष अत्यधिक प्रभावित होता है, वह है–बालमन !!

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, प्रसाद राजराजेश्वरी, (2000) विकासात्मक एवं सामाज मनोविज्ञान, पटनाः भारती भवन, पृ० सं० –12
2. जॉनसर, हेरी० एम०, 'समाजशास्त्र : एक विधिवत विवेचन', कल्याणी पब्लिकेशन, पृ० से 171
3. राजकिशोर, (2005), आज के प्रश्न बच्चे और हम, राजकिशोर, दिल्ली शब्द सृष्टि प्रकाशन, पृ० सं०–9
4. यादव, राजेन्द्र, (2015), आदमी की निगाह में औरत, नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, पृ० सं० 229
5. भंडारी, मन्नू (2017) आपका बंटी, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, पृ०सं० – 18
6. स० डॉ० मधुकर सिंह गर्दिश के दिन, दिल्ली मीनाक्षी पुस्तक मन्दिर, पृ० सं० 30
7. सिंह, शिवप्रसाद, एक और जिंदगी 279

■

महिलाओं के विकास हेतु विभिन्न सरकारी योजनाओं के मार्ग में

समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

अशोक कुमार वर्मा/डॉ. शैलेन्द्र सिंह *

महिलाओं के विकास के लिए भारत सरकार द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को सशक्त बनाना, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति में सुधार करना और उन्हें सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना है। इसके बावजूद इन योजनाओं के कार्यान्वयन में कई बाधाएं आती हैं। इन बाधाओं का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से करना महत्वपूर्ण है, ताकि यह समझा जा सके कि सामाजिक संरचना, संस्कृति, और परंपराएं इन योजनाओं के क्रियान्वयन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

भारत में महिलाओं के विकास को राष्ट्रीय विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आयाम माना गया है। उत्तर प्रदेश, जो भारत का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य है, यहां महिलाओं की स्थिति ऐतिहासिक रूप से चुनौतीपूर्ण रही है। अशिक्षा, गरीबी, रूढ़िवादी परंपराएं और लैंगिक भेदभाव महिलाओं के विकास में बाधा डालते हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने महिलाओं के लिए कई कल्याणकारी योजनाएं शुरू की हैं, लेकिन इन योजनाओं के क्रियान्वयन में कई समस्याएं आती हैं। यह अध्ययन इन समस्याओं का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से मूल्यांकन करता है।

भारत में महिलाओं के विकास के लिए प्रयास स्वतंत्रता के पहले से ही होते आए हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण को प्राथमिकता दी। भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता, शिक्षा और काम के अधिकार प्रदान किए। इसके बावजूद महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार की गति धीमी रही है। यह अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह समझने का प्रयास करता है कि महिलाओं के विकास हेतु चलाई जा रही योजनाओं के क्रियान्वयन में क्या समस्याएं आती हैं और उनका समाधान कैसे किया जा सकता है। महिलाओं के विकास के लिए प्रमुख सरकारी योजनाएं : 1. बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना : उद्देश्य : महिला भ्रूण हत्या रोकना और लड़कियों को शिक्षा के अवसर प्रदान करना। / 2. महिला शक्ति केंद्र योजना : उद्देश्य : ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना।/ 3. प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजनाः उद्देश्य : महिलाओं को स्वच्छ ईंधन (LPG गैस) प्रदान करना।/4. प्रधानमंत्री मातृ

* **संपर्क** – शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, जे.एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (उ.प्र.)/डॉ. शैलेन्द्र सिंह, शोध निदेशक एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,जे.एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (उ.प्र.)

वंदना योजना : उद्देश्य : गर्भवती महिलाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करना।/ 5. स्टैंड अप इंडिया योजना : उद्देश्य : महिलाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता में प्रोत्साहित करना।

उत्तर प्रदेश में महिलाओं के विकास के लिए प्रमुख सरकारी योजनाएं :

1. मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजना : : उद्देश्य : बालिकाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार करना। लाभार्थी : राज्य की गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवार।/ 2. महिला हेल्पलाइन 181 : उद्देश्य : महिलाओं को हिंसा और उत्पीड़न से बचाने के लिए सहायता प्रदान करना।/3. मुख्यमंत्री सामूहिक विवाह योजना : उद्देश्य : आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की बेटियों के विवाह में वित्तीय सहायता।/4. प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना : उद्देश्य : ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को स्वच्छ ईंधन (एलपीजी) उपलब्ध कराना।/5. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) : उद्देश्य : महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान कर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार करना।/6. बालिका शिक्षा अभियान : उद्देश्य : बालिकाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समस्याओं का विश्लेषण :

1. सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएं : पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था : उत्तर प्रदेश में पितृसत्तात्मक सोच गहराई तक जमी हुई है, जो महिलाओं को योजनाओं का लाभ उठाने से रोकती है।

रूढ़िवादी परंपराएं : ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा को कम प्राथमिकता दी जाती है। बाल विवाह और घरेलू कार्यों को प्राथमिकता देने की सोच योजनाओं के प्रभाव को सीमित करती है।

लैंगिक भेदभाव : लड़कों को लड़कियों से अधिक प्राथमिकता दी जाती है, जिससे लड़कियों के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता।

2. शिक्षा और जागरूकता की कमी : कई महिलाएं सरकारी योजनाओं के बारे में अनभिज्ञ हैं। ग्रामीण और अशिक्षित महिलाओं को योजनाओं की जानकारी नहीं मिल पाती, जिससे उनका लाभ सीमित रहता है।

3. आर्थिक समस्याएं : गरीबी और आर्थिक असुरक्षा के कारण महिलाएं स्वरोजगार योजनाओं का लाभ नहीं उठा पातीं। योजनाओं के लिए कागजी प्रक्रियाओं को पूरा करना गरीब महिलाओं के लिए कठिन होता है।

4. प्रशासनिक और संस्थागत समस्याएं : योजनाओं के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार और अनियमितताएं। योजनाओं की निगरानी और समय पर धन आवंटन में देरी। स्थानीय स्तर पर प्रभावी कार्यान्वयन तंत्र का अभाव।

5. भौगोलिक बाधाएं : दूरदराज और ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे की कमी। बैंक, स्कूल, और स्वास्थ्य सेवाओं तक महिलाओं की पहुंच सीमित।

उत्तर प्रदेश के संदर्भ में प्रमुख समस्याओं के उदाहरण :

उज्ज्वला योजना : कई ग्रामीण परिवारों में एलपीजी सिलेंडर की लागत के कारण इसका बार–बार उपयोग नहीं होता।

कन्या सुमंगला योजना : लाभार्थी परिवारों को कागजी औपचारिकताओं के कारण

योजना का लाभ लेने में कठिनाई होती है।
महिला हेल्पलाइन 181 : महिलाओं को हिंसा की शिकायत दर्ज कराने में सामाजिक दबाव और परिवार का विरोध झेलना पड़ता है।

बालिका शिक्षा अभियान : ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा के लिए पर्याप्त स्कूलों और शिक्षकों का अभाव।

समस्याओं का समाधान : 1. जागरूकता अभियान : योजनाओं के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए स्थानीय भाषाओं में प्रचार।/पंचायतों और महिला स्व–सहायता समूहों के माध्यम से जानकारी का प्रसार।/2. शिक्षा का सशक्तिकरण : बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा। शिक्षा तक महिलाओं की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए स्कूलों का विस्तार।/3. प्रशासनिक सुधार : योजनाओं के क्रियान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करना।/स्थानीय स्तर पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए महिला ग्राम प्रधानों को प्रशिक्षित करना।/4. आर्थिक सशक्तिकरण : महिलाओं के लिए सरल ऋण योजनाएं शुरू करना। स्वरोजगार और उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए कौशल विकास कार्यक्रम।/5. सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव : पितृसत्तात्मक सोच को बदलने के लिए जागरूकता अभियान चलाना। परिवार और समाज में महिलाओं की भूमिका के महत्व को उजागर करना।

समीक्षा के प्रमुख बिंदु (Key Themes in Literature Review) :

1. महिलाओं के विकास और सरकारी योजनाओं का महत्व : सिंह (2015) : अपने अध्ययन में बताया कि महिलाएं भारतीय समाज का एक प्रमुख हिस्सा हैं, और उनका विकास राष्ट्र की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक है। सरकारी योजनाओं, जैसे बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना और स्वाधार गृह योजना, का उद्देश्य महिलाओं के लिए समानता, शिक्षा, और आर्थिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करना है।

अंबेडकर (1942) : महिलाओं के सशक्तिकरण को भारतीय समाज में समानता लाने का आधार बताया। उनके दृष्टिकोण से, महिलाओं के लिए शिक्षा और आर्थिक स्वायत्तता प्राथमिक आवश्यकता है।

2. सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएं : गुप्ता और शर्मा (2018)रू ग्रामीण उत्तर प्रदेश में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि पितृसत्तात्मक सोच महिलाओं को सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने से रोकती है। महिलाएं सामाजिक दबाव और परिवार की अस्वीकृति के कारण योजनाओं में शामिल नहीं हो पातीं।

जोशी (2019) : उनके शोध ने दिखाया कि रूढ़िवादी परंपराएं, जैसे बाल विवाह और लड़कियों की शिक्षा में अवरोध, योजनाओं के कार्यान्वयन में मुख्य बाधाएं हैं।

मिश्रा (2020) : ने बताया कि लैंगिक भेदभाव योजनाओं के प्रति महिलाओं की भागीदारी को सीमित करता है।

3. शिक्षा और जागरूकता की कमी : देवेंद्र (2016) : ने महिलाओं के लिए चलाई जा रही योजनाओं की प्रभावशीलता का अध्ययन करते हुए बताया कि

योजनाओं की जानकारी की कमी और शिक्षा का अभाव उनके उपयोग को बाधित करता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग (2019)रू ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि अधिकांश महिलाएं, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, सरकारी योजनाओं के लाभों से अनभिज्ञ रहती हैं।

4. आर्थिक बाधाएं : सक्सेना (2017) : आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं के पास स्वरोजगार योजनाओं के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी होती है।

भारतीय रिजर्व बैंक (2018) : की रिपोर्ट में पाया गया कि महिलाओं के लिए ऋण योजनाएं और वित्तीय सहायता की प्रक्रिया जटिल और समय लेने वाली होती है।

5. प्रशासनिक समस्याएं : चतुर्वेदी (2019) : ने अपने अध्ययन में उत्तर प्रदेश में भ्रष्टाचार और योजनाओं के कार्यान्वयन में अनियमितताओं को उजागर किया।

यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम (2020) : की रिपोर्ट में यह बात सामने आई कि योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए पारदर्शिता और जवाबदेही आवश्यक है, जो कई बार स्थानीय प्रशासन में नहीं दिखती।

6. भौगोलिक और संरचनात्मक समस्याएं :

त्रिपाठी (2018) : ने ग्रामीण उत्तर प्रदेश में किए गए एक शोध में बताया कि बुनियादी ढांचे की कमी, जैसे कि स्कूल, बैंक और स्वास्थ्य सेवाएं, योजनाओं तक महिलाओं की पहुंच में बाधा डालती हैं।

विश्व बैंक (2021) : ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि ग्रामीण महिलाओं के लिए योजनाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए बुनियादी ढांचे में सुधार आवश्यक है।

समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव (Recommendations from Literature) :

1. जागरूकता और शिक्षा : कुमार (2019) : जागरूकता अभियान चलाकर योजनाओं के प्रति महिलाओं और उनके परिवारों को शिक्षित करने पर जोर दिया।

सेठी (2020) : ने सुझाव दिया कि योजनाओं की जानकारी स्थानीय भाषाओं में प्रचारित की जाए।

2. सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव : पांडे (2021) : पितृसत्तात्मक सोच को बदलने और महिलाओं की क्षमता को पहचानने के लिए सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करने पर बल दिया।

3. प्रशासनिक सुधार : UNICEF (2018) : ने स्थानीय प्रशासन में पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ाने के लिए तकनीकी समाधानों, जैसे डिजिटल ट्रैकिंग सिस्टम, को लागू करने का सुझाव दिया।

देव (2020) : ने ग्राम स्तर पर महिला स्वयं सहायता समूहों को योजनाओं के कार्यान्वयन में शामिल करने का सुझाव दिया।

4. आर्थिक सशक्तिकरण : वर्ल्ड बैंक (2019) : महिलाओं के लिए आसान ऋण प्रक्रिया और स्वरोजगार योजनाओं को बढ़ावा देने पर जोर दिया।

राज्य योजना आयोग, उत्तर प्रदेश (2021) : ने महिलाओं के लिए कौशल विकास और रोजगार कार्यक्रमों को प्राथमिकता देने का सुझाव दिया।

निष्कर्ष (Conclusion) :

उत्तर प्रदेश में महिलाओं के विकास हेतु चलाई जा रही योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन तभी संभव है, जब सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर किया जाए। शिक्षा, जागरूकता, और प्रशासनिक सुधार इन योजनाओं की सफलता के प्रमुख आधार हो सकते हैं। यह भी आवश्यक है कि इन योजनाओं की निगरानी के लिए एक प्रभावी तंत्र विकसित किया जाए और महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए समाज में सकारात्मक बदलाव लाया जाए। केवल सरकारी प्रयास ही नहीं, बल्कि समाज के सभी वर्गों की सक्रिय भागीदारी से ही महिलाओं का समग्र विकास संभव है।

संदर्भ :

1. गुप्ता, आर. (2018), भारतीय समाज और महिला सशक्तिकरणः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन।
2. मिश्रा, पी. (2020), उत्तर प्रदेश में महिला कल्याण योजनाओं की स्थिति।
3. UNICEF (2018), Empowering Women in Rural India.
4. वर्ल्ड बैंक (2021). Bridging the Gap: Women's Development in India.
5. चतुर्वेदी, एस. (2019). महिला विकास और सरकारी योजनाओं का प्रभाव।
6. राष्ट्रीय महिला आयोग (2019). भारतीय महिलाओं की स्थिति पर वार्षिक रिपोर्ट.
7. त्रिपाठी, के. (2018). उत्तर प्रदेश में महिलाओं के विकास के लिए चुनौतियां और समाधान.
8. गुप्ता, आर. भारतीय समाज और महिला सशक्तिकरण : एक समाजशास्त्रीय प्रथम (2018)।
9. अध्ययनरावत पब्लिकेशन, जयपुर। पृष्ठ– 45–78।
10. मिश्रा, पी.उत्तर प्रदेश में महिला कल्याण योजनाओं की स्थिति,द्वितीय (2020), ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृष्ठ– 120–150 .
11. देवेंद्रएच., महिलाओं के विकास की चुनौतियां और समाधान, तृतीय (2017), प्रकाशन संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ– 62–94 .
12. सक्सेनाएस., महिला सशक्तिकरण और सरकारी योजनाओं का प्रभाव, प्रथम (2017), डोमिनेंट पब्लिकेशन, आगरा,पृष्ठ– 88–120.
13. त्रिपाठी के., उत्तर प्रदेश में महिलाओं के विकास के लिए चुनौतियां और समाधान , द्वितीय (2018), डायमंड पब्लिकेशन, कानपुर, पृष्ठ– 101–130.
14. राष्ट्रीय महिला आयोग (NCW), भारतीय महिलाओं की स्थिति पर वार्षिक, रिपोर्ट (2019), वार्षिक प्रकाशन, एनसीडब्ल्यू, नई दिल्ली, पृष्ठ– 10–35.
15. जोशीआर., महिला विकास योजनाएं : एक व्यावहारिक दृष्टिकोण, प्रथम (2019), लोटस पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी, पृष्ठ– 92–115

■.

भारत में वृद्धों के सामने
संभावित समस्याएँ और उनके समाधान

प्रतीक कुमार / डॉ. शैलेन्द्र सिंह *

भारत, जो परंपरागत रूप से संयुक्त परिवार और सम्मानित वृद्धजनों की संस्कृति के लिए जाना जाता है, अब वृद्धजनों की बढ़ती संख्या और उनकी समस्याओं से जूझ रहा है। पिछले 50 वर्षों में जन सांख्यिकीय परिवर्तन के चलते 60 वर्ष से अधिक आयु के लोगों की जनसंख्या तीन गुना हो चुकी है। यह जनसंख्या वृद्धावस्था में विशेष स्वास्थ्य देखभाल, सामाजिक समर्थन, और आर्थिक सहायता की मांग करती है। भारत में वृद्धावस्था के साथ आनेवाली चुनौतियाँ आज के समय में सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मुद्दों के रूप मे उभर रही हैं। बढ़ती जीवन प्रत्याशा और घटती जन्मदर के कारण वृद्धों की संख्या में वृद्धि हो रही है। परंतु, यह जनसंख्या अक्सर स्वास्थ्य, सामाजिक समावेशन और आर्थिक आत्मनिर्भरता जैसी समस्याओं से घिरी होती है। प्रमुख समस्याएँ

भारतीय समाज में वृद्धजनों की स्थिति पिछले कुछ दशकों में तेजी से बदल रही है। पहले संयुक्त परिवारों के अंतर्गत वृद्धजन अपनी देखभाल और सम्मान पाते थे, लेकिन शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और बदलती सामाजिक संरचनाओं ने इस स्थिति को जटिल बना दिया है। आज के समय में वृद्धजनों को आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्तर पर कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वृद्धावस्था में स्वास्थ्य समस्याओं, आर्थिक निर्भरता, पारिवारिक उपेक्षा, और सामाजिक अलगाव के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। साथ ही, समाज में वृद्ध जनों की सुरक्षा और उनकी गरिमा की रक्षा के लिए जागरूकता की कमी है। सरकार द्वारा चलाई जा रही राष्ट्रीय वृद्धजन नीति और अन्य कल्याणकारी योजनाएँ इन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करती हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर इनका प्रभाव सीमित है।

यह शोधपत्र वृद्धजनों की समस्याओं को समझने और उनके समाधान के लिए व्यापक सुझाव देने का प्रयास करता है। इसमें वृद्धजनों की समस्याओं के सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी पहलुओं का विश्लेषण किया जाएगा और समाधान के लिए नीतिगत, सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर सुधारात्मक कदम सुझाए जाएँगे।

* **संपर्क** – शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, जे.एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद, (उ.प्र.) / डॉ. शैलेंद्र सिंह, शोध निदेशक एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, जे.एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद (उ.प्र.)।

वृद्धावस्था की समस्याएँ :

1. स्वास्थ्य संबंधित समस्याएँ : वृद्धावस्था में लोग विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं से जूझते हैं जैसे हृदय रोग, मधुमेह, और मानसिक स्वास्थ्य विकार। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच में असमानता एक बड़ी समस्या है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक और लैंगिक असमानताएँ भी स्वास्थ्य देखभाल तक पहुँच में बाधा उत्पन्न करती हैं।

स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ : बीमारियों का बढ़ता बोझ–वृद्धजनों में हृदयरोग, मधुमेह, गठिया और मानसिक स्वास्थ्य विकार प्रमुख हैं।

स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच– ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्धजनों को स्वास्थ्य सुविधाएँ सुलभ नहीं हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में निजी सेवाएँ महंगी हैं।

लैंगिक असमानता– वृद्ध महिलाओं को स्वास्थ्य सेवाओं में अधिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

2. आर्थिक समस्याएँ : पेंशन योजनाओं की कमी और अपर्याप्त बचत वृद्धजनों को परिवार पर निर्भर बनाती है। वृद्धावस्था में रोजगार की कमी आर्थिक बोझ बढ़ाती है। पेंशन और बचत की कमी से वृद्धजन अक्सर अपने परिवारों पर निर्भर हो जाते हैं। यह निर्भरता कई बार आर्थिक तनाव और पारिवारिक संघर्ष का कारण बनती है। परिवारों पर वित्तीय दबाव के कारण उन्हें उपेक्षित किया जाता है।

3. सामाजिक और पारिवारिक उपेक्षा : पारंपरिक संयुक्त परिवारों का विघटन और शहरों की ओर पलायन से वृद्धजन अकेले हो रहे हैं।

उन्हें भावनात्मक समर्थन और सम्मान की कमी का सामना करना पड़ता है।

4. दुर्व्यवहार और शोषण : वृद्धजनों के साथ शारीरिक, मानसिक, और आर्थिक दुर्व्यवहार के मामले बढ़ रहे हैं। यह समस्या खासतौर से उन वृद्धजनों में अधिक है जो अपने परिवारों पर निर्भर हैं।

5. सामाजिक बहिष्करण : बहुत से वृद्धजनों को समाज में सक्रिय भागीदारी से वंचित किया जाता है। शहरीकरण और परिवारों के विखंडन के कारण वे अकेलेपन और अलगाव का सामना करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या अधिक गंभीर है।

6. कानूनी और नैतिक संरक्षण का अभाव कई वृद्धजनों को संपत्ति के विवादों, दुर्व्यवहार और उपेक्षा जैसी समस्या ओ ंका सामना करना पड़ता है। अपर्याप्त कानूनी जागरूकता और सामाजिक सुरक्षा नीतियाँ इस समस्या को और गंभीर बनाती हैं।

वृद्धावस्था की चुनौतियाँ : वृद्धावस्था, जीवन के अंतिम चरण में प्रवेश करती एक स्थिति है, जिसमें व्यक्ति कई शारीरिक, मानसिक और सामाजिक चुनौतियों का सामना करता है। प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं–

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ– हृदयरोग, गठिया, अल्जाइमर, डायबिटीज और श्वसन संबंधी रोग सामान्य हैं। वृद्ध लोगों को स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच की समस्या का सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में ।

आर्थिक चुनौतियाँ – वृद्धावस्था में आय के साधन सीमित हो जाते हैं। पेंशन और सामाजिक सुरक्षा की कमी आर्थिक संकट को बढ़ाती है।

मानसिक स्वास्थ्य – अकेलापन, उदासी और सामाजिक अलगाव मानसिक तनाव बढ़ाते हैं। परिवार से दूरी और भावनात्मक समर्थन की कमी मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है .

सामाजिक चुनौतियाँ– उम्र बढ़ने के साथ सामाजिक उपेक्षा और बुजुर्गों की देखभाल में कमी देखी जाती है। बुजुर्ग–समावेशी समाज की कमी वृद्धावस्था को और जटिल बना देती है।

महिलाओं की विशिष्ट समस्याएँ– वृद्ध महिलाओं में स्वास्थ्य, आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ अधिक देखी जाती हैं। यह 'नारीकरण' वृद्धावस्था का हिस्सा है।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार, समाज और परिवार की सामूहिक भागीदारी आवश्यक है।

भारत में वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए राष्ट्रीयनीति 1999 में बनाई गई थी, जिसका उद्देश्य वृद्धजनों के सामाजिक और आर्थिक भलाई को बढ़ावा देना है। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं–

आर्थिक सुरक्षा – वृद्धजनों को वित्तीय सुरक्षा, उनके लिए पेंशन और सामाजिक सुरक्षा योजनाएं प्रदान करना।

स्वास्थ्य देखभाल– वृद्धजनों के लिए स्वास्थ्य सेवाएं और उपचार की सुविधाएं सुनिश्चित करना।

आश्रय और अन्य सुविधाएं – बेसहारा वृद्धजनों के लिए आवास और भोजन जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की व्यवस्था करना।

शोषण से सुरक्षा – वृद्धजनों को शोषण और दुर्व्यवहार से बचाने के लिए सुरक्षा उपायों का प्रावधान।

समान हिस्सेदारी– वृद्धजनों के लिए विकास में समान अवसर सुनिश्चित करना, ताकि वे समाज में सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

यह नीति सरकार को वृद्धजनों के कल्याण के लिए वित्तीय और सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने में मार्गदर्शन प्रदान करती है।

समाधान :

1. स्वास्थ्य देखभाल सुधार – सरकारी और निजी स्तर पर वृद्धजनों के लिए विशेष स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना। वृद्धजनों के लिए समर्पित स्वास्थ्य बीमा योजनाओं को सुलभ बनाना। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में वृद्धजनों के लिए विशेष सेवाओं की शुरुआत। स्वास्थ्य बीमा योजनाओं का व्यापक प्रचार और उन्हें सुलभ बनाना।

2. आर्थिक आत्मनिर्भरता – वृद्धजनों के लिए रोजगार के लचीले अवसर उपलब्ध कराना। पेंशन योजनाओं का सार्वभौमिक कवरेज और प्रभावी कार्यान्वयन।

3. सामाजिक जागरूकता और समर्थन – पारिवारिक मूल्यों और संयुक्त परिवार की अवधारणा को बढ़ावा देना। वृद्धाश्रमों और डे–केयर केंद्रों की संख्या बढ़ाना।

4. दुर्व्यवहार की रोकथाम – वृद्धजनों के अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनों का सख्त क्रियान्वयन। हेल्पलाइन और काउंसलिंग सेवाओं को सुदृढ़ बनाना

5. कानूनी संरक्षण और नीति सुधार – कड़े कानून– संपत्ति विवाद और दुर्व्यवहार के मामलों के लिए सख्त कानून लागू किए जाएँ। हेल्पलाइन और कानूनी सहायता– वृद्धजनों के लिए हेल्पलाइन और निःशुल्क कानूनी सहायता सेवाओं का विस्तार।

निष्कर्ष :– वृद्धावस्था समाज का वह हिस्सा है जो अनुभव और ज्ञान का प्रतीक है। भारतीय समाज में वृद्धजनों को उनकी गरिमा और अधिकार वापस दिलाने के लिए स्वास्थ्य, सामाजिक, और कानूनी उपाय आवश्यक है। यह समाज की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह वृद्धजनों को सम्मान और सुरक्षा प्रदान करे। भारतीय समाज में वृद्धों के समक्ष आनेवाली समस्याएँ न केवल व्यक्तिगत मुद्दे हैं, बल्कि सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियाँ भी हैं। स्वास्थ्य, सामाजिक और आर्थिक योजनाओं का समुचित क्रियान्वयन ही वृद्धजनों के जीवन को सम्मान जनक और सुरक्षित बना सकता है।

सुझाव : वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं को कम करने और उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

आर्थिक सुरक्षा – सभी वृद्धजनों को वृद्धावस्था पेंशन की सुविधा दी जानी चाहिए। इससे उनके आर्थिक संकट कम हो सकते हैं।

स्वास्थ्य सुविधाएँ– स्थानीय क्षेत्रों में प्राथमिक चिकित्सा सेवाएँ और मोबाइल स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जानी चाहिए। वृद्धजनों के लिए नियमित स्वास्थ्य परीक्षण अनिवार्य होना चाहिए।

मनोरंजन और सामूहिक भागीदारी – वृद्धजनों के लिए सामुदायिक केंद्रों में मनोरंजन और सामाजिक भागीदारी के कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। इससे उनका अकेलापन दूर होगा और मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होगा।

परिवार और समाज का सहयोग – परिवार और समाज को वृद्धजनों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। उनके अनुभवों और योगदानों को मान्यता देकर उन्हें सम्मान देना चाहिए।

शिक्षा और जागरूकता – समाज में वृद्धावस्था के प्रति जागरूकता फैलाने और उनकी देखभाल के महत्व को समझाने के लिए अभियान चलाने।

संदर्भ सूची :

1. Drishti IAS Team, भारत में बुजुर्गों की स्थिति, समस्याएँ और समाधान, Drishti Publication India.
2. चंद्र मौलेश्वर प्रसाद, 'वृद्धावस्था विमर्श', परिलेख प्रकाशन, 2016, नजीबाबाद, उत्तर प्रदेश
3. रश्मि अग्रवाल ,'वृद्धावस्था (सामाजिक अध्ययन)', ओपन डोर, 2022, नजीबाबाद, बिजनौर, उत्तर प्रदेश।
4. रघुवीर चौधरी, 'उपरवास', साहित्य अकादमी, 1975, नई दिल्ली।
5. Richard A. Posner, Aging and Old Age, 1995, University of Chicago Press.

■

भीमराव अंबेडकर और भारतीय संविधान

राजेश कुमार/डॉ. शैलेन्द्र सिंह*

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज के महान चिंतक और सुधारक थे। उनका योगदान भारतीय समाज के लिए अभूतपूर्व रहा है, विशेष रूप से भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अंबेडकर ने भारतीय समाज के दबे–कुचले वर्गों, खासकर दलितों, के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और भारतीय संविधान में उन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रावधानों का समावेश किया। इस शोध पत्र में डॉ. अंबेडकर की जीवन यात्रा, उनके विचार, भारतीय संविधान पर उनका प्रभाव, और उनके योगदान का विश्लेषण किया जाएगा।

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज के सबसे महान और प्रभावशाली नेताओं में से एक थे, जिनका योगदान भारतीय समाज और संविधान के निर्माण में अतुलनीय है। उनका जीवन संघर्षों और चुनौतियों से भरा हुआ था, लेकिन उन्होंने हमेशा सामाजिक न्याय, समानता, और मानवाधिकारों के लिए संघर्ष किया। भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी भूमिका एक ऐतिहासिक मील का पत्थर है, क्योंकि उन्होंने इसे न केवल एक कानूनी दस्तावेज के रूप में, बल्कि भारतीय समाज में न्याय, समानता और स्वतंत्रता की गारंटी देने वाले एक अभिकल्प के रूप में रूपांतरित किया। डॉ. अंबेडकर ने भारतीय संविधान में समाज के हर वर्ग, विशेष रूप से दलितों, पिछड़े वर्गों और महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की।

उनका जीवन केवल संघर्ष का नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, असमानता और अन्याय के खिलाफ एक खुला विरोध था। अंबेडकर ने भारतीय समाज को यह समझने में मदद की कि संविधान केवल शासन का ढांचा नहीं है, बल्कि यह समाज में सामाजिक न्याय और समानता को सुनिश्चित करने का एक सशक्त माध्यम है।

यह शोध पत्र डॉ. भीमराव अंबेडकर के जीवन, उनके विचारों और भारतीय संविधान के निर्माण में उनके योगदान पर आधारित है। इस पत्र के माध्यम से हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि डॉ. अंबेडकर ने भारतीय संविधान में कैसे

* **संपर्क** – शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, जे.एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद (उ.प्र.)/डॉ. शैलेंद्र सिंह, शोध निदेशक एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, जे.एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद (उ.प्र.)।

एक ऐसा ढांचा स्थापित किया, जो भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धांतों को बढ़ावा देता है। इस शोध पत्र में डॉ. अंबेडकर के दृष्टिकोण और उनके द्वारा किए गए सुधारों का गहन विश्लेषण किया जाएगा, जो आज भी भारतीय समाज के लिए मार्गदर्शक बने हुए हैं।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का जीवन और संघर्ष : भीमराव अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को महू, मध्य प्रदेश में हुआ था। वे एक दलित परिवार मं पैदा हुए थे और उनका जीवन संघर्षों से भरा हुआ था। उनके जीवन का उद्देश्य समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय को समाप्त करना था। अंबेडकर ने अपनी शिक्षा को सबसे बड़ी प्राथमिकता दी, और उन्होंने एक वकील, समाज सुधारक, और अर्थशास्त्र के विद्वान के रूप में अपनी पहचान बनाई। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद के खिलाफ आवाज उठाई और दलितों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी।

भारतीय संविधान की रचना में अंबेडकर का योगदान : भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए 1947 में संविधान सभा का गठन किया गया, और डॉ. अंबेडकर को इस सभा का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। डॉ. अंबेडकर ने भारतीय संविधान में दलितों, पिछड़ों, और महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधानों की सिफारिश की। उन्होंने भारतीय संविधान को सामाजिक न्याय, समानता, और स्वतंत्रता का संवर्धन करने वाला दस्तावेज बनाया। भारतीय संविधान में उनके द्वारा सुझाए गए कई प्रावधान आज भी भारतीय समाज में सामाजिक समानता और न्याय की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

अंबेडकर के विचार और भारतीय समाज पर उनका प्रभाव : डॉ. अंबेडकर के विचार भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक ढांचे को नया दिशा देने वाले थे। उनका यह मानना था कि भारतीय समाज में जातिवाद को समाप्त करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि सभी नागरिक समान अधिकारों का कर्षण कर सकें। उन्होंने भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेष रूप से दलितों, के अधिकारों की रक्षा के लिए कई प्रावधानों की सिफारिश की। डॉ. अंबेडकर का यह दृष्टिकोण आज भी भारतीय समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत बना हुआ है।

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ :

समानता और स्वतंत्रता – डॉ. अंबेडकर ने भारतीय संविधान में समानता और स्वतंत्रता के अधिकार को सुनिश्चित किया।

जातिवाद के खिलाफ प्रावधान – संविधान में जातिवाद और अपार्थेड नीति को समाप्त करने के लिए विशेष प्रावधान किए गए।

समाजवादी प्रावधान – डॉ. अंबेडकर ने भारतीय समाज में वर्गहीन और जातिविहीन समाज की दिशा में काम करने के लिए कई प्रावधान सुझाए।

महिलाओं के अधिकार – महिलाओं को समान अधिकार देने के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए।

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज सुधारक, संविधान निर्माता और दलितों के अधिकारों के पक्षधर थे। उनका जीवन और कार्य भारतीय समाज के असमानता और भेदभाव को खत्म करने के लिए समर्पित था। अंबेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, धर्म और सामाजिक असमानताओं के खिलाफ आवाज उठाई और उनका उद्देश्य समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुता की स्थापना करना था। डॉ. अंबेडकर ने समाज सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं –

भारतीय संविधान का निर्माण : डॉ. अंबेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माणकर्ता थे। उन्होंने संविधान में सभी नागरिकों को समान अधिकार देने की दिशा में काम किया, जिससे समाज में असमानता को कम किया जा सके। उन्होंने विशेष रूप से दलितों, आदिवासियों और अन्य उत्पीड़ित समुदायों के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए विशेष प्रावधान किए।

शिक्षा का महत्व : अंबेडकर ने हमेशा शिक्षा के महत्व को बताया। उनका मानना था कि समाज में समानता लाने का सबसे प्रभावी तरीका शिक्षा है। उन्होंने समाज के निचले वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया, ताकि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकें।

धर्म परिवर्तन : डॉ. अंबेडकर ने हिंदू धर्म के भीतर जातिवाद के विरोध में आवाज उठाई और अंततः 1956 में बौद्ध धर्म अपनाया। उन्होंने लाखों लोगों को बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया, ताकि वे जातिवाद और सामाजिक भेदभाव से मुक्ति पा सकें।

समान अधिकारों की वकालत : अंबेडकर ने महिलाओं और अन्य कमजोर वर्गों के लिए समान अधिकारों की वकालत की। उन्होंने महिलाओं के लिए संपत्ति के अधिकार, समान विवाह अधिकार, और समान कार्य के लिए समान वेतन की आवश्यकता पर जोर दिया।

डॉ. अंबेडकर का योगदान भारतीय समाज सुधार में अनमोल था, और उनकी विचारधारा आज भी समाज में समानता और न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती है। डॉ. भीमराव अंबेडकर का समाज कल्याण के प्रति योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली था। उनका मानना था कि समाज कल्याण केवल तभी संभव है जब समाज में समानता, न्याय और बंधुत्व की स्थापना हो। उन्होंने समाज के हर वर्ग, विशेषकर दलितों, पिछड़ों और महिलाओं के अधिकारों को सशक्त बनाने के लिए निरंतर संघर्ष किया। उनके समाज कल्याण के दृष्टिकोण में कई महत्वपूर्ण पहलू थे।

1. समानता और न्याय का सिद्धांत : डॉ. अंबेडकर का सबसे बड़ा योगदान समाज में समानता और न्याय की स्थापना करना था। उन्होंने भारतीय समाज में

व्याप्त जातिवाद, भेदभाव और असमानता के खिलाफ आवाज उठाई। उनका मानना था कि समाज तब तक नहीं उन्नत हो सकता जब तक उसमें समान अधिकार और अवसर न हों। उन्होंने भारतीय संविधान में समानता के अधिकार की पुष्टि की, जिससे प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार प्राप्त हो सके।

2. शिक्षा का प्रचार : डॉ. अंबेडकर ने समाज के कमजोर और शोषित वर्गों को शिक्षित करने की आवश्यकता को प्रमुखता से उठाया। उनका मानना था कि शिक्षा समाज कल्याण की कुंजी है, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति अपने अधिकारों के लिए खडा हो सकता है और समाज में व्याप्त असमानता का मुकाबला कर सकता है। उन्होंने अपने जीवन में कठिन परिस्थितियों के बावजूद शिक्षा प्राप्त की और दूसरों को भी शिक्षा की महत्वता समझाई।

3. धार्मिक और सामाजिक सुधार : डॉ. अंबेडकर ने हिंदू धर्म के भीतर व्याप्त जातिवाद और भेदभाव के खिलाफ सशक्त विरोध किया। उन्होंने दलितों को समाज में समान स्थान दिलाने के लिए कई संघर्ष किए। 1956 में बौद्ध धर्म अपनाने के बाद, उन्होंने लाखों दलितों को इस धर्म की ओर प्रेरित किया, ताकि वे जातिवाद और सामाजिक भेदभाव से मुक्त हो सकें। उनका यह कदम समाज के भीतर सामाजिक और धार्मिक सुधार की दिशा में था।

4. महिलाओं के अधिकारों का समर्थन : डॉ. अंबेडकर ने महिलाओं के अधिकारों को भी प्रमुखता दी। उन्होंने महिलाओं के लिए संपत्ति के अधिकार, विवाह के अधिकार और समान कार्य के लिए समान वेतन की आवश्यकता पर जोर दिया। उनका मानना था कि महिलाओं को समाज में बराबरी का स्थान मिलना चाहिए, तभी समाज का कल्याण संभव है।

5. अत्याचार के खिलाफ संघर्ष : डॉ. अंबेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त उत्पीड़न, खासकर दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों के खिलाफ संघर्ष किया। उन्होंने उनके अधिकारों की रक्षा के लिए कई आंदोलन और कानूनी लड़ाई लड़ी। उन्होंने विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, जैसे कि 'प्रगति संघ' और 'मनुष्येतर समाज' का निर्माण किया, ताकि समाज के शोषित वर्गों को अपनी आवाज मिल सके।

6. श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा : डॉ. अंबेडकर ने श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए भी कई उपाय सुझाए। उन्होंने श्रमिकों के लिए बेहतर श्रम कानून, मजदूरी में वृद्धि और कार्यस्थल पर सुरक्षित वातावरण सुनिश्चित करने के लिए कई पहल की।

7. संविधान और समाज कल्याण : डॉ. अंबेडकर भारतीय संविधान के निर्माता थे और उन्होंने संविधान में समाज कल्याण से जुड़ी कई महत्वपूर्ण धारा डालीं, जैसे कि आरक्षण नीति, जो पिछड़े वर्गों, दलितों और आदिवासियों को समान अवसर प्रदान करने का प्रयास करती है। उनके द्वारा किए गए संवैधानिक प्रावधानों ने समाज में समाज कल्याण की दिशा में लंबा सफर तय किया।

डॉ. अंबेडकर का समाज कल्याण के प्रति दृष्टिकोण समावेशी था, जिसमें हर नागरिक को समान अवसर और अधिकार मिलने चाहिए। उनका कार्य आज भी भारतीय समाज में एक प्रेरणा स्रोत के रूप में जीवित है, और समाज कल्याण के क्षेत्र में उनके योगदान को हमेशा याद किया जाएगा।

निष्कर्ष : डॉ. भीमराव अंबेडकर का जीवन और उनका योगदान भारतीय समाज और संविधान के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके विचार आज भी समाज में सुधार की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। भारतीय संविधान में उनके योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। उनका संघर्ष, उनकी दृष्टि और उनके द्वारा किए गए सुधार भारतीय समाज के लिए मील के पत्थर के रूप में स्थायी रूप से अंकित हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर का समाज कल्याण के प्रति योगदान अपार और अत्यधिक प्रभावशाली था। उन्होंने भारतीय समाज में समानता, स्वतंत्रता, और बंधुत्व की स्थापना के लिए अथक प्रयास किए। उनका मानना था कि समाज कल्याण तभी संभव है जब सभी वर्गों, विशेषकर शोषित और वंचित समुदायों, को समान अधिकार, अवसर और सम्मान प्राप्त हो।

उन्होंने शिक्षा, सामाजिक सुधार, धार्मिक परिवर्तन, महिलाओं और दलितों के अधिकारों की रक्षा, और श्रमिकों के हक की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। उनका योगदान भारतीय संविधान में भी स्पष्ट रूप से देखा जाता है, जिसमें समानता और न्याय की गारंटी दी गई है। अंबेडकर का जीवन और कार्य यह संदेश देता है कि समाज का कल्याण तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार मिलें और समाज में समानता का माहौल हो। उनके दृष्टिकोण और कार्यों ने भारतीय समाज को एक नई दिशा दी और आज भी उनके विचार समाज सुधार और कल्याण के संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

संदर्भ

1. डॉ. भीमराव अंबेडकर : "The Problem of the Rupee: Its Origin and Its Solution". Government of India Press,दिल्ली

2. रामनिवास वर्मा, 'भारतीय समाज की संरचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.

3. विमल कुमार, 'सामाजिक न्याय और समावेशन, शब्द रचना, पटना.

4. आनंद कुमार, भारत में जातिवाद और सामाजिक परिवर्तन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली.

5. स्मिता ठाकुर, 'भारतीय समाज : जाति और वर्ग', पेंग्विन बुक्स, दिल्ली.

■

आस्था भारती, दिल्ली के लिए के.एम.एस. राव, कार्यकारी सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, ई–33, सेक्टर–ए 5/6, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद–201102 (उ.प्र.) भारत द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : डॉ. शिवनारायण

e-mail : shivnarayan22@yahoo.com